मानस साधना ग्रन्थमाला पुष्प—१

मानस के मौलिक सिद्धान्त
तथा
तदनुकूल साधन प्रणाली

लेखक-परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगीजी'

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

"मैं श्री हृदय नारायण जी द्वारा प्रस्तुत श्री रामचरित मानस के सिद्धान्तों और उसके प्रयोग की प्रविधि (टेक्नीक) में मनसा वाचा और कर्मणा विश्वास करता हूँ। मैंने उन्हें अपने जीवन में अपनाया और ऐसे परिणाम प्राप्त किये हैं जो उन सिद्धान्तों की पुष्टि करते हैं।"

अहिताग्नि श्री यमुना प्रसाद त्रिपाठी सामवेदी,
रिटायर्ड आई॰ पी॰ एस॰,
स्पेशल मजिस्ट्रेट, लखनऊ,
अवैतनिक सलाहकार, उत्तर प्रदेश सरकार,
मुख्य कार्याधिकारी, श्री बद्रीनाथ केदारनाथ मंदिर समिति।

प्रारम्भिक निवेदन

मेरे पूज्य गुरुदेव ने सन् १६७६ मे ही एक दिन मुझसे कहा था, 'तुम्हें रामचरित मानस के उस जीवनोपयोगी पक्ष का जनता में प्रचार एव प्रसार करना होगा जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से समस्त दुखों के आत्यतिक विनाश का आश्वासन प्रदान करता है।" जब मैंने निवेदन किया कि इस विशाल कार्य के लिये तो मैं सर्वथा अयोग्य हूँ तो उत्तर मिला . 'यह मेरा कार्य है और इसे मैं तुमसे करवा ही लूँगा।"

उन्होंने रामचरित मानस की कथा को आध्यात्मिक साधना की पगडंडियों के रूप में ही जाना और अनुभव किया। राम चरित मानस में निश्चित रूप से किसी श्रुति प्रतिपादित "साधन-पथ" का वर्णन है, जिसे यदि मानव अपना सके तो उसके व्यक्तिगत जीवन मे शक्ति, आनन्द और ज्ञान का सचार होकर उसके रोग, दुख और भय मिट जायगे। साथ ही उसका सामूहिक जीवन धन धान्य से ऐसा सम्पन्न होगा कि शेष-शारदा भी उसका वर्णन करने मे असमर्थ हो जायँ।

मेरे भीतर किसी प्रकार की योग्यता अथवा क्षमता नहीं है केवल प्रभु कृपा एव सतों के आशीर्वाद का अवलम्ब ही इस साधन-पथ की खोज में मेरा सहायक हो रहा है। सतों के आशीर्वाद एवं मित्रों के क्रियात्मक सहयोग से मेरा कार्यक्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है और बहुत से साधकों ने मानस प्रतिपादित साधन-पथ के अनुसार वैज्ञानिक प्रयोग भी किये हैं।

साधकों की एक गोष्ठी में, मेरी अनुपस्थिति में कुछ साधकों ने एक छोटी मासिक पत्रिका "साधक" निकालने का निर्णय किया था जिसमें इन सिद्धान्तों एवं प्रयोगों की चर्चा हो। इस प्रकार जनवरी, ६३ से दिसम्बर, ६३ तक एक वर्ष "साधक" का प्रकाशन हुआ और उसमें श्रुति प्रतिपादित मानस के विकार-वाद के सिद्धान्तों के कुछ पहलू, जैसा कि कुछ मैं समझ पाया हूँ, प्रस्तुत किये गये। परन्तु 'साधक' के प्रकाशन, वितरण आदि में मेरा जितना समय लग रहा था, उससे मेरी अपनी (मानस सेवा की) साधना में बाधा पड़ रही थी, इसलिये उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। यदि इस सम्बन्ध में समाज की मांग होगी तो इस पर पुनर्विचार किया जायगा।

'मानस साधना मंडल' ने 'साधक' में प्रकाशित सिद्धान्त विवेचन सम्बन्धी प्रकरणों को प्रकाशित करने का निश्चय किया है जिससे पाठकों को इन पर विचार कर उन्हें हृदयगम करने में सुविधा हो।

—हृदय नारायण

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०

रामचरित मानस का मौलिक सिद्धान्त और तदनुकूल साधन प्रणाली

श्री राम चरित मानस मानव की व्यक्तिगत और सामूहिक समस्त समस्याओं पर जो प्रकाश प्रस्तुत करता है वह युग-युगान्तर तक पथ भ्रष्ट मानव का पथ-प्रदर्शन करने में पूर्ण रूप से समर्थ है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। भगवान् शिव और माता पार्वती को साक्षी बनाकर मानसकार रामायण की फल श्रुति इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

जे एहि कथहिं सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ पुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ॥'

अर्थात् जो व्यक्ति इस ग्रंथ को मन लगा कर सुनेगा, बुद्धि लगा कर समझेगा और चित्त लगाकर उसके अनुसार आचरण करेगा, उसके जीवन में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा, उसके वाह्य-जीवन में सब प्रकार मंगल होगा—अभाव मिटेंगे, सुख मिलेगा। उसका आन्तरिक जीवन कलि-मल रहित होगा—दोषों की निवृत्ति होगी, शान्ति मिलेगी, और उसे राम के चरणों में अनुराग-प्रेम प्राप्त होगा जो सुख और शान्ति, स्वर्ग और मोक्ष—से पार की वस्तु है।

दूसरे स्थान पर गोस्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है—
'सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भव दोष दावनी॥'
अर्थात् भगवान की यह पवित्र कथा तीनों तापों को दूर

करने वाली है। शरीर से रोग, मन से चिन्ता और बुद्धि से भय को मिटाकर मनुष्य के जीवन में शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संचार करने वाली है।

अब समझना यह है कि रामायण के इन दावों का आधार है क्या ? यद्यपि यह पवित्र ग्रन्थ, जिसमें प्रभु की लीला का वर्णन है, उस प्रभु के समान ही अनन्त है और इसके रहस्य को प्रभु ही जानते हैं या जिसे वे जना दें वह भी किसी अंश में जान सकता है, फिर भी अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ गुरु-कृपा से और सन्तों के आशीर्वाद से मैं समझ सका हूँ उसे उन मित्रों के लिए व्यक्त करता हूँ जो रामचरित मानस में प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर कुछ साधना करके अपने जीवन में परिवर्तन लाना चाहते हैं।

मानस का सिद्धान्त यह है कि हम किसी भी दुःख के निवारण करने की चेष्टा करने के पहले उसके मूल कारण को जानने का प्रयास करें। जैसे जुकाम होने पर हम क्या औषधि सेवन करें यह न सोच कर हमें पहले सोचना यह चाहिए कि हमें जुकाम हुआ ही क्यों है। इस सम्बन्ध में मानस के उस प्रकरण में स्पष्ट संकेत मिलता है जिसमें श्री लखन लाल जी ने भगवान राम से प्रश्न किया था और दुःख की निवृत्ति का साधन ज्ञान और वैराग्य समझकर उसके सम्बन्ध में ही पहले जानना चाहा था— 'कहहु ग्यान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया

'ईस्वर जीवहिं भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ॥'

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् राम ने दुःख का मूल कारण माया बतलाकर उसके ही सम्बन्ध में सबसे पहले प्रकाश डाला उसके बाद उसकी निवृत्ति के साधन ज्ञान, वैराग्य को समझाने का प्रयत्न किया। उनके वचन हैं—

थोरेहि मँह सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मन मति चितलाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥
गो गोचर जँह लगि मन जाई। सो सब माया जानहु भाई॥

यहाँ भगवान् ने माया के दो रूप बताए हैं। एक "मैं-मेरा" जिसके कारण प्राणी संसार में दुःख भोग रहा है और दूसरा "प्रपंच", जहाँ तक इन्द्रियाँ और मन का व्यापार है यह सब माया है।

माया का शाब्दिक अर्थ है (मा = नहीं, या = जो) जो नहीं है फिर भी प्रतीत होता है। अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी में सर्प की प्रतीति होती है, यद्यपि कहीं सर्प नहीं है। इसमें दो पक्ष हैं—[१] जो है सो मालूम नहीं हो रहा है, [२] जो नहीं है सो मालूम हो रहा है, अर्थात् रस्सी है पर मालूम नहीं होती और सर्प नहीं है जो मालूम होता है। यही श्रुति-प्रतिपादित सिद्धान्त है—

'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या'

अर्थात ब्रह्म यथार्थ सत्य है यद्यपि [मोह के कारण] उसकी प्रतीति नहीं हो रही है और प्रपंच [जगत] प्रातीतिक सत्य मात्र है, यथार्थ नहीं—जैसा दिखाई देता है वैसा नहीं है।

यही मानस का दर्शन है जिसे मैं प्रकाशवाद और विकारवाद कहता हूँ और इसी दर्शन को जीवन में उपलब्ध करने की प्रणाली की मानस में विशद् विवेचना है जिसे 'विश्वास' और 'श्रद्धा' का मार्ग* कहा गया है।

मेरा विश्वास है कि यदि मानस के इस जीवन-दर्शन—प्रकाशवाद और विकारवाद को मानव समझ सका तो उसके जीवन में दुःख का आत्यन्तिक विनाश हो सकता है। प्रकाशवाद,

*भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

भावना-प्रधान साधकों के लिये भक्ति या शरणागति का मार्ग है और विकारवाद विश्लेषण का मार्ग है जो विचार-प्रधान साधकों के लिये है। एक में सरल अन्त:करण वाले साधक सत्सग द्वारा अदृश्य प्रभु में अटूट विश्वास करके भगवद्दर्शन करते हैं और उनका प्रेम प्राप्त करके, समस्त दु खों से मुक्त हो जाते हैं। दूसरे में बुद्धि-प्रधान साधक दृश्य जगत् का अबाधित् ज्ञान प्राप्त करके तप का मार्ग अपनाते हैं और आत्म दर्शन करके समस्त दु खों से मुक्त हो जाते हैं। दोनों मार्गों से दु खों का विनाश होता है।

'उभय हरहिं भव सम्भव खेदा'

प्रकाशवाद का सिद्धान्त निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिपादित है—

"यहि महं आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना"

इससे स्पष्ट है कि मानस के प्रारम्भ मे बीच में और अन्त में अर्थात् आदि से अन्त तक भगवान् राम ही प्रतिपादित हैं जिनके विषय में कहा गया है—

'सहज प्रकाश रूप भगवाना।'

अर्थात् भगवान् सहज प्रकाश रूप है। मानस में दो प्रकार के प्रकाशकों का वर्णन है, एक पराश्रित प्रकाशक जैसे चिराग, जो दिया, घी और वत्ती के सहारे ही प्रकाश देता है और वत्ती के जल जाने, घी के समाप्त हो जाने या दिया के टूट जाने पर, बुझ जाता है और दूसरा है सहज प्रकाशक, जिसे किसी बाह्य सहारे की अपेक्षा नहीं रहती, जो स्वत: ही प्रकाशरूप है। इस प्रकाशक की उपमा मणि से दी गयी है जो दिन और रात बिना किसी बाह्य उपकरण के प्रकाशित रहता है। मानस में प्रतिपादित भगवान् मणि के समान ही प्रकाशक है जो सहज प्रकाश रूप है, दिन रात प्रकाश देता है और भीतर और बाहर प्रकाश करता है।

"सहज प्रकाश रूप दिन राती। नहिं तँह चहिय दिया घृत बाती॥'

रामायण में इस सहज प्रकाशरूप भगवान् के एक रूप और एक स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। स्वरूप प्रकृति से पार है जहाँ मन वाणी नहीं पहुँच सकती।

"राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥"

एवम्

"मन समेत जेहि जान न वानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगम नेति करि कहई। जो तिहुँ काल एक रस अहई॥"

यही वेदों मे आत्म-तत्व के सम्बन्ध में कहा गया है—
'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'। (तैत्तिरीय उपनिषद् २।४)

इसी प्रकार रामायण में भगवान् का एक रूप भी बताया गया है। वह घट-घट वासी हैं—

"सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥"

"जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बँदउँ सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि॥"

इसी को वेदों मे इन शब्दो मे कहा गया है—
ईशावास्यमिदं सर्वंयत् किंच जगत्यां जगत्।(ईशावास्य उपनिषद्-१) ✓
अर्थात् प्रभु जड़ और चेतन सबमें व्याप्त है।

मानस ऐसा मानता है कि जो व्यक्ति भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करेगा उसके सारे दु ख मिट जायंगे। मानस मे चिन्तन के लिये सुमिरन और सेवा के लिये भजन शब्द का प्रयोग किया गया है। साधक को सदा ही भगवान् का सुमिरन और भजन करना चाहिए। क्योंकि मानस के शब्दों मे विपत्ति तभी तक है जब तक मनुष्य सुमिरन और भजन नहीं करता। इस तथ्य को निम्नलिखित पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं—

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई ॥"

सुमिरन की प्रणाली नारद जी एवं मनु सतरूपा के प्रकरण मे पायी जाती है। सुमिरन में मन को भगवान् के किसी भी नाम रूप के सहारे एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है—

निरखि सैल सर विपिन विभागा। भयेउ रमापति पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि साप गति बाधी। सहज विमल मन लागि समाधी॥

अथवा

"द्वादश अक्षर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग ॥"

"करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा ॥"

सुमिरन की इस प्रक्रिया में मन को सब ओर से हटाकर एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है जिसे एकाग्रता कहते हैं और इसके बाद एकाग्रता की एक ऐसी सघन अवस्था आती है जिसमे यदि मन मे लय और विक्षेप की अवस्थायें बाधक न हो, तो यह बिन्दु भी हट जाता है और मन निर्विषय हो जाता है। यही सुमिरन की अवस्था है जिसे चिन्तन या ध्यान भी कहते हैं और जिसकी परिभाषा इस प्रकार है—

"ध्यानं निर्विषयम् मन:" (सांख्य सूत्र-६।२५)

सुमिरन की साधना मे कभी मन बिन्दु से हटकर इधर-उधर भागता है जिसे विक्षेप कहते हैं और कभी नींद आ जाती है जिसे लय की संज्ञा दी गयी है। मन के यही दो मल हैं और यदि मन इन दो मलो से रहित हो जाय तो—

"सहज विमल मन लागि समाधी"

की अवस्था प्राप्त होगी अर्थात् अहंकार का विलय हो जायगा और ऐसी स्थिति में मन, बुद्धि व चित्त और अहं सबके सब [illegible] हो जायेंगे। यह अवस्था साधन से प्राप्त की जाती है

जैसा नारद, मनु महाराज अथवा शिवजी के प्रकरण में पाया जाता है।

"शंकर सहज सरूप सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥"

प्रेम के अतिरेक में भी समाधि की यही अवस्था बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जाती है। जैसे—

परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुद्धि चित अहमिति बिसराई ॥

माता शबरी ने इस अवस्था को सहज ही प्राप्त कर लिया था—
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥
पुनि पुनि पद-सरोज सिर नावा। प्रेम मगन मुख बचन न आवा॥

यही दशा सुतीक्षण जी की भी स्वतः ही हो जाती है—
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहि सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहि बूझा॥

कोल भीलों के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही बात है—
करहि जुहार भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहि अति अनुरागे ॥
चित्र लिखे जनु जँह तँह ठाढ़े। पुलक शरीर नयन जल बाढ़े ॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने ॥

इस अवस्था के प्राप्त होते ही भक्त अपनी बुद्धि में एक अपूर्व प्रकाश का अनुभव करता है जिससे द्वैत भावना मिट जाती है और सर्वत्र एक ही सत्ता विद्यमान दीखती है और तब भय नाम की वस्तु रह ही नहीं जाती। साथ ही कर्तृत्व भी मिट जाता है और इसीलिये बन्धन अर्थात् आवागमन भी मिट जाता है, क्योंकि बंधन का कारण कर्म नहीं, कर्तृत्व है—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। (ईशावास्य उ०)

मन में एक अद्भुत आनन्द समा जाता है जिससे भारी से भारी दुःख में भी भक्त विचलित नहीं होता—
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। (भगवद् गीता)

और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि दुःख का कारण

परिस्थिति नहीं बल्कि आसक्ति है, जो इस आनन्द में स्वतः ही मिट जाती है। शरीर में भी अथक शक्ति का अनुभव होता है और साधक ऐसा अनुभव करता है कि शक्ति का केन्द्र भगवान है न कि भोजन। आन्तरिक शक्ति के जागरण से ही उसके सारे रोग मिट जाते हैं। इसीलिये तीनों ताप मिटने की बात मानस में भगवान के अनुराग से सम्बन्धित की गयी है और भगवान के चरणों के निरादर से (उनके चरणों में प्रेम न होने के कारण) रोग, वियोग, दीनता, मलिनता और आवागमन होता है, यह बात शिव जी ने भगवान् राम की स्तुति करते समय स्पष्ट कर दी है—

बहु रोग वियोगन्हि लोग हए। भवदंघ्रि निरादर के फल ये॥
अति दीन मलीन दुखी नित ही। जिनके पद-पंकज प्रेम नहीं॥
भव-सिंधु अगाध परे नर ते। पद-पंकज प्रेम न जे करते॥

भजन के सम्बन्ध में भी मानस की यह विचारधारा है कि भगवान् सबमें व्याप्त है ऐसा जानकर जो सबकी सेवा और सबसे प्रेम किया जाता है वही भजन है। भगवान राम ने अपने ही श्रीमुख से अपने मित्रों को विदा करते समय स्पष्ट कहा—

"अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि, करेहु अति प्रेम॥"

अर्थात् प्रभु की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए स्वार्थपरता को छोड़कर प्रभु के नाते सबकी सेवा की जाय। इस प्रकार की सेवा–"भजन"–के फलस्वरूप मनुष्य के जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं रहता क्योंकि सेवक ही सेव्य बन जाता है। अतः सुमिरन और भजन से मनुष्य की अशांति और अभाव मिट सकते हैं। इस सिद्धान्त का जो साधक अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहे उसे चाहिए कि प्रतिदिन २४ घंटे में आधा

घन्टा किसी एकान्त स्थान में सूर्योदय से पहले पूर्वाभिमुख या भगवान् की कोई मूर्ति हो तो उस तरफ मुख करके बैठे और भगवान् के किसी भी नाम या रूप का सहारा लेकर अपने मन को एकाग्र करने की चेष्टा करे। बहुत दिनों के निरन्तर अभ्यास के बाद मन के दोनों दोष, लय और विक्षेप, मिट जाते हैं और अहंकार के विलय की अवस्था आने लगती है। इस साधन के दो अंग हैं। सेवा और तप। सेवा का अर्थ है अपने धन का कम से कम दशांश और समय, शक्ति को यथासम्भव जनता-जनार्दन की सेवा में निस्वार्थ भाव से लगाना (दस इन्द्रियों से मनुष्य सुख चाहता है इसीलिए दशांश का नियम है)। तप में भोजन को और विशेषकर अन्न को कम करने की आवश्यकता है। अपने भोजन में कुछ शाक, फल, कंद का समावेश करना इस साधन में विशेष सहायक सिद्ध होता है।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि मेरे बहुत से मित्रों ने अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार साधनत्रिक-चिन्तन, सेवा और तप का अभ्यास किया है। इन्हीं को बाइबिल में Prayer, Charity and Fasting तथा कुरान शरीफ में नमाज, जकात और रोजा एवं गीता में यज्ञ, दान और तप और मानस में सुमिरन, अभोग और उपवास कहा गया है। मेरे मित्रों की प्रत्यक्ष अनुभूति है कि उनके जीवन से रोग, दुःख और भय बिना औषधि सेवन, परिस्थिति-परिवर्तन आदि के मिट गये हैं और उनके मन परिस्थिति से अतीत होते जा रहे हैं। साधना के पहले जो घटनाएँ उनके मन को विचलित कर देती थीं, अब उन पर कोई प्रभाव नहीं डलती और जिन बातों का उन्हें भय बना रहा करता था अब उन्हें उनका भय नहीं सताता। इस सम्बन्ध में यह निवेदन कर देना अत्यावश्यक है कि हम लोग रामचरितमानस में प्रतिपादित केवल भगवान् के सुमिरन और भजन की ही बात करते हैं। और किसी प्रकार की गुप्त साधना अथवा साम्प्र-

दायिकता आदि से सम्बन्ध नहीं रखते और न ऐसी साधना ही करते या कराते हैं जो सर्व साधारण न कर सके। मेरे मित्रों का प्रत्यक्ष अनुभव है कि उनके शरीर मे शक्ति, मन मे आनन्द और बुद्धि मे ज्ञान का संचार हो रहा है।

श्री राम चरित मानस मे विकारवाद का सिद्धान्त मायावाद के रूप मे प्रतिपादित है। यह वेदोक्त है। मुण्डकोपनिषद् मे कुछ ऋचायें आयी हैं जिनसे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ ३।१।१
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशयाशोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत शोकः॥ ३।१।२
यदा पश्यः पश्येत रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३।१।३

इन ऋचाओं का आशय संक्षेप मे यह है कि दो पक्षी सखा भाव से एक पेड़ का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमे से एक पेड़ के फल को खाता है अर्थात् वहिर्मुखी प्रवृत्तिवाला है और दूसरा उसके फल को नहीं खाता अर्थात् अंतर्मुखी प्रवृत्ति वाला है। जो पक्षी वहिर्मुखी प्रवृत्तिवाला है वह असमर्थता, सोच और मोह से ग्रस्त है अर्थात् उसके शरीर में शक्ति के स्थान पर कमजोरी, मन में [illegible]न्द के स्थान पर दुःख और बुद्धि मे ज्ञान के स्थान पर मोह [illegible]ब यह दूसरे पक्षी को, जो अन्तर्मुखी प्रवृत्तिवाला है, [illegible] है और उसमे सामर्थ्य, आनन्द और ज्ञान को पाता है [illegible] हीन दशा का कारण अपनी वहिर्मुखी प्रवृत्ति को [illegible] कर उस प्रवृत्ति को छोड़ देता है तो वह भी शोक रहित हो [illegible] है। इसी सिद्धान्त का दिग्दर्शन गीता के तीसरे अध्याय मे [illegible] है। अर्जुन के यह पूछने पर कि वह कौन सी शक्ति है [illegible] प्रेरित होकर मनुष्य न चाहने पर भी हठात् पाप का आचरण कर बैठता है—

'अथ केन प्रयुक्तोयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३।३६'

उसके उत्तर में भगवान ने कहा है कि—

'काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धि येनमिह वैरिणम् ॥३।३७'

अर्थात् वह काम ही है, और उसका स्थान इन्द्रियां, मन और बुद्धि है—

'इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥३।४०'

अर्थात् इन्द्रियों में कमजोरी, मन में दुःख और बुद्धि में भय इस काम के ही कारण होता है यानी त्रिताप का कारण काम है। काम नाश के फलस्वरूप मनुष्य त्रिताप से मुक्त हो जाता है। उसके सब रोग, दुःख और भय मिट जाते हैं। मानस में सब दुःखों का मूल कारण मोह बताया गया है—

"मोह सकल व्याधिन कर मूला।"

मोह का अर्थ अंधकार है। जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई रस्सी साँप मालूम होती है और इस गलत धारणा के कारण कि वह साँप है यह गलत मान्यता हो जाती है कि वह काट खायेगा और इसके फलस्वरूप यह गलत क्रिया होती है कि वह मनुष्य डर कर भागता है जिससे उसके दिल की धड़कन बढ़ जाती है और वह लड़खड़ा कर गिर जाता है और इस प्रकार मोह रूपी अंधकार के कारण गलत जानने, गलत मानने और गलत क्रिया के क्रम से उसे दुःख की प्राप्ति होती है। और इन सबका मूल कारण मोह अर्थात् अंधकार ही है। इसी मोह के कारण मनुष्य की धारणा में शक्ति का सम्बन्ध भोजन से है और भोजन जितना ही पौष्टिक होगा उतनी ही शक्ति बढ़ेगी ऐसी मान्यता होती है।
[illegible]

परिणाम स्वरूप शरीर में मल का संचय होता रहता है जो कालांतर में रोग के रूप में प्रगट होता है। इसी तरह मोह के कारण ही धन एवं धन द्वारा संगृहीत वस्तुओं में सुख है ऐसी धारणा होती है और धन बटोरने से सुख मिलेगा ऐसी मान्यता होती है और धन सग्रह करने की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप मन में विक्षेप आ जाता है जो चिन्ता के रूप में प्रकट होता है। ऐसे ही पढ़ने-सुनने से ज्ञान होता है इस धारणा के आधार पर जितना पढ़ेंगे, सुनेंगे उतना ही ज्ञान होगा ऐसी *मान्यता के कारण अधिक अध्ययन किया जाता है जिसके कारण* बुद्धि में ज्ञान के स्थान पर अहंकार संचित होता है जो आवागमन का मूल कारण है। इसी को शरीर मे मल, मन में विक्षेप और बुद्धि में आवरण कहा गया है जिसके फलस्वरूप रोग, दुःख और भय नामक त्रिताप होते हैं। अतः त्रिताप से मुक्त होने का साधन यह है कि हम भोजन, धन और अध्ययन के सम्बन्ध में गहराई से विचार करें। खोज करने से हमें संसार मे ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो अधिक भोजन के द्वारा अपने शरीर मे किसी अंश मे पशुबल का समावेश तो कर पाते हैं परन्तु भयानक रोगो से ग्रस्त रहते हैं और बिना पूरी आयु भोगे ही स्वर्ग सिधार जाते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे, चाहे वे गिनती में बहुत थोड़े ही क्यों न हों, जो शक्ति का सम्बन्ध भोजन से न मानकर भोजन-संयम की ओर अग्रसर होते है और उसके द्वारा शरीर में एक आन्तरिक शक्ति के जागरण का अनुभव करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप वे रोग-मुक्त होकर वेद के इस वाक्य—

'जीवेम शरदः शतम् अदीनस्या शरदः शतम्।'

के अनुसार नीरोग रहकर सौ वर्ष पूरी आयु भोगते हैं। हम लोगों के बीच इसी संसार मे डाक्टर बारबरा मूर, एम० डी०, एक रूसी महिला हैं जो आज से (१९६२ से) लगभग २८ वर्ष पहिले भारतवर्ष आयी थीं और हिमालय पर्वत में कुछ महात्माओं से

मिलकर उनकी बताई हुई बातों को, जिनका एक अंग भोजन का क्रमिक परित्याग भी है, अपने जीवन में प्रयोग किया है। उन्होंने लिखा है कि वे पहले तीन बार खाती थीं, जिसको उन्होंने क्रमशः ३ से २ और २ से १ किया और उसके बाद अन्न छोड़ कर तरकारियों तथा फल एवं कुछ पत्तियों का सेवन किया। अन्त में केवल रस या कुछ शहद का सेवन थोड़ी मात्रा में करना प्रारम्भ किया और २६ वर्षों के इस प्रकार प्रयोग के बाद उनका कहना है कि अब वे केवल जल पर ही महीनों रह लेती हैं और स्वीट-जरलैंड तथा इटली में बर्फ तथा बर्फ के पानी पर ही रहकर नित्य ४०-५० मील चलती हैं, ८००० फीट ऊँचे पहाड़ पर चढ़ती और उतरती हैं फिर भी उन्हें कभी थकावट नहीं महसूस होती। उनका यह भी कहना है कि उन्होंने अपने ऊपर प्रयोग करके यह भली-भाँति अनुभव कर लिया है कि शक्ति या शरीर की गर्मी का सम्बन्ध भोजन से नहीं है। उन्होंने इस तथ्य का वैज्ञानिक निरूपण करते हुए बतलाया है कि हवा तथा सूर्य की रश्मियों में कुछ ऐसे तत्व हैं जो वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा नहीं जाने जा सकते परन्तु मानव शरीर उन्हें ग्रहण करके शक्तिशाली और परिश्रमी बन सकता है और वृद्धावस्था मे भी युवा रह सकता है। डाक्टर बारबरा मूर इस समय स्वयं ६० वर्ष की हैं फिर भी उनकी आयु ३० से अधिक नहीं मालूम पड़ती और इस उम्र में भी नित्य ४०-५० मील चलती हैं। अभी कुछ ही दिन हुए उन्होंने अमेरिका मे सैनफ्रॅसिसको से न्यूयार्क की ३३५७ मील की यात्रा पैदल की है।

मैंने भी इस सम्बन्ध मे जो प्रयोग किये हैं उनसे मालूम होता है कि कुछ दिनों के लिए हवा पर, कुछ हफ्तों के लिए पानी पर और वर्षों फल तथा सब्जियों पर आसानी से रहा जा सकता है। इससे शरीर मे आरोग्य, अथवा परिश्रम करने की सामर्थ्य और वृद्धावस्था में भी युवापन का अनुभव किया जा

सकता है। मेरे कुछ मित्र तो कुछ न खाकर भी ६ दिनो तक लगातार अपने सारे काम करते रहते हैं और कभी भी किसी प्रकार की शक्तिहीनता (कमजोरी) नहीं महसूस करते। मानस के सिद्धान्तों को यदि जनता ठीक से समझ कर इस प्रकार प्रयोग कर सके तो व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज देश तथा विश्व का भी कल्याण हो सकता है।

खोज करने वालों को ऐसे भी व्यक्ति आसानी से मिल जायेंगे जो बहुत धनी होने पर भी मन से अशान्त और चिन्ता-ग्रस्त हैं और इसके विपरीत ऐसे भी लोग हैं, चाहे उनकी संख्या कम ही हो, जो निर्धन होने पर भी सर्वथा चिन्तामुक्त हैं और एक आन्तरिक आनन्द का सतत अनुभव करते रहते हैं और उनके सम्पर्क में आने वाले लोग कम से कम थोड़ी देर के लिए शान्ति का अनुभव करते हैं।

इस सम्बन्ध मे भी हम लोगों ने जो प्रयोग किए है उनका परिणाम यह हुआ है कि अपने समय, शक्ति और धन का आंशिक रूप (दशांश) भी निस्वार्थ भाव से प्रभु के नाते जनता जनार्दन की, विशेष रूप से बालक, दीन और साधुजनों की, सेवा मे अर्पित करने से मन परिस्थिति से अतीत होने लगता है और विषम परिस्थितियों के उपस्थित होने पर भी मन मे शान्ति बनी रहती है साथ ही जीवन मे अभाव भी मिटता है और किसी न किसी प्रकार प्रभु आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं। यह अनुभव उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

इसी प्रकार खोज करने वालों को ऐसे व्यक्तियो की कमी नहीं होगी जो शास्त्रीय शिक्षा (Academic Education) किताबी ज्ञान से वंचित होने पर भी प्रकाश अथवा ज्ञान के केन्द्र हैं। बहुत से साधु महात्मा जिनकी गणना ज्ञानियों में है अधिकतर अशिक्षित ही थे। स्वामी शरणानन्द जी महाराज ऐसे ही ज्ञानी और उच्चकोटि के व्यक्तियों मे से एक हैं। उनकी स्कूली

शिक्षा कुल दर्जा ४ तक ही हुई है परन्तु उनकी बुद्धि मे एक अपूर्व प्रकाश है। महर्षि रमण, जिनका शरीर कुछ ही वर्षों पूर्व पूरा हो चुका है, इस युग के महान् ज्ञानियो मे थे परन्तु उनको स्कूली शिक्षा प्राय: नहीं के बराबर थी। परमहस रामकृष्ण, जो जगत-प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द जी के गुरुदेव थे, इसी कोटि मे आते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शक्ति, ज्ञान और आनन्द का सम्बन्ध भोजन, अध्ययन और धन मे वैसा नहीं है जैसा कि आज का मनुष्य समझ रहा है और इसी अज्ञान के कारण ही वह रोग, दुःख और भय से ग्रस्त है। इनका सम्बन्ध किसी ऐसी सत्ता से है जो प्रत्येक मानव के अन्तर में विद्यमान है। हम अपने दैनिक जीवन मे प्राय: देखते हैं कि जब रात्रि मे हम चारपाई पर शिथिल होकर लेट जाते हैं (पैर से चलना, हाथ से पकड़ना बन्द कर देते हैं) तथा निद्रा मे प्रवेश करते हैं (बाह्य नेत्र, श्रवण आदि इन्द्रियों का कार्य बन्द कर देते हैं) और स्वप्नावस्था मे बुद्धि से कार्य लेने के बाद गहरी नींद में सो जाते हैं तब अपने शरीर की थकावट खोकर हम नई शक्ति और ताजगी का अनुभव करते हैं तथा मन की चिन्ता खोकर 'हम खूब आनन्द से सोये', ऐसा कहते हैं। ऐसी अवस्था मे उसी केन्द्र से संस्पर्श होने के कारण ही हमारे शरीर और मन में शक्ति और आनन्द आ जाते हैं। जिस प्रकार गहरी निद्रा में प्रवेश होने पर शरीर, मन और बुद्धि की गति रुक जाती है उसी प्रकार ऐसी निष्क्रियता की स्थिति जाग्रत अवस्था में भी अभ्यास के द्वारा लायी जा सकती है और जो व्यक्ति इस साधन का अभ्यास करेगा उसका भीतर के केन्द्र से संस्पर्श स्थापित हो सकेगा जिसके फलस्वरूप उसे शक्ति, ज्ञान और आनन्द मिलने लगेगा। मानस मे इसे तप की साधना कहा गया है—

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तप करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
संवत् सहस मूल फल खाये। सागु खाइ सत बरष गँवाये॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥

इस तप के तीन निम्नलिखित अंग हैं—

१. चित्तवृत्ति का निरोध (सुमिरन), २ इन्द्रियों का सयम (अभोग), ३. भोजन का क्रमिक परित्याग (उपवास)

इस साधना के परिणाम स्वरूप मानव के सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं—"भए मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि।" और उसके शरीर में अखण्ड शक्ति, मन में अखण्ड आनन्द और बुद्धि में अखण्ड ज्ञान का संचार होने लगता है और जीवन काल में सब प्रकार से शान्ति लाभ तथा शरीर छोड़ने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

संक्षेप में मानस प्रतिपादित ऊपर बताये हुए दोनों मार्गों द्वारा (१) सुमिरन और भजन और (२) तप से मनुष्य के दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति और सुख की उपलब्धि होती है और उसका शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास होता है।

———

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मंडल, डी-१२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ-४ द्वारा प्रकाशित तथा नव भारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष .

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

कुवेर प्रसाद गुप्त

मन्त्री

डा० चन्द्र दीप सिंह

एम बी., बी एस.

प्रधान कार्यालय :

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-२

मानस का उद्देश्य तथा रचना-शैली

लेखक –
परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३००० मूल्य २५ पैसे

मानव की मौलिक मांगें : १. शरीर मे रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य ।
२. इन्द्रियों मे थकावट विहीन अखंड शक्ति ।
३. मन मे चिन्ता रहित अखंड आनन्द ।
४. बुद्धि मे भय रहित अखड ज्ञान ।
५ अह मे द्वैत रहित अखड प्रेम ।

पंचस्तरीय विकार : १ शरीर मे रोग
२. इन्द्रियो मे कमजोरी
३. मन मे शोक
४. बुद्धि में भय
५. अह मे वियोग

पंचविकारों के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नहीं हैं उनमे ममत्व

विकारो का निवारण : १. संतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखंड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखंड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखंड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प— २

मानस का उद्देश्य तथा रचनाशैली

लेखक :—

परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगी जी'

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली

श्री रामचरित मानस के प्रारम्भिक श्लोकों में ही कवि कुल-भूषण गोस्वामी तुलसीदास जी ने मानस की रचना-शैली इन शब्दों में स्पष्ट की है :—

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।

अर्थात् मानस नाना पुराण निगमागम से सम्मत है। गुरु कृपा एवं सन्तों के आशीर्वाद से इसका अर्थ जैसा कुछ मैं समझ पाया हूँ, उसे उन मित्रों के लिए व्यक्त करता हूँ, जो मानस के आधार पर जीवन में आमूल क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते हैं क्योंकि मानस की फल श्रुति ही मानस-प्रेमियों के जीवन से त्रिताप मिटाने की है, यथा :—

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिविध ताप भव दाप दावनी।

इसका अभिप्राय यह है कि मानस की रचना-शैली पौराणिक है, सैद्धान्तिक विवेचन वैदिक हैं और साधन-प्रणाली तांत्रिक है। दूसरे शब्दों में, रामायण में कथानकों के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन है, जिससे साधारण जनता भी उन्हें सुगमता से समझ सके। साथ ही उन सिद्धान्तों के समझने के उपरान्त उन्हें जीवन में प्रयोग करने की सुगम प्रणाली भी वर्णित है जो तन्त्र का विषय है। इस प्रकार क्रमश पुराण निगम-आगम का सम्बन्ध सुनने, समझने और करने से है।

सुनहु तात मन मति चित लाई।

अर्थात् पौराणिक कथा भाग मन लगा कर सुनना है, वैदिक सिद्धान्त बुद्धि लगा कर समझना है और आगम का अंश चित्त लगा कर करना है, तभी जीवन बदल सकेगा। मानस का पौराणिक भाग बहुत आकर्षक है :—

श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।

परन्तु इसका सिद्धान्त अत्यन्त जटिल है; बहुत बार सुनने पर थोड़ा समझ में आ सकता है :—

तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

एक बार सिद्धान्त समझ लेने पर साधन-प्रणाली सुगम हो जाती है ;—

सुगम उपाय पाइबे केरे।

इस प्रकार मानस का कथा भाग रोचक है किन्तु वह जीवन के परिवर्तन मे विशेष सहायक नहीं है। इसके लिए तो सिद्धान्त समझने की आवश्यकता है :—

भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकँह दृढ़ नावा॥

यद्यपि दृढ़ नौका प्राप्त होने पर उस पार पहुँचने की संभावना हो जाती है, फिर भी, नौका खेने की क्रिया अनिवार्य है। इसी प्रकार सिद्धान्त समझ लेने पर सही साधन-पथ अपनाने के बाद ही जीवन काल में आत्यन्तिक दुख-निवृत्ति का अनुभव हो सकता है।

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥

इस प्रकार रामायण के आधार पर जीवन काल में ही मुक्ति का अनुभव हो सकता है।

मानस का प्रतिपाद्य विषय भगवान राम हैं —

यहि महं आदि मध्य अवसाना। श्रुति प्रतिपाद्य राम भगवाना॥
तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥

इससे स्पष्ट होता है कि मानस में तुलसीदास जी ने श्रीराम की कथा प्रस्तुत की है, परन्तु इसकी रचना-शैली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पौराणिक रघुवंश के नायक राम को जहाँ उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है वहीं उन्हीं राम को अखंड शक्ति, अखंड ज्ञान और अखंड आनन्द अर्थात् सच्चिदानन्द के रूप में भी प्रतिपादित किया है, जैसा कि निम्न पंक्तियों में व्यक्त है :—

राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्व रहित सब उर-पुरवासी ॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकास प्रकासक रामू। मायाधीश ग्यान गुनधामू ॥

इस मूल तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यदि हम रामायण का वैज्ञानिक विवेचन करें, तो देखेंगे कि रामचरित मानस में बीच-बीच मनु सतरूपा शिव-पार्वती, नारद-मोह, सीता-स्वयंवर आदि विविध प्रकरणों में उपाख्यायिकाओं के द्वारा गोस्वामी जी ने मानव मात्र के लिए जीवनोपयोगी दर्शन का ही प्रतिपादन किया है। इस प्रकार गंभीरतापूर्वक विचार करने पर यह पता चलता है कि श्री रामचरित मानस की रोचक रचना शैली में वस्तुतः विकारवाद का ही सिद्धान्त प्रतिपादित है और वह संक्षेप में यह है कि मानव-जीवन में भोजन से शक्ति, धन से सुख, और अध्ययन से ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती बल्कि सच तो यह है कि शरीर, मन और बुद्धि में जो विकार मल, विक्षेप और आवरण के रूप में हैं, उनके ही कारण मनुष्य को ऐसी प्रतीत होती है कि शक्ति, आनन्द और ज्ञान का सम्बन्ध भोजन, धन और अध्ययन से है। परन्तु भगवान का प्रकाश प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है। इस विचारधारा की पुष्टि मानस में मनुसतरूपा की साधना का एक छोटा-सा प्रकरण प्रस्तुत है। इस प्रकरण द्वारा गोस्वामी जी ने मानव के आध्यात्मिक विकास

के लिये साधना की विभिन्न अवस्थाओं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—का सफल दिग्दर्शन कराया है। हम देखते हैं कि गीता में जिस विषाद-योग का वर्णन है, उसे ही तुलसीदास जी ने निम्नलिखित सोरठे में इन शब्दों में व्यक्त किया है —

होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयो हरि भगति बिनु॥

'हृदय बहुत दुख लाग' से स्पष्ट है कि मनु महराज को लौकिक दृष्टि से हर प्रकार का सुख सुलभ होते हुए भी अपनी वर्तमान अवस्था से घोर असन्तोष उत्पन्न हुआ। चाहे असन्तोष जिस कारण भी हो, पर साधक के आध्यात्मिक विकास के लिए उसके अन्दर अपनी वर्तमान अवस्था में असंतोष का जागरण नितान्त आवश्यक है; क्योंकि यही उसकी साधना की पहली सीढ़ी है और इसी को आर्त अवस्था कहते हैं। इस असन्तोष के जागृत होने का प्रमाण है, उस वस्तु का त्याग जो सन्तोष न दे सकी, अतः 'बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा।' तब स्वभावतः यह जिज्ञासा उदय होती है कि अखंड आनन्ददायक "हरि-भक्ति", जिसके बिना 'जनम गयो' ऐसा अनुभव हो रहा था, कैसे मिले। प्रकृति के विधान के अनुसार इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए पथ-प्रदर्शक स्वयं आकर मार्ग दर्शन करता है।

'आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी'

और साधक पथारूढ़ हो जाता है। यही अर्थार्थी अथात् अर्थ (परम तत्व की प्राप्ति में लगना साधना की तीसरी सीढ़ी या अवस्था है और जब यह साधना सफल हो जाती है तो इसी को अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचा हुआ अर्थात् ज्ञानी कहते हैं। यह उल्लेखनीय है कि साधन-पथ की तीसरी सीढ़ी अर्थार्थी में ही साधक को चार अवस्थाओं-तीर्थाटन, शास्त्रचिंतन,

धारणा और ध्यान को पार करना होता है। इस तथ्य का उल्लेख शास्त्रों में निम्न प्रकार किया गया है :—

उत्तमा सहजाऽवस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
शास्त्र चिंतन अधमा प्रोक्ता तीर्थाटन अधमाधमा॥

मनु-सतरूपा के प्रकरण पर ध्यान देने से पता चलता है कि उनकी साधना में अर्थार्थी की अवस्था आते ही सिद्ध मुनि ज्ञानी उनके समीप आये और उन्होंने साधन-पथ का बोध कराया। ज्ञानी मुनियों ने मौखिक उपदेश न देकर स्वयं उनको कुछ साधन करके भी बताया, जैसा कि मानस की निम्नलिखित पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं :—

जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥

साधना में इसी को तीर्थाटन की अवस्था कहते हैं और तीर्थाटन से ही वास्तविक साधना प्रारम्भ होती है। इसमें केवल स्थूल इन्द्रियों का व्यापार है। मन यदि इधर-उधर भटकता भी रहे तो भी इस साधना में कठिनाई नहीं होती।

तदुपरान्त मिश्रित साधना या शास्त्र चिंतन की अवस्था आती है, जिसे इस प्रकरण में निम्न प्रकार व्यक्त किया गया है :—

सत समाज नित सुनहि पुराना।

इस साधना में इन्द्रियों के साथ मन का सहयोग आवश्यक है क्योंकि कानों से सुने हुए अथवा नेत्रों से पढ़े हुए शब्द बिना मन के सहयोग के सर्वथा निरर्थक हो जायेंगे। फिर साधना की तीसरी अवस्था आती है, जिसमें स्थूल इन्द्रियों का व्यापार बन्द किया जाता है और केवल मन से ही साधना की जाती है। यही धारणा की अवस्था कहलाती है जिसे एकाग्रता का अभ्यास भी कहते हैं। इस अवस्था में जो मन इधर-उधर भागता रहता है, उसे किसी शब्द अथवा रूप या दोनों के सहारे एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है और इस प्रकरण में

निम्नलिखित दोहे से यह प्रमाणित होता है कि मनु सतरूपा ने भी यही किया :—

द्वादस अच्छर मंत्रवर, जपहिं सहित अनुराग।
वासुदेव पद पंकरुह, दम्पति मन अति लाग॥

साधना की अन्तिम अवस्था ध्यान की है जिसमें साधक का मन निर्विषय हो जाता है। इसे मानस में 'सुमिरन' की संज्ञा दी गयी है और इस साधना विशेष में अन्न को घटा कर फल, सब्जी आदि का सेवन आवश्यक बताया गया है :—

करहि अहार साक फल कन्दा।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा।

इस अन्तरंग साधना मे यदि मन के दोनो मल (लय और *विक्षेप अर्थात् सोना और भागना) निकल जांय, तो* साधक के अहंकार का विलय हो जाता है और यही ध्यान अथवा समाधि की अवस्था कहलाती है जिसमे साधक को भगवान का साक्षात्कार होता है। मनु सतरूपा को भी अन्त मे भगवान का साक्षात्कार हुआ :—

भगत बछल प्रभु कृपा निधाना।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

इस भगवत् दर्शन से पहले साधक की परीक्षा भी होती है कि कोई सांसारिक अभिलाषायें तो नहीं हैं। इसलिए :—

बिधि हरिहर तप देखि अपारा।
मनु समीप आये बहु बारा॥
मांगहु बर बहु भांति लोभाये।
परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥

पर यदि साधक के मन मे कोई दूसरी इच्छा न हो तो उसको भगवान् का सम्यक् दर्शन अवश्य होता है। इससे स्पष्ट है कि

मनु सतरूपा की उपाख्यायिका के द्वारा सन्त तुलसीदास ने बहुत ही सुन्दर ढग स साधक के लिए केवल साधना की चार अवस्थाओं का ही वर्णन नहीं किया है, बल्कि उसके सफल प्रयोग का मार्ग भी बताया है। इसी प्रकार यदि हम मानस के प्रत्येक प्रकरण को ध्यान पूर्वक पढे तो उसमें हम मानव जीवन के आध्यात्मिक विकास का सुन्दर एव सफल दिग्दर्शन पायेंगे।

वर्तमान समय मे प्राय ऐसी प्रथा है कि प्रत्येक लेखक अपनी पुस्तक के आरम्भ म ही "प्राक्कथन", "प्रस्तावना", "आमुख" अथवा "भूमिका" ऐसा कोई शीर्षक देकर अपनी पुस्तक की रचना का उद्देश्य अलग से लिखता है। परन्तु प्राचीन काल मे लेखक अपनी पुस्तक बहुधा भगवत् वन्दना अथवा प्रार्थना से आरम्भ करते थे। अत इसमें भी पुरानी शैली के अनुसार ही वाणी विनायक की वन्दना से ग्रथ का आरम्भ हुआ है। फिर भी वन्दना के श्लोकों में ही गोस्वामी तुलसी दास जी ने मानस की रचना शैली–"नाना पुराणनिगमागम सम्मत" तथा रचना का उद्देश्य–"स्वांत सुखाय"–स्पष्ट रूप से लिखा है। इसी सम्बन्ध मे कुछ विस्तार से विचार करना है।

"स्वान्त सुखाय" का ठीक ठीक अर्थ समझने के लिए हमे दो एक और चौपाइयों को खोजना होगा, जिनमे मानस की रचना का उद्देश्य कवि ने स्पष्ट शब्दो में लिखा हो।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहि तास बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

-

भाषा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

निज सदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
[गोस्]वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस कथा को

मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से शूकर क्षेत्र में सुनी थी उसी को मैं भाषाबद्ध इसलिए कर रहा हूँ कि मेरे मन में प्रबोध हो जाय। यह पवित्र कथा संसार-समुद्र को पार करने के लिए नौका के समान है और मेरे सन्देह, मोह और भ्रम को मिटाने वाली है।

मोह अथवा अन्धकार के कारण ही सन्देह होता है। अंधेरे मे पड़ी हुई रस्सी सांप है या रस्सी–यह संदेह की अवस्था है। प्राय: संदेह की अवस्था मे क्रिया नहीं होती। जब संदेह भ्रम का रूप धारण करलेता है,जब एक प्रकार से निश्चय हो जाता है कि सर्प ही है, तभी भागने की क्रिया होती है जिसका परिणाम चोट अथवा दु:ख है। अत: दु.ख नाश के लिए मोह अथवा अन्धकार का मिटाना आवश्यक है। अन्धकार का विनाश प्रकाश से होता है। अन्धकार से दु.ख होता है और प्रकाश से दु:ख नाश। अत: रामायण में राम भक्ति की उपमा मणि से दी गई है, जिसके उपलब्ध होने पर सारे दु.ख मिट जाते हैं। 'राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके॥'

इसी प्रकाश को "प्रबोध" की संज्ञा दी गई है जिसकी प्राप्ति रामायण की रचना का उद्देश्य कहा गया है :–

मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

इस सदर्भ मे हमे "स्वान्त: सुखाय" की व्याख्या करनी है। रामायण मे तीन प्रकार के सुख माने गये हैं। एक वह सुख है जो इन्द्रियों द्वारा विषयों से प्राप्त होता है। यह वाह्य सुख है जिसे मानस में "सुख" कहा है। दूसरा वह सुख है जिसका विषय और इन्द्रियो से सम्बन्ध नहीं है। इस दूसरे प्रकार की सुख की अनुभूति हमें गहरी निद्रा की अवस्था में होती है। गहरी नींद से उठने पर हम कहते हैं कि बड़े सुख से सोये। इस सुख मे न इन्द्रियों का व्यापर हुआ और न वाह्य जगत की किसी वस्तु का आधार रहा, फिर भी सुख की अनुभूति हुई। इसी

भीतर का सुख अथवा "अन्त सुख" कहते हैं। सुख का आधार बाह्य जगत है और उसकी प्राप्ति का साधन इन्द्रियाँ हैं। 'अन्त: सुख' की उपलब्धि के लिए इन्द्रियों का व्यापार बन्द होना आवश्यक है, तभी शान्ति की अनुभूति होती है। मानस में इन दोनों प्रकार के सुखों से भिन्न—'सुख' और 'अन्त. सुख' से पर—एक तीसरे प्रकार के सुख की चर्चा है जिसे "स्वान्त अन्तः" सुख की संज्ञा दी गई है। यह प्रेम का सुख है जिसका आधार समर्पित हृदय है।

सुख कई प्रकार का होता है। आँख से सुन्दर रूप देखना, कान से मीठे शब्द सुनना, जिह्वा से स्वादिष्ट पदार्थ खाना आदि। इस बाह्य सुख में क्षण भंगुरता है, उसमें एक-रसता नहीं है। खाते-खाते तृप्ति होने लगती है, नीरसता आ जाती है। अन्त. सुख में यह दोष नहीं होता, वह अखण्ड है; पर वह एक ही प्रकार का होता है। जब इन्द्रियों का व्यापार बन्द होता है और मन रुक जाता है तो हर बार एक ही प्रकार की शान्ति मिलती है। स्वान्तः सुख अथवा प्रेम की विशेषता यह है कि वह अखण्ड भी है और अनन्त रस वाला भी। प्रेमी सदा अपने प्रेमास्पद का चिन्तन करता रहता है, उसकी स्मृति का रस अखण्ड रहता है, साथ ही अनन्त रस का भी आस्वादन करता रहता है। प्रेमास्पद का रूप देखने में, उसकी वाणी सुनने में तथा उसकी अनेक प्रकार की सेवाओं में अनन्त रस की अनुभूति होती है।

इस प्रकार 'सुख' 'अन्त सुख' और 'स्वान्त' सुख' उत्तरोत्तर उत्कृष्ट हैं। पहला अनेक रस किन्तु खण्ड है, दूसरा अखंड किन्तु एक रस है परन्तु तीसरा अखंड और अनन्त रस है। इसी "स्वान्त सुख' को प्रेम-रस अथवा भक्ति-रस कहते हैं और इसी की प्राप्ति के लिए मानस की रचना हुई है। यह प्रभु

की देन है। मानस के प्राय: सभी पात्रों ने प्रभु से इसकी याचना की है और सुन्दर काण्ड की वन्दना के श्लोक में मानसकार ने भी प्रार्थना की है—

> नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
> सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
> भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
> कामादिदोष रहितं कुरु मानसं च॥

इस प्रकार मानस की रचना का उद्देश्य 'स्वान्त: सुख' की प्राप्ति है और इस ग्रंथ के अध्ययन से तीनों प्रकार के सुखों की उपलब्धि हो सकती है। इस तथ्य का दिग्दर्शन अयोध्या-काण्ड के अन्तर्गत कोल भीलों के प्रकरण से हो सकता है। जब भगवान राम चित्रकूट में निवास करते हैं तो तीन टोलियां उनसे मिलने आती है। पहली टोली देवताओं की, दूसरी ऋषि मुनियों की और तीसरी कोल भीलों की है, जो क्रम से सुख (स्वर्ग), अन्त: सुख (मोक्ष) और स्वान्त: सुख (प्रेम) के अधिकारी हैं। देवताओं के आने पर—

> राम प्रनाम कीन्ह सब काहू।
> मुदित देव लहि लोचन लाहू॥

अर्थात् श्रुति-सेतु पालक राम ने देवताओं का आदर किया और वे भगवान का दर्शन करके मुदित हो गये। उन्होंने अपने असह्य कष्ट भगवान को सुनाये और उनकी ओर से आश्वासन पाकर अपने-अपने लोक को चले गये।

ऋषि मुनियों की टोली जब आई तो राम ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया जिससे यह सिद्ध होता है कि भगवान ने उन्हें देवताओं से अधिक आदर दिया। देवता राम को देखने के बाद मुदित हुये थे परन्तु मुनि जन 'आवत देखि मुदित मुनि वृन्दा" अर्थात् मार्ग में आते हुये ही उस मुदिता की अवस्था को,

उपलब्ध करते हैं, जो देवताओं को राम के दर्शन के अनन्तर प्राप्त हुई थी।

'मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेहीं' से भी यह स्पष्ट है कि देवताओं को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त था कि भगवान का आलिंगन कर सकें, जो मुनि जन को सुलभ हुआ। मुनिजन राम-लक्ष्मण और जानकी तीनों की छवि देखकर अपने सब साधनों को सफल मानते हैं:—

सिय सौमित्र राम छबि देखहिं।
साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

ये साधन भक्तियोग, कर्मयोग और ज्ञानयोग हैं, जिनकी सफलता सीता, लक्ष्मण व राम के दर्शन में है क्योंकि यह त्रेमूर्ति भक्ति, वैराग्य, ज्ञान का आदर्श है।

"भगति ग्यान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर"

अन्त में कोल भीलों की टोली आती है। जो आनंद देवताओं को राम के दर्शन के अनन्तर और मुनियों को मार्ग में आते समय उपलब्ध हुआ था, वही इन कोल भीलों को इस समाचार के श्रवण मात्र से, कि राम चित्रकूट में निवास करते हैं घर बैठे ही प्राप्त हो गया। वे कन्द-मूल फल के दोने भर-भर कर ऐसी प्रसन्नता से भेंट करने चल पड़े जैसे कोई निर्धन सोना लूटने दौड़ पड़े—

कंद मूल फल भरि भरि दोना।
चले रङ्क जनु लूटन सोना॥

मार्ग में राम की चर्चा करते हुए ये लोग आये—

कहत सुनत, रघुबीर निकाई।

उन्हीं की चर्चा करते हुए लौटे—

प्रभु गुन कहत सुनत घर आये।

राम के दर्शन के समय देवताओं को यह स्मरण था कि वे राक्षसों के अत्याचार से पीड़ित हैं और अपने कष्टों के निवारणार्थ उन्होंने राम से विनती की। मुनिजनों को राम-दर्शन के समय यह स्मरण था कि उन्होंने त्रिकांड की साधना की है और उनकी साधना का साफल्य सीता, राम और लषन के दर्शन में है। परन्तु कोल भीलों को राम-दर्शन के समय कुछ भी स्मरण नहीं रहा। उन्हें अपना आपा ही भूल गया—

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े।

राम ने भी जाना कि वे प्रेम में विभोर हो गये हैं, उन्हें भाव-समाधि लग गई है।

राम सनेह मगन सब जाने।

राम ने देवताओं को स्वर्ग देकर और मुनियों को मोक्ष देकर संतुष्ट किया, पर कोल भीलों को न स्वर्ग चाहिये न मोक्ष; वे तो प्रेम के पुजारी हैं जिन्हें कुछ भी नहीं चाहिये।

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु,
तुम्ह सन सहज सनेहु॥

ऐसे विशुद्ध प्रेमियों का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये ही मानसकार ने कोल भीलों का चित्रांकन किया है। प्रेम में देना ही देना है, लेना कुछ भी नहीं है। अतः जब इनकी भाव-समाधि का व्युत्थान हुआ तो इन्होंने—

हम सब भांति करब सेवकाई।

और

हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचब आयसु देता॥

मानस साधना मण्डल

—ः*ः—

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष -

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुवेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी, बी. एस.

प्रधान कार्यालय

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखड स्वास्थ्य, अखड शक्ति, अखड आनन्द, अखड ज्ञान और अखड प्रेम की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस मे वर्णित पौराणिक कथानको के आधारभत वैदिक सिद्धान्तो की साधन प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढिये

	पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१	मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'	० २५
२	मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	" " "	० २५
३	मानस मे श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	" " "	० २५
४	मानव के सर्वागीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	" " "	० २५
५	अखड स्वास्थ्य का आधार— सतुलित आहार	" " "	० २५
६	मानस के आत्यतिक दुख निवारण के आश्वासनो का आधार ।	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	० २५
७	खाद्य-समस्या एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	" " "	० २५
८	पूज्य योगी जी के साथ दो घटे	श्री रवीन्द्र सनातन, एम ए	० २५
९	मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाकल्य बी एस सी	० २५
१०	दमा से मुक्ति	सकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	० २५
११	असाध्य रोगो से छुटकारा	" " "	० २५
१२	साधन त्रिक् के प्रयोग	" " "	० २५
१३	तीन साधको से अनुभव	" " "	० ३५
१४	अन्न-त्याग के पथ पर	" " "	० २५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मडल, डी १२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें ।

ानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-३

ानस में श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप

लेखक :-

परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति १००० मूल्य २५ पैसे

मानव की मौलिक मार्गें : १ शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखड स्वास्थ्य ।
२ इन्द्रियों में थकावट विहीन अखड शक्ति ।
३ मन में चिन्ता रहित अखड आनन्द ।
४ बुद्धि में भय रहित अखड ज्ञान ।
५ अह् में द्वैत रहित अखड प्रेम ।

पचस्तरीय विकार : १ शरीर में रोग
२ इन्द्रियों में कमजोरी
३ मन में शोक
४ बुद्धि में भय
५ अह् में वियोग

पचविकारो के कारण · १ औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२ भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३ धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५ जो वास्तव मे अपने नहीं हैं उनमे ममत्व

विकारो का निवारण · १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२ युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३ विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति ।
४ विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति ।
५ सर्वभावेन आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प—३

मानस में श्रद्धा और विश्वास का स्वरूप

लेखक :—
परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगी जी'

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रारम्भिक निवेदन

मेरे पूज्य गुरुदेव ने सन् १६२६ में ही एक दिन मुझसे कहा था, 'तुम्हें रामचरित मानस के उस जीवनोपयोगी पक्ष का जनता में प्रचार एवं प्रसार करना होगा जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से समस्त दु:खों के आत्यंतिक विनाश का आश्वासन प्रदान करता है।" जब मैंने निवेदन किया कि इस विशाल कार्य के लिये तो मैं सर्वथा अयोग्य हूँ तो उत्तर मिला : "यह मेरा कार्य है और इसे मैं तुमसे करवा ही लूँगा।"

उन्होंने रामचरित मानस की कथा को आध्यात्मिक साधना की पगडंडियों के रूप में ही जाना और अनुभव किया। रामचरित मानस में निश्चित रूप से किसी श्रुति प्रतिपादित "साधन पथ" का वर्णन है, जिसे यदि मानव अपना सके तो उसके व्यक्तिगत जीवन में शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संचार होकर उसके रोग, दुख और भय मिट जायेंगे। साथ ही उसका सामूहिक जीवन धन धान्य से ऐसा सम्पन्न होगा कि शेष शारदा भी उसका वर्णन करने में असमर्थ हो जायँ।

मेरे भीतर किसी प्रकार की योग्यता अथवा क्षमता नहीं है, केवल प्रभु कृपा एवं संतों के आशीर्वाद का अवलम्ब ही इस साधन पथ की खोज में मेरा सहायक हो रहा है। संतों के आशीर्वाद एवं मित्रों के क्रियात्मक सहयोग से मेरा कार्यक्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है और बहुत से साधकों ने मानस प्रतिपादित साधन-पथ के अनुसार वैज्ञानिक प्रयोग भी किये हैं।

साधकों की एक गोष्ठी में, मेरी अनुपस्थिति में कुछ साधकों ने एक छोटी मासिक पत्रिका "साधक" निकालने का निर्णय किया था जिसमें इन सिद्धान्तों एवं प्रयोगों की चर्चा हो। इस प्रकार जनवरी ६३ से दिसम्बर, ६४ तक एक वर्ष 'साधक' का प्रकाशन हुआ और उसमें श्रुति प्रतिपादित मानस के विकार-वाद के सिद्धान्तों के कुछ पहलू, जैसा कि कुछ मैं समझ पाया हूँ, प्रस्तुत किये गये। परंतु 'साधक' के प्रकाशन, वितरण आदि में मेरा जितना समय लग रहा था, उससे मेरी अपनी (मानस सेवा की) साधना में बाधा पड़ रही थी, इसलिये उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। यदि इस सम्बन्ध में समाज की माँग होगी तो इस पर पुनर्विचार किया जायगा।

'मानस साधना मंडल' ने 'साधक' में प्रकाशित सिद्धान्त विवेचन सम्बन्धी प्रकरणों को प्रकाशित करने का निश्चय किया है जिससे पाठकों को इन पर विचार कर उन्हें हृदयंगम करने में सुविधा हो।

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०　　　　—हृदय नारायण

मानस में श्रद्धा और विश्वास का स्वरूप

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा. स्वान्त स्थमीश्वरम्।

रामचरित मानस के प्रारम्भ में ही गोस्वामी तुलसीदास जी ने शिव और पार्वती की वंदना की है, और उनकी कृपा के बिना हृदयस्थ ईश्वर का साक्षात्कार असम्भव है, ऐसा बलपूर्वक कहा है। रामायण में राम को ही हृदयस्थ ईश्वर कहा गया है :

'अन्तरजामी राम ' तथा 'सबके उर अन्तर बसहु' आदि। इस प्रकार शिव-पार्वती की कृपा से राम का दर्शन होता है यह बात सिद्ध हुई, अर्थात राम साध्य और शिव साधन है यह मानस का सिद्धान्त है। इसी तथ्य को निम्न शब्दों मे भी कहा है :—

सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अविरल भगति राम-पद होई॥
जा पर कृपा न करहिं पुरारी।
सो न पाव मुनि भगति हमारी॥

अत शिव कृपा से राम भक्ति मिलती है और राम-भक्ति की रूप रेखा इन शब्दों मे व्यक्त की गई है :—

राम भगति मनि उर बस जाके।
दुख लवलेस न सपनेहु ताके॥

अर्थात् जिसके हृदय मे राम भक्ति रूपी मणि रहती है उसे स्वप्न मे भी लेशमात्र दु ख नहीं होता। यह दुख-लवलेश-विहीन-अवस्था की माँग प्राणीमात्र की मौलिक माँग है, जीवन का

लक्ष्य है, और इस माँग की पूर्ति शिव पार्वती की कृपा से ही सम्भव है। यदि राम दु:ख-लवलेश-विहीन-अवस्था हैं तो शिव पार्वती भक्ति और ज्ञान रूपी-साधन हैं जिनके द्वारा दु:ख निवृत्ति होती है।

ग्यानहि भगतिहि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव-सम्भव खेदा॥

इस प्रकार साधन तत्व दो भागों में विभाजित है :—एक विचार-प्रधान और दूसरा भावना-प्रधान, या यों कहिये कि साधन के दो मार्ग हैं :—एक है ज्ञान या विश्लेषण का मार्ग जिसे श्रद्धा अथवा सत्य की खोज का मार्ग भी कहते हैं, और दूसरा है भक्ति या सरल विश्वास का मार्ग।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

इस श्लोक के "याभ्यां" शब्द से स्पष्ट है कि भगवत् साक्षात्कार के लिए अन्त में दोनों आवश्यक हैं अर्थात् जानने वाला मान जाता है और मानने वाला जान जाता है। यही अर्धनारीश्वर के स्वरूप का रहस्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री रामचरित मानस में पार्वती जी को विचार-प्रधान तथा शिव जी को भावना-प्रधान साधक के रूप में चित्रित किया गया है।

विचार-प्रधान साधना के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि साधक को अपनी वर्तमान विचारधारा में अविश्वास या सन्देह पैदा हो जाय, क्योंकि अपनी वर्तमान विचारधारा में असन्तोष या अविश्वास अथवा सन्देह हुए बिना खोज या विश्लेषण की प्रवृत्ति ही नहीं जागृति हो सकती। मानस की पार्वती के चरित्र पर ध्यान देते ही यह पता चलता है कि पहले उनका विचार था कि :—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥

परन्तु जब उन्होंने शिव जी के मुख से

"जय सच्चिदानन्द जग पावन ।"—सुना

तो सती को अपनी वर्तमान जानकारी मे सन्देह उत्पन्न हो गया । उनके सामने एक समस्या आ खड़ी हुई। एक ओर जहाँ उनका विचार था कि चराचर में व्याप्त सत्ता का एक रूप मे अवतार नही हो सकता, वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा कि शिव जी ने श्रीराम को, जो जानकी के वियोग मे अज्ञानियों की तरह विकल हो रहे थे, प्रणाम किया और उनकी छवि को देखकर आनन्द मे विभोर हो गये। इस समस्या ने ही सती की वर्तमान विचारधारा मे सदेह उत्पन्न कर दिया जिससे उनके अन्दर श्रद्धा या खोज की प्रवृत्ति जागृत हुई और वे सत्य की खोज करने को उद्यत हुईं। शिवजी को जब सती की इस आन्तरिक उलझन का बोध हुआ तो उन्होंने सती को अनेक प्रकार से यह समझाने का प्रयत्न किया कि वे श्रीराम को भगवान् मान लें जैसा कि मानस के निम्नलिखित छन्द से स्पष्ट है :—

मुनिधीर जोगी सिद्ध संतत विमल मनजेहि ध्यावहीं ।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी ।
अवतरेउ अपने भगत हित निज तंत्र नित रघुकुलमनी ॥

परन्तु—

"लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु ।"

ऐसा होना स्वाभाविक ही था, क्योंकि सती की विचारधारा शिव की विचारधारा से सर्वथा भिन्न है। जहाँ शिवजी

भक्ति या सरल विश्वास से अर्थात् किसी को हृदय से मान कर उसके दर्शन की इच्छा करते हैं, वहाँ सती अपनी बुद्धि द्वारा पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद ही उसे मानने को तैयार होती हैं। जब शिव और सती के विचार अथवा मार्ग में इतना मौलिक अन्तर है तो भला सती शिवजी की बातों को बिना समझे बूझे मानने को कैसे तैयार होतीं ? अतः वे शिवजी की आज्ञा पाकर उनकी बातों की सच्चाई की परीक्षा लेने चलीं।

पुनि पुनि हृदय विचारि करि, धरि सीता का रूप।
आगे चलि होइ पंथ तेहि, जेहि आवत नर भूप॥

सती का यह अनुमान था कि यदि श्रीराम कोई राजकुमार होंगे तो वे उनके कृत्रिम रूप को देखकर उन्हें (सती को) सीता ही समझेंगे परन्तु यदि वे भगवान होंगे, जैसा शिवजी ने कहा है, तो वे (भगवान् राम) समझ लेंगे कि परीक्षा लेने के लिये ही सीता का वेश रखकर सती बैठी हैं। परन्तु भगवान् राम ने उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम करके यह तो सिद्ध कर दिया कि उन्होंने सती को पहचान लिया है परन्तु इसके बाद उन्होंने उनसे (सती से) पूछा कि शिवजी कहाँ हैं और वे अकेली जंगल में क्यों घूम रही हैं ? इस उत्तर में एक ओर सर्वज्ञता और दूसरी ओर अल्पज्ञता की झलक मिलती है। इससे सती को अपने इन्द्रिय जन्य तथा बुद्धिजन्य ज्ञान की असफलता प्रमाणित हो गयी। इन्द्रियजन्य ज्ञान के ही कारण सती को श्रीराम राजकुमार दिखाई दे रहे थे और वे अपने बुद्धिजन्य ज्ञान के द्वारा सीता का वेश रखकर इस बात की परीक्षा लेने चली थीं कि श्रीराम भगवान् के अवतार हैं या एक साधारण मानव। परन्तु इस कार्य में भी उनकी बुद्धि चकरा गयी और इस प्रकार उनके बुद्धिजन्य ज्ञान की असफलता ही साबित हुई। अतः सती इस नतीजे पर पहुँचीं कि वे श्रीराम को न तो अपने इंद्रिय

जन्य ज्ञान (Perceptual Knowledge) के द्वारा पहचान सकती हैं और न अपने बुद्धिजन्य ज्ञान (Intellectual Knowledge) के द्वारा ही जान सकती हैं।

जब साधक ऐसी मन: स्थिति पर पहुँचता है अर्थात् "दुखी" होता है, तो प्रभु अपनी एक झलक दिखा देते हैं :—

जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्रगट जनावा॥

और सती को एक विलक्षण अनुभूति हुई :—

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना॥

इस दर्शन के फलस्वरूप—

"हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं" की स्थिति आई और वे आँख मूंद कर मार्ग मे बैठ गईं। फिर आँख खुली तो वहाँ उन्हे कुछ नहीं दिखा।

सती-चरित्र मे बहुत विस्तार है, पर संक्षेप मे इस अनुभूति के दो परिणाम हुए।

(१) इस खोज (Trial & error) के मार्ग मे त्रुटियाँ भी होती हैं जिनके कारण साधक को दुख भोगना पड़ता है :—

'सती कीन्ह सीता कर वेषा।'

शिव जी के इष्टदेव की स्त्री का रूप धारण करना यद्यपि परीक्षा के लिए ही था, फिर भी यह शिवजी (भक्ति-पथ) की दृष्टि से ऐसी त्रुटि थी जिसके कारण उनका परित्याग और उन्हे कष्ट भोगना पड़ा—

हृदय सोचु समझत निज करनी।
चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥

अत: शिवजी ने—

'एहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं' का महान संकल्प किया।

(२) सती ने यह समझ लिया कि दक्ष की कन्या होने के नाते वे सत्य की अनुभूति करने मे असमर्थ रही हैं क्योंकि दक्षत्व शिवत्व का तिरस्कार है। बुद्धि के द्वारा किसी तत्व को

( )

य ज्ञान (Perceptual Knowledge) के
ती हैं और न अपने बुद्धिजन्य ज्ञान (Intell
ledge) के द्वारा ही जान सकती हैं।

जब साधक ऐसी मनः स्थिति पर पहुँचता है
ता है, तो प्रभु अपनी एक झलक दिखा देते हैं
ाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाव कछु प्र

और सती को एक विलक्षण अनुभूति हुई :-
ँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुन

इस दर्शन के फलस्वरूप—

"हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं" की स्थिति
ाँख मूँद कर मार्ग में बैठ गईं। फिर आँख
न्हें कुछ नहीं दिखा।

सती-चरित्र में बहुत विस्तार है, पर संक्षेप में
दो परिणाम हुए।

(१) इस खोज (Trial & error) के मार्ग में
ाती हैं जिनके कारण साधक को दुख भोगना पड़

'सती कीन्ह सीता कर वेषा।'

शिव जी के इष्टदेव की स्त्री का रूप धारण क
रीक्षा के लिए ही था, फिर भी यह शिवजी (भ
ष्टि से ऐसी त्रुटि थी जिसके कारण उनका परि
न्हें कष्ट भोगना पड़ा—

हृदय सोचु समझत निज करनी।
चिंता अमित जाइ नहिं बर

अतः शिवजी ने—

'एहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं' का महान सं

(२) सती ने यह समझ लिया कि दक्ष की क
ावे वे सत्य की अनुभूति करने में असमर्थ रहीं
चरत शिवत्व का तिरस्कार है। बुद्धि के द्वारा कि

के मार्ग में साधक अपनी ओर से ज़रा भी प्रयास नहीं करता, यह तो श्रम-रहित शरणागति का मार्ग है :

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती ।
बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती ॥

भक्ति की साधना श्रवण से प्रारम्भ होती है जो मानस के इस प्रसंग से स्पष्ट है :—

राम कथा मुनिबर्ज बखानी ।
सुनी महेस परम सुख मानी ॥

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि जी के आश्रम पर जब भगवान राम पधारे और मुनिराज ने उन्हें चौदह स्थान गिनाये, जहां वे जानकी तथा श्री लखनलाल सहित निवास करें, तो वहां भी पहले श्रवण और फिर दर्शन की इच्छा का क्रम मिलता है :—

जिनके श्रवण समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह रूरे ॥

इसके बाद दर्शन की इच्छा :

लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति मार्ग में श्रवण के बाद दर्शन का क्रम आता है। भक्त जब भगवान का गुणानुवाद सुनता है तो उसके हृदय में उनके दर्शन की प्रबल इच्छा स्वतः जागृत हो जाती है और यह स्वाभाविक है। कुंभज ऋषि के आश्रम में भगवान राम का गुणगान सुनने के बाद शिवजी के मन में उन्हें (श्रीराम को) देखने की उत्कट इच्छा हुई।

तत्परता और इन्द्रिय संयम (तपस्या) के द्वारा ज्ञान को उपलब्धि करता है। श्रीरामचरित मानस श्रद्धा के पूर्व समस्या अर्थात् अपनी वर्तमान विचारधारा में सन्देह अथवा अविश्वास का होना, श्रद्धा की जागृति के लिये अनिवार्य मानता है। इस प्रकार मानस के अनुसार ज्ञान या श्रद्धा के मार्ग द्वारा जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् श्रीराम की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित चार सीढ़ियों को पार करना परम आवश्यक है :—

१. समस्या २. श्रद्धा ३. तत्परता और ४ तपस्या।

१. समस्या अर्थात् साधक की अपनी वर्तमान विचारधारा में संदेह अथवा अविश्वास की उत्पत्ति।

२. श्रद्धा, जिसके द्वारा साधक के मन में सत्य की खोज की प्रवृत्ति या प्रबल इच्छा हो जाती है।

३. तत्परता, जिसमें साधक अपनी वर्तमान परिस्थिति को बदलने के लिये खोजे हुए मार्ग पर अपने लक्ष्य की प्राप्ति तक निरंतर चलता रहता है।

४. तपस्या से हमारा अर्थ है, आई हुई कठिनाइयों को सहर्ष स्वीकार करना।

श्री रामचरित मानस की पार्वती जी के चरित्र-चित्रण में इन्हीं चारों सीढ़ियों का समावेश है जिसके द्वारा वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल हुईं।

महात्मा तुलसीदास जी के 'मानस' में एक ओर जहाँ माता पार्वती के चरित्र द्वारा 'ज्ञान' या श्रद्धा के मार्ग का दिग्दर्शन कराया गया है वहाँ दूसरी ओर शिव जी के चरित्र को 'भक्ति' या विश्वास के मार्ग के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। यह तो अपने सरल स्वभाव के कारण अदृश्य में प्रत्यक्षवत् विश्वास करके, हृदय से मान कर चलने का मार्ग है। 'भक्ति'

के मार्ग में साधक अपनी ओर से जरा भी प्रयास नहीं करता, यह तो श्रम-रहित शरणागति का मार्ग है :

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती ।
बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती ॥

भक्ति की साधना श्रवण से प्रारम्भ होती है जो मानस के इस प्रसंग से स्पष्ट है :—

राम कथा मुनिवर्ज बखानी ।
सुनी महेस परम सुख मानी ॥

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि जी के आश्रम पर जब भगवान राम पधारे और मुनिराज ने उन्हें चौदह स्थान गिनाये, जहां वे जानकी तथा श्री लखनलाल सहित निवास करें, तो वहां भी पहले श्रवण और फिर दर्शन की इच्छा का क्रम मिलता है :—

जिनके श्रवण समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह रूरे ॥

इसके बाद दर्शन की इच्छा :

लोचन चातक जिन्ह करि राखे ।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति मार्ग में श्रवण के बाद दर्शन का क्रम आता है। भक्त जब भगवान का गुणानुवाद सुनता है तो उसके हृदय में उनके दर्शन की प्रबल इच्छा स्वतः जागृत हो जाती है और यह स्वाभाविक है। कुंभज ऋषि के आश्रम में भगवान राम का गुणगान सुनने के बाद शिवजी के मन में उन्हें (श्रीराम को) देखने की उत्कट इच्छा हुई।

इस तथ्य को मानस की निम्नलिखित पंक्तियां बड़े सुन्दर ढंग से प्रमाणित करती हैं:—

हृदय विचारत जात हर,
केहि विधि दरसन होइ।

भक्त को किसी योग्यता, प्रयास या साधना की आवश्यकता नहीं होती। इसके लिये तो तीव्र अभीप्सा मात्र ही पर्याप्त है और "राम सदा सेवक रुचि राखी।" के अनुसार शिवजी को श्रीराम के दर्शन भी प्राप्त हुए और वे आनन्द में विभोर हो गये :—

संभु समय तेहि रामहि देखा।
उपजा हिय अति हरषु विसेषा॥

परन्तु भक्त के जीवन मे यह आनन्द स्थायी रूप से तब तक निवास नहीं कर सकता जब तक उसका अन्त करण परासक्ति और पराश्रय से सर्वथा रहित न हो जाय। शिवजी अपनी अर्द्धांगिनी सती को अपना मानते थे और उनसे 'परम प्रेम' था। इस संसार मे जब तक किसी वस्तु या व्यक्ति से, अपना समझ कर, प्यार या सहारा बना रहता है, तब तक आनन्द की धारा सतत नहीं प्रवाहित हो सकती। अत: शिवजी के विकास के लिये यह परमावश्यक था कि सती के प्रति उनकी यह ममत्व की भावना हटे और इसके लिये भगवान ने सती के दिमाग में सीता का वेष रख कर परीक्षा लेने की जो बात उत्पन्न कराई इससे एक ओर जहाँ ज्ञान मार्गावलम्वी सती ने अपने कल्याण के लिये इन्द्रियजन्य ज्ञान के बाद बुद्धिजन्य ज्ञान और बुद्धिजन्य ज्ञान के बाद आत्मज्ञान की क्रमिक सीढ़ियों पर आरोहण किया, वहीं दूसरी ओर सती द्वारा उनके (शिवजी के) आराध्यदेव की अर्द्धांगिनी सीता का वेष रखने के कारण शिवजी ने उनसे (सीती से) अब अपनी स्त्री के रूप में प्यार करना भक्ति निष्ठा के दृष्टिकोण से पाप समझा :—

सती कीन्ह सीता कर वेषा।
सिव उर भयेउ विषाद विशेषा॥
जो अब करउं सती सन प्रीती।
मिटइ भगति पथ होइ अनीती॥

परन्तु

परम प्रेम नहिं जाइ तजि,
किये प्रेम बड़ पाप।

शिवजी के जिस हृदय में श्रीराम को देखकर आनन्द की धारा प्रवाहित हो चली थी, उसी में अब "अधिक सताप" आ गया, इसका कारण वही ममत्व था, जिसे मिटाने के लिये भगवान ने यह परिस्थिति पैदा कर दी। ऐसी समस्या उपस्थित होने पर भक्त सिवाय भगवान की शरण में जाने के और कोई दूसरा उपाय नहीं करता और हम देखते हैं कि शिवजी ने भी सिर्फ श्रीराम का ध्यान किया, जिससे उनके भीतर सती-त्याग का आदेश और उसके लिये पर्याप्त मनोबल मिला, जैसा कि निम्नलिखित चौपाई से स्पष्ट है :—

तब संकर प्रभु पद सिर नावा।
सुमिरत राम हृदय अस आवा॥
एहि तन सतिहि भेंट मोहिं नाहीं।
शिव संकल्प कीन्ह मन माहीं॥

ऊपर कहा जा चुका है कि भक्ति मार्ग के साधक को अपनी ओर से कोई प्रयास या परिश्रम नहीं करना पड़ता। इस मार्ग में तो भगवान का सुमिरन ध्यान मात्र ही पर्याप्त है। अत शिवजी ने अपनी समस्या का हल प्राप्त करने के लिये भगवान का चिन्तन-सुमिरन किया जिसमें उन्हें आदेश हुआ कि वे उस शरीर से सती के त्याग का सकल्प करें और त्याग की पूरी सामर्थ्य भी उन्हें मिली। प्रकरण लम्बा है मगर संक्षेपतः, सती ने अपने

६. चिदानन्द की उपलब्धि और जिज्ञासुओं तथा भक्तों के बीच अधिकार भेद के अनुसार उसका समुचित वितरण जिससे —

७. भगवान का सम्यक् दर्शन प्राप्त होता है और फिर भक्त भगवान का निमित्त बन जाता है।

'ज्ञान' और 'भक्ति' अर्थात् श्रद्धा और विश्वास दोनों के द्वारा साधक के, इस संसार के सब दुःखों की निवृत्ति होती है, फिर भी भगवान को भक्त अधिक प्यारे इसलिये होते हैं क्योंकि वे भगवान के ही निमित्त बन कर उनकी लीला में सहयोग देते हैं और ज्ञानी संसार को अनित्य और दुखद।

"अनित्यं असुखं लोकम्"
समझ कर मोक्ष उपलब्ध करते हैं।

तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी।
ग्यानिहु ते अति प्रिय विग्यानी॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

—o:o—

श्री कुवेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मंडल, डी-१२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित, तथा नवभारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तो की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियो एवं संस्थाओ से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट है।

अध्यक्ष :
परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी, बी एस.

प्रधान कार्यालय :
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनन्द, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस मे वर्णित पौराणिक कथानको के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तो की साधन-प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढ़िये

पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'	०.२५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	,, ,, ,,	०.२५
३. मानस मे श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	,, ,, ,,	०.२५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	,, ,, ,,	०.२५
५. अखंड स्वास्थ्य का आधार— सतुलित आहार	,, ,, ,,	०.२५
६. मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनो का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
७. खाद्य-समस्याः एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	,, ,, ,,	०.२५
८. पूज्य योगी जी के साथ दो घटे	श्री रवीन्द्र सनातन, एम. ए.	०.२५
९. मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाकल्य बी. एस-सी.	०.२५
१०. क्षमा से मुक्ति	संकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
११. असाध्य रोगो से छुटकारा	,, ,, ,,	०.२५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	,, ,, ,,	०.२५
१३. तीन साधकों से अनुभव	,, ,, ,,	०.३५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	,, ,, ,,	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मडल, डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-४

मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा

लेखक -
परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

तृतीयावृत्ति ३०००

मूल्य २५ पैसे

मानव की मौलिक मांगें : १. शरीर मे रोग की सम्भावना रहित अखड स्वास्थ्य ।
२ इन्द्रियों मे थकावट विहीन अखड शक्ति ।
३ मन मे चिन्ता रहित अखड आनन्द ।
४ बुद्धि मे भय रहित अखड ज्ञान ।
५ अहं मे द्वैत रहित अखड प्रेम ।

पंचस्तरीय विकार
१ शरीर मे रोग
२ इन्द्रिया मे कमजोरी
३ मन मे शोक
४ बुद्धि मे भय
५. अहं मे वियोग

पंचविकारो के कारण : १ औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२ भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नही हैं उनमे ममत्व

विकारो का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प— ४

मानव के सर्वांगीण विकास की रूप-रेखा

लेखक :—

परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगी जी'

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रारम्भिक निवेदन

मेरे पूज्य गुरुदेव ने सन् १६२६ में ही एक दिन मुझसे कहा था, 'तुम्हें रामचरित मानस के उस जीवनोपयोगी पक्ष का जनता में प्रचार एवं प्रसार करना होगा जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से समस्त दुःखों के आत्यंतिक विनाश का आश्वासन प्रदान करता है।" जब मैंने निवेदन किया कि इस विशाल कार्य के लिये मैं सर्वथा अयोग्य हूँ तो उत्तर मिला. "यह मेरा कार्य है और इसे मैं तुमसे करवा ही लूँगा।"

उन्होंने रामचरित मानस की कथा को आध्यात्मिक साधना की पगडण्डियों के रूप में ही जाना और अनुभव किया। रामचरित मानस में निश्चित रूप से किसी श्रुति प्रतिपादित "साधन पथ" का वर्णन है, जिसे यदि मानव अपना सके तो उसके व्यक्तिगत जीवन में शक्ति आनन्द और ज्ञान का संचार होकर उसके रोग, दुःख और भय मिट जायेंगे। साथ ही उसका सामूहिक जीवन धन धान्य से ऐसा सम्पन्न होगा कि शेष शारदा भी उसका वर्णन करने में असमर्थ हो जायँ।

मेरे भीतर किसी प्रकार की योग्यता अथवा क्षमता नहीं है, केवल प्रभु कृपा एवं संतों के आशीर्वाद का अवलम्ब ही इस साधन पथ की खोज में मेरा सहायक हो रहा है। संतों के आशीर्वाद एवं मित्रों के क्रियात्मक सहयोग से मेरा कार्यक्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है और बहुत से साधकों ने मानस प्रतिपादित साधन पथ के अनुसार वैज्ञानिक प्रयोग भी किये हैं।

साधकों की एक गोष्ठी में, मेरी अनुपस्थिति मे कुछ साधकों ने एक छोटी मासिक पत्रिका "साधक" निकालने का निर्णय किया था जिसमे इन सिद्धान्तों एवं प्रयोगों की चर्चा हो। इस प्रकार जनवरी ६३ से दिसम्बर, ६४ तक एक वर्ष 'साधक' का प्रकाशन हुआ और उसमे श्रुति प्रतिपादित मानस के विकारवाद के सिद्धान्तों के कुछ पहलू, जैसा कि कुछ मैं समझ पाया हूँ, प्रस्तुत किये गये। परतु 'साधक' के प्रकाशन, वितरण आदि में मेरा जितना समय लग रहा था, उससे मेरी अपनी (मानस सेवा की) साधना मे बाधा पड़ रही थी, इसलिये उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया। यदि इस सम्बन्ध मे समाज की माँग होगी तो इस पर पुनर्विचार किया जायगा।

'मानस साधना मडल' ने 'साधक' मे प्रकाशित सिद्धान्त विवेचन सम्बन्धी प्रकरणों को प्रकाशित करने का निश्चय किया है जिससे पाठकों को इन पर विचार कर उन्हें हृदयंगम करने में सुविधा हो।

—हृदय नारायण

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०

प्रकाशक का निवेदन

श्री रामचरित मानस मे मानव को सब प्रकार से सुखी करने के जो दावे किए गये हैं, उनका आधार वे वैदिक सिद्धांत एवं तांत्रिक प्रणालियां हैं, जो मानस मे कथानकों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं।

मानव के समन्वित अर्थात् सर्वांगीण विकास का संकेत वंदना के बाद के ही प्रारम्भिक पांच सोरठों मे किया गया है। इन सोरठों की जो व्याख्या परमपूज्य योगी जी ने इस पुस्तिका मे प्रस्तुत की है, वह सर्वथा नवीन और अनोखी ही नहीं है, प्रत्युत जीवनोपयोगी और व्यावहारिक भी है।

मानव के हर प्रकार के दुखों का कारण प्रत्येक स्तर पर विद्यमान विकार ही हैं। ये विकार पांच स्तरों पर रहते हैं और भगवान की कृपा से उनका नाश होता है। इसीलिए इन पांच स्तरों के विकारों को दूर करने के लिए भगवान की पांच शक्तियों के प्रतीक गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और गुरु से प्रार्थना की गई है। मानस के अन्त मे गोस्वामी जी ने इसी को और स्पष्ट करते हुए अपना विश्वास निम्न शब्दों मे व्यक्त किया है :—

"दारुण अविद्या जनित पंच विकार श्री रघुपति हरें।"

और "पायो परम विकास" कह कर उन विकारों के दूर होकर अखण्ड स्वास्थ्य, शक्ति, आनन्द, ज्ञान और प्रेम के जागरण को भी प्रमाणित कर दिया गया है।

इस पंच-सूत्री साधना का प्रयोग जिन साधकों ने किया है, उनका विवरण मानस साधना मण्डल के अन्य प्रकाशनों में दिया गया है और आगे के प्रकाशनों में भी दिया जायगा।

हमें आशा है कि पाठक गण इसका गम्भीरतापूर्वक पठन-पाठन एवं मनन कर इससे लाभ उठावेंगे।

२३, मार्च, १९६६, कुबेर प्रसाद गुप्त

मानव के सर्वांगीण विकास की रूप-रेखा

रामायण का हमारे दैनिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। उसमें बार-बार आश्वासन दिया गया है कि उसके अध्ययन से हमारे शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—सभी स्तरों का सर्वाङ्गीण विकास होगा। मेरा विश्वास है कि मानस के प्रारम्भिक पाँच सोरठों का मानव के इन पांच स्तरों से सम्बन्ध है और मानस-प्रतिपादित साधन-प्रणाली के वैज्ञानिक प्रयोग के द्वारा मानव के इन पाच स्तरों के अविद्या-जन्य पंच विकार—रोग, थकावट, चिन्ता, भय और द्वैत-भावना—का समूल विनाश होकर भगवत्कृपा से मानव के जीवन में अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनन्द, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम का संचार होगा।

मानस के प्रतिपाद्य विषय भगवान राम हैं—

> जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना।
> प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

परन्तु, राम की ही शक्ति का अनेक देवताओं के रूप में प्रादुर्भाव हुआ है जिनमें ये पाँच मुख्य हैं—गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव और गुरु जिनकी वदना मानस के प्रारम्भिक पांच सोरठों में है। इन पंचदेवों का सम्बन्ध मानव जीवन के पाच स्तरों से है जिन्हे पचकोश भी कहते हैं—अन्नमय (Physical), प्राण मय (vital), मनोमय (emotional), विज्ञान मय (intelle-al), और आनन्द मय (Spiritual)। इन्हीं पंच कोशों में

मोह के कारण जो पंच विकार हैं वे भगवत् प्रकाश से नष्ट हो जाते हैं। इन पाँच देवताओं का स्थान मानव शरीर के पाँच प्रधान चक्रों में है—मूलाधार, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार, जो क्रम से गुदा के ऊपर, नाभि, हृदय, भ्रू-मध्य और मस्तक के मध्य (ब्रह्म रंध्र के बीच) में हैं। पाँचों देवताओं में से प्रत्येक, एक तत्व विशेष का अधिष्ठातृ देव है, जो क्रम से पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश हैं। इन पंच देवों की कृपा से मानव के शरीर में स्वास्थ्य, इन्द्रियों में शक्ति, मन में आनन्द, बुद्धि में ज्ञान और अहम् में प्रेम की उपलब्धि होती है जिससे—

"दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके"

की अनुभूति स्वत: हो जाती है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए रामायण में जिस पंच सूत्री साधन-प्रणाली का प्रतिपादन है उसके पंच अवयव हैं—संतुलित आहार, युक्ति-युक्त उपवास, विवेक-पूर्ण सेवा, विधिवत् ध्यान और सर्वभावेन् आत्म-समर्पण।

इस पंच सूत्री साधन-प्रणाली के सम्बन्ध में, जैसा कुछ मैं समझ पाया हूँ और जिस पर मेरे मित्रों ने वैज्ञानिक प्रयोग किए हैं, उसे कुछ विस्तार से समझने की आवश्यकता है।

जैसा निवेदन किया जा चुका है, मानस के प्रारम्भिक पाँच सोरठों का मानव के पंच कोशों से संबंध है और उनमें, मानस-प्रतिपादित साधन-प्रणाली के द्वारा, स्वास्थ्य, शक्ति, आनन्द, ज्ञान और प्रेम की उपलब्धि हो सकती है।

मानव समाज के समक्ष सदा से दो विभिन्न विचार-धाराओं अभाववाद और विकारवाद का परस्पर संघर्ष रहा है। दोनों विचारधाराएँ एक दूसरे की सर्वथा विरोधी हैं। पहली विचार धारा के अनुसार मनुष्य समझता है कि वाह्य वस्तुओं द्वारा

अभाव की पूर्ति हो सकती है और कमज़ोरी भोजन से, चिंता धन से और अज्ञान पुस्तकों के अध्ययन से दूर किये जा सकते हैं। दूसरे सिद्धान्त, विकारवाद के अनुसार रोग, चिंता और अज्ञान का कारण वह विकार है जो शरीर, मन और बुद्धि में स्थित है और उसे भीतर से बाहर निकालने से ही रोग, चिंता और अज्ञान मिट सकते हैं। मेरा विश्वास है कि मानस को विकारवाद का ही सिद्धान्त मान्य है और मानव के पंच कोशों से विकार निकालने के लिए मानस प्रतिपादित साधन प्रणाली के पाँच अवयव हैं, जिनका सम्बन्ध मानव के प्रारम्भिक पाँच सोरठों से है।

प्रथम सोरठे में श्री गणेश जी की वन्दना है--

जो सुमिरत सिद्धि होइ, गन नायक करिवर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

किसी ग्रंथ के आरम्भ मे देव विशेष की वन्दना का उद्देश्य उस देवता से उन गुणों की कामना होती है, जिनकी ग्रंथकार को आवश्यकता होती है। वदना में चुने हुए विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। जैसे लोग किसी से धन की माँग करते समय उसे कुवेर की संज्ञा देते हैं। मानसकार ने भी इसी प्रकार पाँच सोरठों मे पाँच देवताओं की वंदना साभिप्राय की है। पहले सोरठे में ग्रथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए, सिद्धि देने वाले और विघ्न-निवारक प्रथम पूज्य गणेश जी की वंदना है। गणेश जी का शरीर स्थूल है और मुख हाथी का है। तत्वों में सबसे स्थूल पृथ्वी तत्व है और अन्नमय कोश मे पृथ्वी तत्व ही प्रधान है। हाथी स्थूलता का प्रतीक है। गणेश जी मूलाधार चक्र के देवता हैं और इस चक्र मे कुडलिनी की गति हस्ति की गति के समान है। चक्रों में मूलाधार चक्र प्रथम है और देवताओं मे प्रथम पूज्य गणेश जी हैं, जो सब विघ्नों के निवारक हैं। किसी

कार्य के सुचारु रूप से संपादित होने के लिए—चाहे वह कार्य व्यक्तिगत, कौटुंबिक, सामाजिक, धार्मिक, इहलौकिक अथवा पारलौकिक हो—समस्त कार्यों में सर्व प्रथम बाधा शरीर का रोगी होना है। अत: इस चक्र का शारीरिक स्वास्थ्य से संबंध है। मानस की विचारधारा के अनुसार यह स्थूल शरीर पाँच तत्वों से बना है—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा॥

इन पाँच तत्वों से बने हुए स्थूल शरीर—केवल मनुष्यों के ही नहीं, प्राणिमात्र के शरीर मे भगवान् वैश्वानर के रूप में स्थित है :-

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:।
प्राणापान समायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ (गीता)

भगवान् ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित वैश्वानर (अग्नि रूप) होकर चार प्रकार के अन्न को पचाते हैं। इस प्रकार शरीर पंच भौतिक है। उसमें भगवान् वैश्वानर होकर स्थित हैं और भोजन चार प्रकार का है जो भगवान् ही पचाते हैं। इस मूल तथ्य को हृदयंगम करने से मानस-प्रतिपादित पंच सूत्री साधन प्रणाली के प्रथम अवयव—संतुलित आहार—का सिद्धान्त समझा जा सकता है और उस पर वैज्ञानिक प्रयोग किये जा सकते हैं।

मानव शरीर जिन पाँच तत्वों का बना है, वे क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश हैं। इनमें प्रथम चार भोजन के तत्व हैं और पाँचवा (आकाश) भोजन का नहीं उपवास का तत्व है। भारतीय वाङ्मय मे "हवा खाना", "धूप खाना" आदि वाक्य प्रयुक्त होते हैं पर "आकाश खाना" नहीं कहा जाता। वस्तुत: आकाश का पूरा समावेश शरीर में उपवा। मे ही होता है।

आकाश भोजन का तत्व नहीं, उपवास का तत्व है। शेष चार तत्वों का भोजन के जिन पदार्थों से सम्बन्ध है वे इस प्रकार हैं :—

पृथ्वी तत्व से सम्बन्धित अनाज हैं, जिनमें दालें भी हैं और गेहूँ चावल आदि भी, यद्यपि दालों में पृथ्वी तत्व अपेक्षाकृत अधिक है। ये अनाज स्थूलता लाने वाले हैं। जो लोग शारीरिक श्रम अधिक करते हैं, वे ही अधिक मात्रा में अन्न खाकर पचा सकते हैं। बौद्धिक श्रम करने वालों को इसकी कम आवश्यकता होती है, इसलिए उन्हें दिन रात में एक ही बार अनाज का भोजन करना चाहिए।

जल तत्व से सम्बन्धित भोजन के पदार्थ तरकारियाँ हैं। इनमें भी लौकी, परवल आदि हरी तरकारियों में जल तत्व अधिक है और आलू शकरकन्द आदि कन्दों में कुछ पृथ्वी तत्व भी है, पर अनाजों में जितना पृथ्वी तत्व है उससे कम। वैसे तो पंचीकरण के सिद्धान्त के अनुसार पांच तत्वों में से प्रत्येक तत्व के भीतर अन्य चार तत्वों का भी समावेश है।

अग्नि तत्व विशेष रूप से फलों में होता है यद्यपि उनमें जल तत्व भी प्रचुर मात्रा में है। फल सूर्य की गर्मी से पकते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में—

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते।

वाक्य आया। इसका अर्थ है कि जो आग हम खाते हैं उसके तीन भाग हो जाते हैं जिसका अभिप्राय अंगार वाली अग्नि नहीं किन्तु सूर्य से है। जब हम धूप खाते हैं और सूर्य की गरमी से पके हुए फल खाते हैं तो हमारे शरीर में अग्नि तत्व का समावेश होता है। फल भी दो प्रकार के होते हैं, एक रसदार और दूसरे गूदादार। गूदादार फलों में पौष्टिक तत्व अपेक्षाकृत

अधिक होते हैं और रसदार फल शरीर को शुद्ध करने में अधिक सहायक होते हैं।

चौथा तत्व—वायु—विशेष रूप से पत्तियों मे होता है जिसे रामायण में "शाक" और गीता में "पत्र" कहा गया है और दोनों ग्रन्थों मे भोजन के पदार्थों में इसकी प्रथम गणना है, यथा:—

करहिं अहार साक फल कंदा

एवं

पत्र पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति

पत्तियों में भी तुलसी, बेल आदि पत्तियों में शरीर को शुद्ध करने की शक्ति अधिक है और पालक, चौलाई आदि शाकों में इनकी अपेक्षा कम।

इस प्रकार रामचरित मानस के अनुसार तत्वों के आधार पर चार प्रकार के भोजन के पदार्थ हैं—शाक, फल, कन्द और अन्न जो क्रम से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व से सम्बन्धित हैं। दैनिक जीवन मे यदि भोजन में इन चारों का और कुछ आकाश तत्व अर्थात् उपवास का समावेश हो तो मानस के अनुसार यह "संतुलित आहार" होगा और ऐसे संतुलित आहार से शरीर स्वस्थ और रोग-मुक्त रह सकता है। मेरा विश्वास है कि गीता में भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित है और १५वें अध्याय के १४वें श्लोक के "पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" में चार तत्वों से संबंधित इसी चार प्रकार के भोजन का संकेत है जिसका स्पष्टीकरण ९वें अध्याय के २६वें श्लोक मे है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं

मे क्रम से वायु, पृथ्वी, अग्नि और जल तत्व का समावेश है। इस प्रकार के अर्थ में एक दर्शन और तंत्र है जिनके क्रियात्मक प्रयोग से समस्त रोगों का निवारण हो सकता है।

भोजन के पदार्थों से संबंधित इस सिद्धांत के अलावा हमें

भोजन की मात्रा और भोजन के समय के विषय में भी ध्यान रखना होगा। भगवान वैश्वानर हैं इसलिये भीतर से जब और जितने भोजन की मांग हो उस समय और उतना ही खाना चाहिये। बिना भूख के और स्वाद के वश अधिक भोजन करना वैश्वानर की अवहेलना है जिसका निश्चित परिणाम रोग है। भगवान के निरादर से रोग होता है ऐसा मानस में सिद्धांत रूप से कहा गया है:—

बहु रोग वियोगन्हि लोग हये।
भवदंघ्रि निरादर के फल ये॥

समझना यह है कि रोग से भगवान के निरादर का क्या संबंध है? जैसा कुछ मैं समझ पाया हूँ, वैश्वानर भगवान का ही रूप है, यथा:—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:

उस भगवान की अवहेलना तभी होती है जब हम बिना भूख के संबंधियों या मित्रों के आग्रह से अथवा स्वाद के वशीभूत होकर भोजन करते हैं। शक्ति से भोजन का संबंध मानकर श्रम से पहले भोजन करने की प्रवृत्ति भी भगवान का निरादर ही है। अत: रामायण में दोपहर से पहले भोजन करने की चर्चा नहीं है।

रिषय संग रघुबंस मनि करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवस रहा भरि जाम॥

अर्थात् भोजनोपरान्त विश्राम करने के बाद एक याम (३ घंटे) दिन शेष रहा। अत: मध्याह्न समय भोजन किया गया ऐसा स्पष्ट है। "रिषय संग" से संकेत है कि यह विरक्तों के भोजन का समय है, जिन्हें दिन में कोई विशेष कार्य नहीं करना होता। अयोध्या काण्ड में जहाँ गृहस्थों के भोजन की चर्चा है, वहाँ दिन के अंत में ही भोजन होता था, ऐसा उल्लेख है:—

पय अहार फल असन एक,
निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम व्रत,
परिहरि भूषन भोग ॥

भोजन के सम्बन्ध में अन्तिम और अत्यन्त आवश्यक नियम यह है कि भगवान वैश्वानर के रूप में सब प्राणियों के देह में स्थित हैं, अतः भोजन से कुछ अंश उसे वैश्वानर के लिये निकालना अनिवार्य है। गीता में भगवान ने कहा है :—

यज्ञशिष्टाशिन: सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ (३-१३)

यज्ञ के शेष भाग का ग्रहण करने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा अपने ही लिये जो अन्न पकाते हैं वे पाप भक्षण करते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कहा गया है :—

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचंत्यात्मकारणात्। (३-११८)

अतः भोजन करने के पहले कुछ अन्न निकाल देना आवश्यक है, जिसकी मात्रा, मेरी समझ से, चतुर्थांश होनी चाहिए क्योंकि भोजन चतुर्विध है। इस प्रकार भोजन की वस्तु मात्रा, और उद्देश्य समय का विचार करके जो भोजन करते हैं, उनको अखंड स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

दूसरे सोरठे में सूर्य की वन्दना है :—

मूक होइ वाचाल, पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलि-मल-दहन॥

छान्दोग्योपनिषद्-प्रपाठक ६ खण्ड ५ की तीसरी ऋचा में:—

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते । तस्य यः
स्थविष्टो धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः
स मज्जा, योऽणिष्ठ: सा वाक्॥

अर्थात् जो तेज हम खाते हैं उसके स्थूल भाग से अस्थि, मध्यम से मज्जा और सूक्ष्मतम भाग से वाणी बनती है। अगली

ऋचा में फिर कहा है:—तेजोमयी वागिति। अर्थात् वाणी तेजोमयी है।

इस प्रकार अग्नि तत्व से ही वाक् और हड्डी का सम्बंध है। "मूक" को "वाचाल" होने की और "पंगु" को "गिरिवर गहन" चढ़ने की योग्यता सूर्य की शक्ति से ही मिलेगी और "कलिमल दहन" में दाहकता भी अग्नि का ही गुण है। विनय-पत्रिका के दूसरे पद "दीन दयालु दिवाकर देवा" में भी 'दयालु' का शब्द, जैसा मानस के दूसरे सोरठे में प्रयुक्त हुआ है, सूर्य के लिये आया है। अतः मानस के दूसरे सोरठे में सूर्य की ही वन्दना है, ऐसा सिद्ध होता है।

शरीर में स्थित सूर्यदेव का स्थान मणिपूर चक्र है। उनकी कृपा से ही मल जल जाते हैं और विकारवाद के सिद्धान्त के अनुसार मल से ही कमजोरी है, इसलिये मलनाश से शक्ति का संचार होता है। सम्पूर्ण मलनाश से अखण्ड शक्ति का जागरण होता है।

इस सिद्धान्त के क्रियात्मक प्रयोग के लिये मानस-प्रतिपादित उपवास का सिद्धान्त यह है कि साधक क्रमशः अन्न, कन्दमूल, फल और शाक का क्रमिक परित्याग करते हुये केवल जल और वायु पर ही रह कर उपवास करे :—

संवत् सहस्र मूल फल खाए। साग खाइ सत वरष गँवाए॥
कछु दिन भोजन बारि बतासा। किये कठिन कछु दिन उपवासा॥

यह मानस में उपवास की प्रणाली है।

तीसरे सोरठे में विष्णु की वन्दना है, जो जल के अधिष्ठातृ देव हैं और अनाहत (हृदय) चक्र में निवास करते हैं। मानस में जल का सम्बन्ध रस से है :—

बिनु जल रस कि होइ संसारा।

रस की उपलब्धि हृदय में ही होती है। अतः विष्णु की कृपा से अखण्ड रस (आनन्द) की प्राप्ति होती है। यह विष्णु-

व्यापक तत्व है। मानस के अनुसार जो सब में व्यापक सत्ता है उसका क्रियात्मक आदर समय, शक्ति, धन और भोजन द्वारा सेवा करना है। इस प्रकार सबका हित ताकने से दुःख का विनाश होता है।

कबहुँ कि दुःख सबकर हित ताके।

परन्तु सेवा का सच्चा भाव उदय होने पर ही सेवा फलित होती है जिसे रामायण में इन शब्दों में कहा है :—

हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु।

किसी दीन दुःखी की "मदद" करना मात्र वास्तविक सेवा नहीं है। विवेक और सामर्थ्य के अनुसार प्रभु के नाते सेवा के भाव से जो समय, शक्ति, धन दूसरों के लिये अर्पण किया जाता है, वह मानस की इस पंचसूत्री साधन-प्रणाली का तीसरा अवयव "विवेकपूर्ण सेवा" है, जिसका फल अखण्ड रस की उपलब्धि है। मेरी समझ से दस इन्द्रियों से मानव सुख चाहता है अतः *अपनी आय का दशमांश सेवार्थ लगाना आवश्यक है।*

चौथे सोरठे में भगवान शिव की वन्दना है, जो वायु के अधिष्ठातृ देव हैं और जिनका निवास आज्ञाचक्र में भ्रूमध्य है। अभ्यास द्वारा श्वास की गति रोकने पर अथवा प्रेम के अतिरेक से, जब श्वास की गति रुकने लगती है तब मन स्थिर अर्थात् निर्विषय होता है, चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं जिसे योग कहते हैं :—

'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः" और मानस के सिद्धान्त के अनुसार योग से ही ज्ञान होता है। धर्म ते विरति जोग ते ग्याना।

अतः शिव की कृपा से अखण्ड ज्ञान की उपलब्धि होती है, परन्तु इसके लिये "विधिवत्" ध्यान का अभ्यास आवश्यक है, जिसकी प्रक्रिया मानस में नारद के प्रकरण में इस प्रकार दी गई है। पहले मन को केन्द्रीभूत करने के लिये, उसे किसी बिन्दु (शब्द रूप आदि) पर लगाते हैं।

निरखि सैलसर विपिन विभागा भयउ रमापति पद अनुरागा ॥

फिर सुमिरन की स्थिति आती है, जिसमें मन के दोनों मल—लय और विक्षेप—नहीं रहते :—

सहज विमल मन लागि समाधी ।

और अहंकार का विलय हो जाता है। इस प्रकार के अभ्यास से बुद्धि में प्रकाश आता है और सर्वत्र एक ही सत्ता दृष्टिगोचर होने लगती है, जिससे भय का विनाश होता है क्योंकि द्वैत में ही भय है।

अन्तिम, पांचवें, सोरठे में गुरु की वन्दना है, जिनका तत्व आकाश है और चक्र सहस्र दल कमल है। आकाश व्यापक तत्व है और अद्वैतानुभूति के बाद उस सर्व व्यापक प्रभु से, समर्पण द्वारा निजत्व सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यथा:—

सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥

अथवा

विश्वनाथ मन नाथ पुरारी।

इस निजत्व सम्बंध में सर्वभावेन् आत्मसमर्पण निहित है। जैसे कन्या भांवर के समय पति को सर्वभावेन् आत्मसमर्पण करती है, ऐसे ही शरणागत भक्त भी भगवान को,

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात—

ऐसा मान कर अपने को समर्पण करता है। यह बुद्धि से पार का जगत है। अतः इस सम्बंध में विशेष गुरु कृपा से ही अनुभव किया जा सकता है।

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मंडल, डी-१२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित तथा नवभारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तो की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियो एवं संस्थाओ से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष .

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री

डा० चन्द्र दीप सिंह

एम बी , बी. एस

प्रधान कार्यालय

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनन्द, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस मे वर्णित पौराणिक कथानकों के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तो की साधन-प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढ़िये

पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'	०.२५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	,, ,, ,,	०.२५
३. मानस मे श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	,, ,, ,,	०.२५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	,, ,, ,,	०.२५
५. अखंड स्वास्थ्य का आधार— सतुलित आहार	,, ,, ,,	०.२५
६. मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनों का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
७. खाद्य-समस्या : एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	,, ,, ,,	०.२५
८. पूज्य योगी जी के साथ दो घटे	श्री रवीन्द्र सनातन, एम. ए.	०.२५
९. मेरी साधना और अनुभव	पं० सूरजभान शाकल्य बी. एस-सी.	०.२५
१०. दमा से मुक्ति	संकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
११. असाध्य रोगो से छुटकारा	,, ,, ,,	०.२५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	,, ,, ,,	०.२५
१३. तीन साधको से अनुभव	,, ,, ,,	०.३५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	,, ,, ,,	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मडल, डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें ।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-५

अखंड स्वास्थ्य का आधार संतुलित आहार

लेखक :-

परमपूज्य श्री हृदयनारायण (योगीजी)

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति १०००

मू

मानव की मौलिक मांगें : १. शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य।
२. इन्द्रियों में थकावट विहीन अखंड शक्ति।
३. मन में चिन्ता रहित अखंड आनन्द।
४. बुद्धि में भय रहित अखंड ज्ञान।
५. अहं में द्वैत रहित अखंड प्रेम।

पंचस्तरीय विकार : १. शरीर में रोग
२. इन्द्रियों में कमजोरी
३. मन में शोक
४. बुद्धि में भय
५. अहं में वियोग

पचविकारों के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव में अपने नहीं हैं उनमें ममत्व

विकारों का निवारण : १. संतुलित आहार द्वारा अखंड स्वास्थ्य की प्राप्ति।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखंड शक्ति की प्राप्ति।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखंड आनन्द की प्राप्ति।
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखंड ज्ञान की प्राप्ति।
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखंड प्रेम की प्राप्ति।

"यद्यपि वर्तमान पीढ़ी किसी के वजन को उसके स्वास्थ्य की कसौटी मानती है किन्तु मेरा उस कसौटी में नितान्त अविश्वास हो गया है। यह भ्रमपूर्ण है। पूर्णत: स्वस्थ होने की कसौटी बिना थकान काम करने की क्षमता (अखंड शक्ति) एवं सतत् आरोग्य (अखंड स्वास्थ्य) है।"

……… डा० गुर हरख सिंह, एम० बी०, बी० एस०

"मेरे प्रयोगों ने भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि भोजन का सम्बन्ध शक्ति से नहीं बल्कि शरीर के निर्माण एवं पोषण से है। ……… अब स्थिति यह है कि मेरा वजन ६० पौंड कम हो गया है, पर कार्य-क्षमता बहुत बढ़ गयी है। सच तो यह है कि मेरी कार्य-क्षमता जिस अनुपात में बढ़ी है, उस अनुपात में मेरे पास काम ही नहीं है।"

—डा० चन्द्रदीप सिंह, एम० बी०, बी० एस०
मेडिकल आफिसर, इन्चार्ज, नवानगर अस्पताल (पुरुष एवं महिला कक्ष), बलिया।
प्रबन्धक, रामदहिन सिंह विद्यालय, आमघाट बलिया।
मंत्री, मानस साधना मण्डल।

प्रकाशक का निवेदन

मानव अनन्त काल से, सम्भवतः उद्भव के प्रारम्भ से ही, सतत् स्वस्थ, अखण्ड आनन्दमय और भय रहित जीवन की आकांक्षा से प्रयत्नशील है। सम्प्रति इन माँगों की किस हद तक पूर्ति हो रही है, यह सर्वविदित है। अगर ये माँगे पूरी नहीं हो रही हैं तो सोचना पड़ेगा कि क्या वे आधार और रास्ते सही हैं, जिनके सहारे हम इन मौलिक माँगों की पूर्ति की कामना और आशा लगाये हुए हैं ?

श्री रामचरित मानस में बार-बार और बड़े जोरदार शब्दों में इन मौलिक माँगों की पूर्ति का आश्वासन दिया गया है और अदृष्ट में अटूट विश्वास तथा दृष्ट संसार के अबाधित ज्ञान को इन मांगों की पूर्ति का आधार बतलाया गया है। यथा :—

"भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

याभ्यां विना न पश्यति · ·· · · ॥"

परमपूज्य योगी जी ने इस अदृष्ट के अटूट विश्वास तथा दृष्ट के अबाधित ज्ञान को जो प्रविधि उद्घाटित की है, वह मानस में प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों के अनुभव में उतारने की सरल, प्रयोगात्मक और व्यावहारिक प्रविधि है, जिसे अनेक साधकों ने अपने जीवन में अपनाकर अल्पकाल में ही संतोष-जनक परिणाम प्राप्त किये हैं।

इस पुस्तिका के प्रथम खण्ड में शरीर और इन्द्रियों के स्तर पर अखण्ड स्वास्थ्य और अखण्ड शक्ति प्राप्ति के मानस के सिद्धान्तों एवं उनके प्रयोग की विधियों के अतिरिक्त दो साधकों के तथ्यपूर्ण उदाहरण भी दिये गये हैं, जिनसे पाठकों को रोग निवारण सम्बन्धी मानस की विचारधारा एवं प्रविधि की प्रामाणिकता में सदेह करने का मार्ग शायद नहीं मिल पायेगा।

पुस्तिका के दूसरे खंड में भोजन क्या है जीवन में उसका क्या स्थान व महत्व है और बिना किसी विशेष प्रकार के सयम के किन प्रविधियों के द्वारा यानी सतुलित आहार' द्वारा किस प्रकार अखण्ड स्वास्थ्य की उपलब्धि की जा सकती है, इस पर वैज्ञानिक और व्यावहारिक विचार प्रस्तुत किये गये हैं।

पूज्य योगी जी द्वारा अखिल मानव का जो कल्याण हो रहा है उसको देखते हुए यह विश्वास सहज ही प्रमुखता प्राप्त कर लेता है कि यह पुस्तिका जन साधारण के लिए उपयोगी ही नहीं वरन एक वरदान सिद्ध होगी।

कुबेर प्रसाद गुप्त
सोमवार, १४ मार्च, १६६६ सहायक मंत्री, मानस साधना मण्डल

॥ १ ॥

अखण्ड स्वास्थ्य का आधार

कवि कुलभूषण गोस्वामी तुलसीदास जी का अमरकाव्य श्री रामचरितमानस अनेकानेक शिक्षाओं का आगार है। उन्हें यदि मानव समझ कर अपने जीवन में अपनाये तो उसकी समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएँ हल हो सकती हैं। उसका जीवन सब प्रकार से सुखी हो सकता है और उसे मानस के—

"होइ सुखी जो येहि सर परई।"

—के आश्वासन का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है। प्रस्तुत लेख में मानस की उस व्यावहारिक शिक्षा पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी जिसके आधार पर रोगों का समूल नाश हो सकता है। मानस में इस पवित्र ग्रंथ को त्रिताप-नाशक कहा गया है—

सुनु खग पति यह कथा पावनी।
त्रिविधि ताप भव भय दावनी॥ एवं
सोइ सादर सर मज्जनु करई।
महा घोर त्रयताप न जरई॥

तीनों तापों में प्रथम ताप दैहिक ही है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि व्यापा॥

दैहिक ताप का अर्थ है देह सम्बन्धी कष्ट अथवा शारीरिक रोग, थकावट आदि जिसे गीता में "जरा-व्याधि" कहा गया है।

श्री रामचरितमानस की रचना सम्वत् १६३१ में हुई थी—

संवत् सोरह से इकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥

अर्थात रामायण लगभग ३६० वर्ष पूर्व लिखी गयी थी। गत चार शताब्दियों मे मानस का राजप्रासाद से लेकर निर्धन की कुटिया तक व्यापक प्रचार हुआ है।

गाँवों और शहरों मे अखंड पाठ के आयोजन होते ही रहते है और बड़ी-बड़ी सभाओं में मानस-कथा की अमृत वर्षा होती रहती है; परन्तु कटु सत्य तो यह है कि इन ३६० वर्षों के पठन-पाठन के बाद भी आज मानसप्रेमियों के (श्रोता और वक्ता दोनों के) जीवन मे दैहिक ताप के नाश का आश्वासन चरितार्थ होता नहीं दीखता। क्या वस्तुत: मानस शिक्षा मे ऐसा कोई जीवनोपयोगी पक्ष नहीं है जिससे रोग-नाश का सीधा सम्बन्ध हो? यदि है, तो क्या कारण है कि जिस देश के घर-घर में मानस का श्रवण-मनन है, वहाँ आज रोगो का ऐसा साम्राज्य है। और रोगो के आक्रमण के अवसर पर मानस-शिक्षा का नहीं वरन् औषधियों का आश्रय लिया जा रहा है? यह मेरे लिए एक जटिल पहेली रही है। जिन विद्वानों एवं मानस-प्रेमियों से मैंने इस विषय में पूछा उनका कथन है कि सचित एवं क्रियमाण कर्म मिट जाते हैं, किन्तु प्रारब्ध कर्म नहीं! अत: मृत्यु पर्यन्त प्रारब्धानुसार रोग तो आते ही रहेंगे—लेकिन वह साधक को 'व्याप्त' न होंगे और प्रमाणस्वरूप उन्होंने—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहुहि व्यापा॥

इस चौपाई के अन्तिम शब्द 'व्यापा' पर बल देते हुए अपनी विचारधारा की पुष्टि करनी चाही; परन्तु मानस में—

"नहिं भय सोक न रोग"

लिखा है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि शोक, रोग, भय होता ही

नहीं था, ऐसा नहीं कि होता था पर "व्यापता" नहीं था। मानसकार ने बहुत बलपूर्वक कहा है कि मनुष्य-शरीर देव दुर्लभ है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन्हि गावा॥

—और जो मानव-शरीर पाकर उचित साधन-पथ नहीं अपनावेगा वह जीवनकाल में और मरने के बाद भी दुःख भोगेगा और काल कर्म तथा ईश्वर को झूँठा दोष लगाता रहेगा:—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोस लगाइ॥

मेरा विश्वास है कि मानव को त्रिताप से मुक्ति दिलाने का मानस का दावा सच्चा है और यह निश्चय ही है कि मानस में अवश्य कोई ऐसा सिद्धान्त है जिसे अपनाकर मानव रोग, दुःख और भय से मुक्त हो सकता है।

मैं मानस का एक सामान्य विद्यार्थी मात्र हूँ और इसी नाते मैं इस ग्रन्थ के उस जीवनोपयोगी पक्ष को समझने की चेष्टा कर रहा हूँ। गुरुकृपा एवं सन्तों के आशीर्वाद से जैसा कुछ मेरी समझ में आया है, उसे उन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ जो मानस पर कुछ वैज्ञानिक प्रयोग करके अपने जीवन से दैहिक ताप मिटाना चाहते हैं। मानस में त्रिताप मिटाने के लिये जिस साधन-त्रय का वर्णन है, उसमें पहला साधन 'उपवास' है।

मानस की विचारधारा के अनुसार उपवास का एक दर्शन और तन्त्र है। वस्तुत: मानस की रचना शैली पौराणिक है, सैद्धान्तिक विवेचन वैदिक है और साधन-प्रणाली तांत्रिक। अर्थात् रामायण में कथानकों के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया गया है, जिससे साधारण जनता भी उन्हें सुगमता से समझ सके। साथ ही उन सिद्धान्तों को समझने के

उपरान्त उन्हें जीवन में उतारने की सुगम प्रणाली भी वर्णित है जो तन्त्र का विषय है।

मेरा विश्वास है कि मनु शतरूपा, पार्वती और भरत की संरक्षता में अयोध्यावासियों के द्वारा किये गये साधन सम्बन्धी उपाख्यानों के आधारभूत दर्शन और तन्त्र मानव मात्र का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। यदि सिद्धान्त को भली प्रकार समझ कर सही क्रिया अपनायी जाय तो उद्देश्य की पूर्ति अवश्य होगी अन्यथा दीर्घकाल की साधना के बाद भी सफलता प्राय. दृष्टिगोचर नहीं होगी। इस सिद्धान्त के अनुसार उपवास का भी एक उद्देश्य है और इसकी पूर्ति तभी हो सकेगी जब हम उपवास का दर्शन या सिद्धान्त और तन्त्र या प्रणाली भली प्रकार समझ कर उपवास करें।

उपवास का उद्देश्य अपनी आन्तरिक शक्ति को जगाकर शरीर को शुद्ध करना है, जिससे जरा व्याधि और श्रम (थकावट) मिट जाय और भगवत्प्राप्ति में सहायता मिले। हम देखते हैं कि प्राय. हिन्दू लोग एकादशी, प्रदोष, नवरात्र आदि व्रत करते रहते हैं। मुसलमान भाई तीस तीस दिन रोजे रखते हैं, ईसाई भाई चालीस दिन तक लेन्ट (Lent) रखते हैं। फिर भी हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों के जीवन में उस आन्तरिक शक्ति का जागरण नहीं हो रहा है, जिससे वे बुढ़ापे के प्रभाव, रोग और थकावट से मुक्त हो जायें। इसका कारण जैसा कि ऊपर कहा गया है, दर्शन और तन्त्र के ज्ञान का अभाव है।

दर्शन

उपवास शब्द का विश्लेषण है उप (समीप) वास (रहना)। उपवास काल में साधक अपने अतस् में स्थित उस परमसत्ता के समीप पहुँचता है जो शक्ति, ज्ञान और आनन्द का रूप है। अत: उपवास से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि

हम इस मौलिक सिद्धान्त को हृदयंगम करलें कि (१) शरीर पाँच तत्वों मिट्टी, पानी, अग्नि, हवा और आकाश, का बना हुआ है, (२) भोजन का काम केवल शरीर निर्माण करना है, शक्ति प्रदान करना नहीं। शक्ति का सम्बन्ध भोजन से मान कर समाज में श्रम के पहले भोजन करने की जो प्रथा फैली हुई है, उसके परिणामस्वरूप लोगो के शरीर मे मल का संचय होता रहता है, जो कालान्तर मे रोग के रूप मे प्रकट होता है। उपवास काल में जब हम शरीर को भोजन नहीं देते, तब वह शक्ति, जो भोजन देने पर उसे पचाती है, इस संचित मल को उभाड़ कर निकालने मे लग जाती है। इसे मल का उभाड़ कहते हैं और इस उभाड़ से शक्तिहीनता की जो प्रतीति होती है, उसे भोजन के अभाव के कारण मान लिया जाता है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। आयुर्वेदिक सिद्धान्त है—

आहारं पचति शिखी, दोषानाहार वर्जितः

अर्थात् शिखी अथवा जठराग्नि आहार देने पर आहार को पचाती है और आहार न देने पर दोषों को पचाती है। जिसे आयुर्वेद में 'शिखी' कहा गया है उसे गीता में "वैश्वानर" की सज्ञा दी गया है :—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः
(गीता १५।१४)

भगवान कहते हैं कि मैं ही वैश्वानर के रूप मे प्राणियों के शरीर मे स्थित हूँ और चार प्रकार का भोजन मैं ही पचाता हूँ। इससे सिद्ध हुआ कि वैश्वानर ही भोजन पचाता है। जैसा कुछ मैं समझ पाया हूँ, यह शरीर पंचतत्वों का बना हुआ है, जिनमें चार तत्व मिट्टी, पानी, अग्नि और हवा भोजन के तत्व हैं और पाचवां 'आकाश' तत्व उपवास का तत्व है। भारतीय वाङ्मय में 'धूप खाओ", "हवा खाओ" ऐसे वाक्य मिलते हैं

पर आकाश खाने की बात कहीं नहीं मिलती। इन चार तत्वों से सम्बन्धित भोजन क्रमशः अनाज, तरकारियाँ, फल और पत्तियाँ हैं। शरीर शुद्धि के लिए एवं आन्तरिक शक्ति के जागरण के लिए जब साधक अपनी साधना में अग्रसर होता है तो वह अपने भोजन में से सबसे पहले स्थूलतम तत्व, पृथ्वी से सम्बन्धित अनाजों को घटाता या निकाल देता है; क्योंकि चित्त को कूटस्थ में प्रवेश कराने में अन्न का भोजन बाधक सिद्ध होता है। मानस में लिखा है—

"इहाँ उचित नहिं असन अनाजू"

यह चित्रकूट के सम्बन्ध की चौपाई है और मानस में विषय वासना रहित अन्तःकरण ही चित्रकूट है ऐसा संकेत है—

राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुवीर विहारु॥

इसी कारण मानस में साधना का जो चित्रण है उसमें अन्न के भोजन का परित्याग दिखाया गया है—

करहिं अहार साक फल कंदा।
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥

ऊपर कहा गया है कि शाक वायु तत्व से, फल अग्नि तत्व से और कद मूल जल तत्व से सम्बन्धित भोजन हैं। पृथ्वी तत्व से सम्बन्धित अनाज का समावेश इस साधना में नहीं किया गया है। माता सती की साधना के वर्णन में इसी सिद्धान्त का दिग्दर्शन है कि उन्होंने पहले अनाज छोड़कर कन्दमूल, फिर कन्दमूल छोड़ कर फल, फिर फल छोड़ कर शाक का सेवन किया—

संवत सहस मूल फल खाये।
साक खाई सत बरष गँवाये॥

इस प्रकार भोजन के क्रमिक परित्याग से शरीर स्थूलतर भोजन को छोड़कर सूक्ष्मतर भोजन पर निर्वाह करने योग्य होता जाता है। मानस में जल और वायु को भी भोजन माना गया है—

"कछु दिन भोजन वारि वतासा"

यहाँ तक भोजन का सेवन कहा गया है। इसके वाद वायु सेवन भी रोक कर आकाश तत्व में स्थित होना कठिन उपवास है—

किये कठिन कछु दिन उपवासा।

तंत्र

उपवास की प्रणाली की दो एक प्रविधियाँ (techniques) हैं जिन्हें जानना साधक के लिए आवश्यक है। ऊपर गीता के श्लोक में कहा गया है कि भगवान ही वैश्वानर के रूप में हमारे शरीर में स्थित हैं और चार प्रकार का भोजन पचाते हैं। इस वैश्वानर भगवान की अवहेलना के परिणाम स्वरूप ही, अर्थात् विना भूख लगे घड़ी देखकर, सम्बन्धियों के आग्रह से, अथवा सुविधा का ध्यान रखते हुए, विना भूख के जो भोजन किया जाता है, वह भगवान का निरादर है और इसका परिणाम रोग तथा मृत्यु है—

वहु रोग वियोगन्हि लोग हये।
भवदंघ्रि निरादर के फल ये॥

मानस में रोग को भगवान् के चरणों के निरादर का परिणाम वताया गया है। इसी निरादर के कारण आज छोटे से वड़े, यहाँ तक कि कुछ साधुजन भी रोगी होते देखे जाते हैं। अतः साधक जन अपने शरीर में स्थित वैश्वानर भगवान् की उपासना करते हुए उसे अनावश्यक भोजन नहीं देता तो उसे चाहिए कि उस बचे हुए भोजन को किसी दूसरे शरीर में स्थित

वैश्वानर भगवान् के अर्पण कर दे। मेरा सूत्र है—"जो घटे सो बटे।" इस प्रकार वैश्वानर की उपासना से शरीर का स्तर निश्चित रूप से पवित्र हो जायगा। मेरे कई मित्रों के तो राजयक्ष्मा, उभीता, दमा सरीखे असाध्य रोग बिना किसी औषधोपचार के केवल वैश्वानर भगवान् की उपासना से ही अच्छे हो गये हैं।

एक दूसरी बात यह है कि वैश्वानर भगवान् शरीर में स्थित हैं और उपवास के द्वारा उनकी उपासना करने पर, वह शरीर के मलों को उभाड़ कर भीतर से बाहर निकालने की चेष्टा करते हैं जिससे शरीर शुद्ध हो जाता है। अतः उपवास काल में जिस मल का उभाड़ होता है उसे निकालना परमावश्यक है। इसके लिये या तो योग की प्रणाली के अनुसार 'शंख-प्रक्षालन' क्रिया करनी चाहिए जिससे आँतें धुल जायँ अथवा उससे सरल और निर्दोष साधन, वस्ति (एनिमा) का प्रयोग करना चाहिए, जिससे आँतों का उभड़ा हुआ मल बाहर निकल जाता है। मल के निकलते ही शक्ति संचार का अनुभव होने लगता है क्योंकि उपवास काल में शक्तिहीनता की जो प्रतीति होती है वह उसी मल के उभाड़ के कारण होती है, न कि भोजन के अभाव से। जैसे वमन होने से पहले व्यक्ति को बड़ी निर्बलता प्रतीत होती है और उसके पैर लड़खड़ाने लगते हैं; किन्तु वमन हो जाने के बाद ही जब आदमी कुल्ला करके मुँह धो लेता है, उसे शक्ति का अनुभव होता है। ऐसा प्रायः सभी भुक्तभोगियों का अनुभव है। इससे सिद्ध होता है कि प्रतीत होने वाली कमजोरी का कारण मल का उभाड़ था, न कि भोजन का अभाव।

वितरण और एनिमा के अलावा उपवास की प्रणाली का एक तीसरा आवश्यक अंग है विश्राम। भगवान् की शक्ति शरीर के स्तर पर तीन काम करती है-ब्रह्मा का कार्य अर्थात् रचनात्मक श्रम, विष्णु का कार्य अर्थात् पोषण और शिव का कार्य

अर्थात् संहार या सफाई। उपवास-काल में साधक भोजन न करके विष्णु को शान्त रखता है, जिससे शिव अर्थात् सफाई का देवता अपना कार्य सुचारु रूप से कर सके। परन्तु यदि साधक कार्य से विरत होकर यानी विश्राम करके, ब्रह्मा को भी शान्त नहीं करेगा तो सफाई के कार्य में बाधा पड़ेगी ही। ऐसा नहीं होगा कि कार्य करने की सामर्थ्य ही न रहे; क्योंकि यह तो मौलिक सिद्धांत है कि शक्ति भगवान् से मिलती है, भोजन से नहीं; परन्तु श्रम अधिक करने में सफाई के काम में बाधा पड़ेगी। अत: अनिवार्यत: आवश्यक कामों के अतिरिक्त उपवास के दिनों में प्राय: विश्राम करना चाहिए, और अन्य साधकों के उपवास सम्बन्धी अनुभव तथा तद्विषयक साहित्य पढ़ना चाहिये जिससे उपवास की साधन-प्रणाली में आस्था स्थिर रहे।

इस प्रकार की साधना के साथ भगवान के किसी स्वरूप का चिन्तन भी हो तो साधक अपने लक्ष्य-(शिव) को पा लेता है—

भयो मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराज कुमारि।

मनु-शतरूपा ने भी इसी प्रकार क्रमश: स्थूल भोजन का परित्याग करके सूक्ष्म भोजन जल, का ग्रहण करना प्रारम्भ किया था—

पुनि हरि हेतु करन तप लागे।
बारि अधार मूल फल त्यागे॥

और अन्त में उन्होंने जल भी छोड़कर केवल वायु पर ही निर्वाह किया—

एहि विधि बीते बरप पट सहस बारि आहार।
संवत् सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥
बरप सहस दस त्यागेउ सोऊ।
ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥

आकाश का सम्बन्ध शब्द से होने के कारण पार्वती को

आकाशवाणी सुनायी दी कि तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हुआ, तुम्हे शिव की प्राप्ति होगी। मनु शतरूपा को भी आकाशवाणी हुई थी :—

मागु मागु वर भइ नभ वानी।
परम गभीर कृपामृत सानी॥
मृतक जियावनि गिरा सुहाई।

यह आकाशवाणी जीवनप्रद होती है और मनुष्य को शक्ति, आनन्द और ज्ञान से भर देती है।

इस दर्शन और तन्त्र का क्रियात्मक रूप

जैसा कुछ मैं समझ पाया हूँ, उपवास की साधना का यही दर्शन और तन्त्र है। इस दर्शन और तन्त्र का यदि हम अपनी वर्तमान परिस्थिति में प्रयोग करना चाहे तो ऐसा होना चाहिये कि जो व्यक्ति दो समय भोजन करते हैं वे एक समय का भोजन, विशेष रूप से उस समय का अन्न का भोजन क्रमश घटाना आरम्भ करें, जब उन्हें भोजन के बाद श्रम करना अनिवार्य हो और विश्राम न मिल पाये। भोजन के बाद विश्राम परम आवश्यक है—

रिपय संग रघुबस मनि, करि भोजन विश्रामु।

अत जो लोग सरकारी नौकर हैं और जिन्हें दस बजे काम पर जाना होता है वे दफ्तर से लौट कर दिन के अन्त में प्रधान भोजन करें, जिसे रामायण में 'निशि भोजन' कहा है :—

पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम व्रत, परिहरि भूषन भोग॥

और जो लोग ऐसा व्यवसाय करते हैं कि उन्हें दोपहर में विश्राम का अवसर मिल सकता है, जैसे किसान, डाक्टर आदि, उन्हें मध्याह्न में भोजन करके विश्राम करना चाहिये और रात्रि के भोजन को क्रमश घटाते हुए उसे अन्न रहित करें

तथा सब्जी, फल या दूध से काम चलावें । मेरे अधिकतर मित्र एकाहारी हैं कोई केवल मध्याह्न में, कोई केवल रात्रि में भोजन करते हैं।

इस प्रकार यदि साधक एकाहार से आगे बढ़ना चाहे तो वह सप्ताह में किसी एक दिन रवि, सोम, मंगलवार आदि को अन्न का सर्वथा त्याग कर दे। सुबह जल, दोपहर को फल, संध्या को सब्जी और रात्रि में दूध लेना प्रारम्भ करे। कुछ सप्ताह के बाद सब्जी और दूध को भी बन्द करके दिन में किसी सब्जी का रस या 'जूस' लेकर संध्या को कुछ फल ले सकता है। अन्त में दिन में दो बार केवल फल का रस या सब्जी का 'जूस' लेता हुआ अपने सारे शारीरिक और बौद्धिक कार्य किसी प्रकार की थकावट अनुभव किये बिना कर सकता है। साल में दो बार नवरात्र के अवसर पर (जब सर्दी के बाद गरमी और गरमी के बाद सरदी आती है) जब ऋतु परिवर्तन होता है, नौ दिन तक क्रमश: इस तरह से व्रत रखा जा सकता है कि पहले वर्ष दोनों नवरात्रों में फल, सब्जी और दूध पर, दूसरे वर्ष रस, फल और सब्जी पर, तीसरे वर्ष रस और फल पर तथा चौथे वर्ष केवल सूक्ष्म रसाहार पर बिना किसी प्रकार की शक्ति-हीनता का अनुभव किये रहा जा सकता है। मेरे बहुत से मित्र इस प्रकार का नवरात्र व्रत रखते हैं और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ है कि वे जरा-व्याधि और थकावट से मुक्त हैं। वे कई दिन बिना जल के केवल वायु पर और कई सप्ताह केवल जल और वायु पर बिना किसी फल, सब्जी आदि के रहकर अपना सारा दैनिक कार्य करते रहते हैं और किसी प्रकार की थकावट या कमजोरी उन्हें नहीं आती।

अन्त में मानस शिक्षा द्वारा दैहिक ताप निवारणार्थ किये गये दो सफल प्रयोगों का उदाहरण देकर इस लेख को समाप्त करता हूँ। बात सन् १९४६ की है। मेरे एक साथी को, जो गुप्त-

इर विभाग में नौकर थे, मधुमेह हो गया था जिसकी चिकित्सा के लिये उन्हे सरकारी पुलिस अस्पताल में भेजा गया। परीक्षा के बाद वहाँ के चिकित्सक ने २२-१०-४६ को यह रिपोर्ट कार्यालय में भेजी कि कर्मचारी "मधुमेह से आक्रान्त है, पेशाब में चीनी है। दाहिने फेफड़े में राजयक्ष्मा के प्रारंभिक चिह्न पाये जा रहे हैं। दो महीने की छुट्टी दवा करने के लिए दी जानी चाहिये।"

३१-१०-४६ ई० को फिर अस्पताल से रिपोर्ट भेजी गई कि रोगी शक्तिहीन और क्षीणकाय होता जा रहा है और २०-१२-४६ को डाक्टर महोदय ने लिखा 'फेफड़े राजयक्ष्मा से आक्रान्त हैं और मरीज काम करने में अयोग्य है।' १४-२-४७ की अन्तिम रिपोर्ट अस्पताल से मिली जिसमें डाक्टर ने लिखा था "राजयक्ष्मा के रोग में कोई सुधार नहीं है। यदि इनकी सेवाएँ अस्थायी हों तो इन्हें नौकरी से छुड़ा दिया जाय और इनकी जगह स्थाई व्यक्ति नियुक्त कर दिया जाय, क्योंकि ये कभी भी काम करने के योग्य नहीं होंगे।"

इस रिपोर्ट के आने पर रोगी नौकरी से निकाल दिया गया और उसे इलाज के लिये पुन: पुलिस अस्पताल में २४-३-४७ को भेजा गया जहाँ लगभग दो महीने की चिकित्सा के उपरान्त असाध्य रोगी करार देकर वह अस्पताल से हटा दिया गया।

संकट की इस भयानक स्थिति में रोगी ने मेरी सलाह पर मानस के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा प्रारम्भ की। मैंने पहले दिन प्रात: उसे हनूमान मन्दिर में बुलाकर एक घण्टे भगवान के नाम का जप कराया और उससे कहा—जितना ही अधिक नाम-जप कर सकोगे, उतने ही शीघ्र अच्छे हो जाओगे। "आई मीच टरत, रटत राम नाम के" इस वाक्य का विश्वास कराया। त्रिकाल स्नान की सलाह दी; क्योंकि मानस में 'पावन पय तिहुँ काल नहाहीं" एवं "मन्दाकिनि मज्जन तिहुँ

काला" का निर्देश है और मानसप्रतिपादित भोजन के सिद्धांत के अनुसार उसे प्रातःकाल पन्द्रह-बीस विल्वपत्र का रस एक गिलास पानी मे दिया और दोपहर में कच्चा पालक, टमाटर और अमरूद आदि ऋतु फल खाने को बताया और रात्रि में केवल दो रोटी और कुछ पकी सब्जी तथा एकादशी का उपवास। एक मास सोलह दिन यह इलाज हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप रोगी बिल्कुल चंगा हो गया। २७-६-४७ को दफ्तर की ओर से पुलिस अस्पताल मे यह पत्र भेजा गया कि 'कृपया रोगी की फिर से जाँच करें और बतायें कि क्या वह अब स्वस्थ हो गया है? उसका कहना है कि अब वह चंगा है और काम करने योग्य है।'

बड़े डाक्टर ने पत्र पर अपनी यह सम्मति लिखी "रोगी राजयक्ष्मा से आक्रान्त था अस्पताल मे भर्ती करके उसकी जाँच की जाय। विशेष कर मुख का तापमान देखा जाय।" चौदह दिन के परीक्षण के बाद अस्पताल से १२-७-४७ को अन्तिम रिपोर्ट आयी जिसमे लिखा था 'एक्सरे परीक्षण से ज्ञात होता है कि उसे अब राजयक्ष्मा रोग नहीं है। रोगी अब नौकरी के योग्य है।'

ऐसा ही उदाहरण ठाकुर हरदेवसिंह तहसीलदार का है जो लखनऊ मेडिकल कालेज के टी० बी० वार्ड में १६ महीने तक भर्ती रहे और जब वे असाध्य रोगी करार देकर अस्पताल से हटा दिये गये तो मेरे पास आये। मैंने उन्हें प्रातः मुनक्के का रस, दिन में फल और रात्रि में बिना नमक की सब्जी का सेवन कराया। भगवत् चिन्तन और दो बार स्नान से दो महीने के भीतर ही वे सर्वथा रोग-मुक्त हो गये और तब से आज तक उन्होंने एक दिन की भी छुट्टी नहीं ली है। मानस शिक्षा के आधार पर दैहिक ताप निवारण के ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं।

॥ २ ॥

सन्तुलित आहार

मानव की प्रत्येक क्रिया का आधार उसकी धारणा और मान्यता होती है। इस धारणा, मान्यता और क्रिया का सम्मिलित परिणाम ही उसका अनुभव कहलाता है। आप सब यह जानते हैं कि हिन्दू धर्मावलम्बी आये-दिन व्रत-उपवास करते रहते हैं, मुसलमान भाई तो पूरे एक मास तक दिन में जल भी नहीं पीते। ईसाई मत में लेंट रखने की प्रथा है। आम लोगों में यह भ्रमपूर्ण धारणा है कि यह सब व्रत-उपवास पाचन-यंत्र को विश्राम देने के लिये ही किये जाते हैं, जिससे शरीर स्वस्थ रह सके परन्तु इन व्रत-उपवासों के बावजूद उनका शरीर रोग से और इन्द्रियाँ थकावट से मुक्त नहीं हो पाती हैं। इसका मूल कारण यही है कि अनुभव में परिवर्तन लाने के लिये धारणा और मान्यता को तनिक भी महत्व नहीं दिया जाता और केवल क्रिया में परिवर्तन करके अनुभव में परिवर्तन होने की आशा की जाती है। धारणा और मान्यता में परिवर्तन किये बिना केवल क्रिया में परिवर्तन करने से अनुभव में भी परिवर्तन आयेगा, यह रामचरित मानस की मान्यता के प्रतिकूल है, जिसमें साफ तौर से कहा गया है :—

"नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं, रोग जाहिं हरिजान॥"

श्री रामचरित मानस में इस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है कि यह स्थूल (अधम) शरीर पाँच तत्वों से बना हुआ है। यथा :—

"छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित यह अधम सरीरा॥"

अतः शरीर निर्माण के लिये इन पंच तत्वों की नितान्त आवश्यकता है। शरीर का वृद्धिकाल लगभग २५ वर्ष की आयु तक माना जा सकता है क्योंकि उसके बाद हड्डी का बढ़ना प्रायः बन्द हो जाता है। इस कारण इस उम्र की प्राप्ति के बाद दैनिक जीवन में श्रम के कारण शरीर में हुई टूट-फूट की पूर्ति के लिये ही भोजन की आवश्यकता है। इससे स्वभावतः यह निष्कर्ष निकलता है कि शरीर के वृद्धिकाल में जितनी बार और जितनी मात्रा में भोजन की आवश्यकता है+ उतनी बार और उसी मात्रा में भोजन की आवश्यकता उस अवधि के बाद नहीं होगी और जहाँ बच्चों को प्रातःकाल ही दूध, मक्खन आदि दिया जा सकता है, युवावस्था या उसके बाद श्रम करने और फलस्वरूप टूट-फूट होने के पूर्व भोजन देने का कोई औचित्य नहीं दीखता।

संतुलित आहार के सम्बन्ध में विचार करते समय मुख्यतः चार बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। वस्तु-(क्या खायें), मात्रा-(कितना खायें), समय-(कब खायें), और उद्देश्य-(क्यों खायें)। इन चारों में भोजन करने के उद्देश्य का महत्व सबसे अधिक है और उसके बाद क्रमशः समय, मात्रा और वस्तु का। भोजन का उद्देश्य, शरीर के वृद्धिकाल में उसका निर्माण तथा उत्तरकाल में श्रम से हुई टूट-फूट की पूर्ति करना है न कि उससे शक्ति प्राप्त करना। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि मनुष्य जो भोजन करता है वह तीन भागों में बँट जाता है। स्थूल भाग से मल, मध्यम भाग से माँस और सूक्ष्म भाग से मन बनता है। अतः वैदिक विचारधारा के अनुसार अन्न या भोजन का ऊर्जा (जीवनी शक्ति) से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार भोजन का उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना नहीं वरन् शरीर का निर्माण करना मात्र होना चाहिए।

यदि यह सिद्धान्त निश्चित हो जाय कि भोजन शक्ति दाता नहीं वल्कि शरीर का निर्माणकारी तत्व है, तब २५ वर्ष की आयु (वृद्धिकाल समाप्त होने) के वाद निर्माण-कार्य की आवश्यकता श्रम द्वारा टूट-फूट होने के वाद ही पड़ेगी। अत इस अवस्था को प्राप्त करने के वाद श्रम के वाद अर्थात् दिन के अन्त म ही प्रधान भोजन करना चाहिए।

इसी प्रकार भोजन की मात्रा निश्चित करते समय इस वात का ध्यान रखना होगा कि टूट-फूट के द्वारा जितनी पुनर्निर्माण की आवश्यकता है उतना ही भोजन किया जाय। कोई भी इस वात से सहमत नहीं हो सकता कि मकान के निर्माण के समय जितनी सामग्री की आवश्यकता होती है उसके वाद टूट-फूट होने पर मरम्मत के लिये भी उतनी ही सामग्री की आवश्यकता होगी। इन दोनो कालों के भोजन के अन्तर का अनुपात यदि मकान वनाने और केवल मरम्मत के लिये आवश्यक सामान के अनुपात के समकक्ष कहा जाय तो किसी को आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

अव रही वस्तु की वात। गीता मे 'पचाम्यन्नम चतुर्विधिम्' के अनुसार तथा रामचरित मानस मे 'करहिं अहार साक फल कंदा' मे (साधनकाल के सदर्भ मे यहाँ अन्न को छोड़ दिया गया है) चार प्रकार के भोजन की चर्चा है। सृष्टिक्रम मे आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति वेदों मे वतायी गयी है। इनमे आकाश को छोड़कर शेष चारों भोजन के तत्व हैं। जैसा कि भारतीय वाङ्‌मय मे हवा खाओ, धूप खाओ आदि कहते हैं, परन्तु आकाश खाओ नहीं कहते, क्योंकि आकाश उपवास का तत्व है। इस प्रकार भोजन चतुर्विध है। भोजन के इन चार प्रकारों मे भी वायु से पत्तियों का, अग्नि फलों का, जल से तरकारियों का और पृथ्वी से अनाजों का

घनिष्ट सम्बन्ध है तथा अनाजों से तरकारियाँ, तरकारियों से फल, और फलों से पत्तियाँ अधिकाधिक सूक्ष्म एवं उत्तम खाद्य-पदार्थ हैं।

अतः जो व्यक्ति भोजन के सम्बन्ध में उसका उद्देश्य, समय, मात्रा और वस्तु, इन चार बातों का इसी क्रम से महत्त्व देकर भोजन करेगा, वह भोजन को भली प्रकार पचाकर, उसके रस का अभिशोषण कर तथा अवशिष्ट मल का पूर्णतया विसर्जन कर शरीर को सुन्दर और स्वस्थ रख सकेगा। इसे ही संतुलित आहार कहा जाता है, इसे ही भोजन करना कहा जा सकता है; नहीं तो तैतरीय उपनिषद् के शब्दों में यही कहना पड़ेगा कि भोजन ने ही हमें खा लिया। यथा.—"अद्यते अत्ति च भूतानि इति अन्नम्"। अर्थात् अन्न (भोजन) वह है जो लोगों के द्वारा खाया जाता है और जो लोगों को खा लेता है। जो लोग शक्ति का सम्बन्ध भोजन से मानकर श्रम के पूर्व, आवश्यकता से अधिक मात्रा में और अयुक्त प्रकार का भोजन करते हैं, उन्हें यह भोजन खा लेता है यानी उन्हें रोगी बना देता है।

इस शरीर में जीवनी शक्ति तीन रूपों में काम करती है। श्रम (रचनात्मक कार्य) करना, पोषण (पाचन एवं अभिशोषण) करना तथा संहार (सफाई) करना। यह ब्रह्म की ही शक्तियाँ हैं जिन्हें तीन प्रकार का कार्य करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा प्रदान की गयी है। हमारे दैनिक जीवन में प्रति-दिन ये तीनों देव बारी-बारी से कार्यशील होते हैं और सदा स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है कि हम इनके कार्यों में अनावश्यक व्यतिक्रम अथवा परस्पर विरोध न उत्पन्न होने दें। प्रातः-काल शिव की संहार की लीला (सफाई का कार्य), उसके बाद ब्रह्मा का सृजनात्मक (दैनिक दिनचर्या का) कार्य और अन्त में विष्णु की पोषण सम्बन्धी क्रिया होती है। इसलिये प्रातःकाल

विपरीत आन्तरिक शक्ति का जागरण होता है जो थकावट और रोग का नाश कर देती है।

नोटः— उपवास काल में भोजन के अभाव में कमजोरी की जो प्रतीति होती है, उसके कारण तथा निवारण की विधि का वर्णन प्रस्तुत पुस्तिका के प्रथम खंड में किया गया है।

-४, ६ घंटे कुछ न खाकर उपवास करना चाहिए इससे शरीर को आकाश तत्व की प्राप्ति के साथ-साथ शिव शक्ति की क्रिया बिना बाधा के हो सकेगी। उसके बाद दोपहर में वायु और अग्नि तत्व की प्राप्ति हेतु कुछ कच्ची खायी जाने वाली पत्तियाँ और मौसम के फल खाना चाहिए। इस हल्के भोजन से दिन का कार्य करने में बाधा नहीं पड़ेगी और ब्रह्मा की शक्ति का कार्य भी भली प्रकार हो सकेगा। दिन के अन्त में श्रम के बाद शेष दो जल और पृथ्वी तत्व की प्राप्ति हेतु तरकारियाँ और अन्नमय भोजन करना चाहिए और इस अपेक्षाकृत स्थूल एवं प्रधान भोजन के उपरांत विश्राम करना चाहिए जिससे विष्णु शक्ति का पोषण और अभिशोषण का कार्य समुचित रीति से सम्पन्न हो सके।

श्रीरामचरित मानस में संतुलित आहार की यही विचार-सरणि है जिसके आधार पर वह रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य प्रदान करने का दावा करता है।

संतुलित आहार के अलावा आंतरिक शक्ति के जागरण के लिये मानस में युक्तियुक्त उपवास की भी चर्चा है। इसके लिये चतुर्विध भोजन में क्रमशः पृथ्वी तत्व (अनाजों) को छोड़कर जलतत्व (तरकारियों) पर, जलतत्व को छोड़कर अग्नि तत्व (फलों) पर, अग्नि तत्व को छोड़कर वायु तत्व (पत्तियों) पर निर्वाह करने का अभ्यास करते हुए केवल जल और वायु पर ही रहा जा सकता है। माता पार्वती ने इसी प्रकार का क्रमिक त्याग किया था और अन्त में "कछु दिन भोजन बारि बतासा" की स्थिति से भी आगे बढ़ गयीं थीं।

चूँकि मानस में भोजन का सम्बन्ध जीवनी शक्ति से नहीं माना गया है इसलिए उपवास काल में (जल और वायु पर निर्वाह करते समय) कमजोरी आने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि इसके

विपरीत आन्तरिक शक्ति का जागरण होता है जो थकावट और रोग का नाश कर देती है।

नोट:—उपवास काल में भोजन के अभाव में कमजोरी की जो प्रतीति होती है, उसके कारण तथा निवारण की विधि का वर्णन प्रस्तुत पुस्तिका के प्रथम खंड में किया गया है।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष :

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

कुवेर प्रसाद गुप्त

मन्त्री

डा० चन्द्र दीप सिंह

एम. बी., बी. एस.

प्रधान कार्यालय :

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनन्द, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस में वर्णित पौराणिक कथानकों के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तों की साधन-प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढ़िये

पुस्तिका का नाम	लेखक			मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'			०.२५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	„	„	„	०.२५
३. मानस मे श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	„	„	„	०.२५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	„	„	„	०.२५
५. अखंड स्वास्थ्य का आधार— संतुलित आहार	„	„	„	०.२५
६. मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनो का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त			०.२५
७. खाद्य-समस्याः एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	„	„	„	०.२५
८. पूज्य योगी जी के साथ दो घंटे	श्री रवीन्द्र सनातन, एम. ए.			०.२५
९. मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाकल्य बी. एस-सी.			०.२५
१०. दमा से मुक्ति	संकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त			०.२५
११. असाध्य रोगों से छुटकारा	„	„	„	०.२५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	„	„	„	०.२५
१३. तीन साधको से अनुभव	„	„	„	०.३५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	„	„	„	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मंडल, डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-६

मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनों का आधार

लेखक :-
श्री कुवेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३०००

मूल्य २५ पैसे

मानव की मौलिक मांगें : १. शरीर मे रोग की सम्भावना रहित अखड स्वास्थ्य ।
२. इन्द्रियो मे थकावट विहीन अखड शक्ति ।
३. मन मे चिन्ता रहित अखड आनन्द ।
४. बुद्धि मे भय रहित अखड ज्ञान ।
५. अहं मे द्वैत रहित अखड प्रेम ।

पंचस्तरीय विकार : १ शरीर मे रोग
२ इन्द्रियो में कमजोरी
३. मन मे शोक
४ बुद्धि मे भय
५. अहं मे वियोग

पंचविकारो के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नहीं हैं उनमे ममत्व

विकारो का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला—पुष्प—६

मानस के आत्यंतिक दुःख निवारण के आश्वासनों का आधार

—◦ • ◦—

श्री कुवेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

"श्री रामचरित मानस मानव की व्यक्तिगत और सामूहिक समस
समस्याओ पर जो प्रकाश प्रस्तुत करता है वह युग-युगान्तर तक पथभ्रष्ट मान
का पथ-प्रदर्शन करने म पूर्ण रूप स समर्थ है, ऐसा मेरा विश्वास है।"

—हृदय नारायण 'योगीजी

"मेरा विश्वास है कि मानव को त्रिताप से मुक्ति दिलाने का 'मानस' क
दावा सच्चा है और उसम ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, जिन्ह अपना कर मान
रोग, दुख और भय से मुक्त हो सकता है।"

—हृदय नारायन 'योगीजी

प्राक्कथन

मेरे पूज्य गुरुदेव ने सन् १९२९ मे ही एक दिन मुझसे कहा था, "तुम्हें रामचरित मानस के उस जीवनोपयोगी पक्ष का जनता मे प्रचार एव प्रसार करना होगा, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से समस्त दु खों के आत्यन्तिक विनाश का आश्वासन प्रदान करता है।" जब मैंने निवेदन किया कि इस विशाल कार्य के लिये तो मैं सर्वथा अयोग्य हूँ, तो उत्तर मिला 'यह मेरा कार्य है और इसे मैं तुमसे करवा ही लूगा।'

उन्होने राम चरित मानस की कथा को आध्यात्मिक भावना की पगडडियो के रूप मे ही जाना और अनुभव किया। राम चरित मानस मे निश्चित रूप से किसी श्रुति प्रतिपादित "साधन-पथ" का वर्णन है, जिसे यदि मानव अपना सके तो उसके व्यक्तिगत जीवन मे शक्ति, आनन्द और ज्ञान का सचार होकर उसके रोग, दुख और भय मिट जायगे। साथ ही उसका सामूहिक जीवन धन-धान्य से ऐसा सम्पन्न होगा कि शेष शारदा भी उसका वर्णन करने मे असमर्थ हो जाय।

मेरे भीतर किसी प्रकार की 'योग्यता अथवा क्षमता नहीं है, केवल प्रभु-कृपा एव सतो के आशीर्वाद का अवलम्ब ही इस साधन-पथ की [illegible] मेरा सहायक हो रहा है। सतो के आशीर्वाद एव मित्रो के क्रियात्मक [illegible] से मेरा कार्य-क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है और [illegible] साधको ने मानस प्रतिपादित साधन-पथ के अनुसार [illegible] किये हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका में श्री कुवर जी ने मानस में अवगाहन करने के उस
का निर्देश किया है, जिसका अनुसरण करने पर ही "होइ सुखी जो एहि
परई" की उक्ति चरितार्थ हो सकती है। इसमें वर्तमान धार्मिक मान्यताअ
कतिपय उन पहलुओं का भी विश्लेषण किया गया है, जो साधक की प्रग
मार्ग में बाधक बन कर उसे अपनी प्रगति को जाचने और आकने का
अवरुद्ध किये हुए हैं।

मुझे आशा है कि पाठकों को इस पुस्तिका से अपनी भाव प्रवणता
बौद्धिकता के आधार पर अपना साधन-पथ निश्चित कर उस पर अग्रसर
का सबल प्राप्त होगा।

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०

—हृदय ना

मानस के आत्यंतिक दुःख निवारण के आश्वासनों का आधार

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस एक अगाध रत्नाकर की भांति गहन और गम्भीर ग्रन्थ है, जिसमें अनेकानेक रत्न यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। किन्तु, कोई तिजोरी, ताला और पहरेदार की प्रत्यक्षत व्यवस्था न रहने पर भी इन रत्नों को सभी कोई नही पा सकता। इससे इन्कार नही किया जा सकता कि इस रत्नाकर की अनन्त रत्नराशि मे से पिछले लगभग ४०० वर्षों मे एक से एक कुशल गोताखोरों ने डुबकी लगा कर अनेकानेक रत्न निकाले हैं और इस प्रकार रत्नों को निकालने का प्रयास न तो अभी समाप्त होता दिखायी देता है और न गम्भीरतापूर्वक दृढ इच्छा-शक्ति के साथ डुबकी लगाने वाला कभी खाली हाथ ही लौटता है। परन्तु इसके साथ ही यह कहना भी शायद अधिक असगत न होगा कि श्री राम चरित मानस मे अभी ऐसे रत्न शेष हैं जो अभी तक निकाले गये रत्नों से रग, रूप, आकार, प्रकार और गुणों में भिन्न, कही अधिक स्पृहणीय और उपादेय हैं। मैं यह कहने की धृष्टता तो नही कर सकता कि अब तक निकाले गये रत्नों का मूल्य कुछ कम है, पर इतना अवश्य निवेदन करना चाहता हूँ कि इस 'मानस' मे से वे रत्न अभी तक नही निकाले जा सके है, जिनकी प्राप्ति के बाद उनके आधार पर हम मानस के उन दावो को सही प्रमाणित करने मे समर्थ हो सकेंगे, जिनका वर्णन मानस मे यत्र-तत्र मिलता है और जिन दावों को मानसकार ने बहुत ही बल-पूर्वक जोरदार भाषा मे प्रस्तुत किया है।

आइये ! उन अनेक दावों में से दो चार को ही सामने रख कर थोड़ा ार करें—

"सुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव-भय दावनी ॥
"राम कथा सुन्दर कर तारी । ससय विहग उडावन हारी ॥
"मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जो एहि सर परई ॥"

अर्थात् यह पवित्र कथा तीन प्रकार के दैहिक, दैविक और भौतिक तापों र भव-सागर के भय का नष्ट करने वाली है । राम की कथा सशय रूपी पक्षी उड़ाने के लिए ताली बजाने के समान है। विषय रूपी दावाग्नि पीड़ित जो भी मन रूपी हाथी इस मानस रूपी तालाब मे आता वह सुखी हो जाता है। यह शरीर को सुखी करने वाली, को शान्त करने वाली तथा बुद्धि को भय-रहित करने वाली है। आज नस का पठन-पाठन झोपडी से लेकर राज-महल तक दिनो दिन प्रसारित ा जा रहा है, दैनिक पाठ, मास-पारायण, नवान्ह-पाठ एव अखड-पाठ रोत्तर बढ़ते जा रहे है, फिर भी मानस के उक्त दावे, उसके पढ़ने वालों जीवन मे, प्रतिफलित होते नही दिखायी दे रहे है। यह कहने की धृष्टता र से कम मैं तो नही कर सकता कि मानस मे झूठे दावे किये गये हैं, न्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि जिन आधारो पर इन दावों गोस्वामी जी ने प्रस्तुत किया है, शायद उन्हें हम अभी तक नही समझ ये है।

कुछ मानस-प्रेमी यह तो कह सकते है कि इससे उनके मन को बडी शान्ति ली है परन्तु प्रारब्ध के भोगो के रूप में शारीरिक कष्टो को तो भोगना ही गा। कुछ महानुभाव अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह भी कह कते हैं कि उनका अमुक दैहिक कष्ट, अमुक बाधा अथवा अमुक भौतिक र मानस पढ़ने से दूर हो गया परन्तु मेरा अनुमान है कि मानस का शायद कोई पाठक इस प्रकार का दावा करे कि उसके तीनो ताप एक साथ मानस

के पठन-पाठन से नष्ट हो गये । हा, ऐसे भी भाग्यशाली सत्पुरुष होंगे जो सच्चाई और ईमानदारी से यह दावा प्रस्तुत करे कि मानस के पाठ से ही उनके तीनों ताप नष्ट हो गये है परन्तु उन सब आदरणीयो के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी मैं यह कहने की अनुज्ञा चाहूगा कि जब तक वे अपनी ही भाति अन्य लोगो के भी तीनो ताप नष्ट करने के व्यावहारिक सिद्धान्त एव उनकी प्रयोगात्मक प्रक्रिया नही बताते तब तक यह शका बनी ही रहेगी कि उनके त्रैताप मानस-पाठ के फलस्वरूप नष्ट हुए है अथवा उसमे कुछ अन्य कारण भी प्रभावकर हुए हैं ।

अब शायद आप समझ गये होंगे कि मेरा इशारा किस ओर है । मैं पुनः लेख के प्रारम्भिक स्थल की ओर सकेत करते हुए कहना चाहता हूँ कि मानस रूपी रत्नाकर से अभी भी वे अमूल्य रत्न नही निकाले जा सके हैं जिनके आधार पर ही मनुष्य के जीवन म मानस के दावे फलीभूत हो सकेंगे ।

. ऊपर मानस से अब तक होनेवाली कही शारीरिक, कही मानसिक और कही आत्मिक ताप की शान्ति की चर्चा के साथ प्रारब्ध भोग का जिक्र मैंने किया है । इस सम्बन्ध मे भी कुछ निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीक होता है । जिस स्थल पर शारीरिक, मानसिक एव आत्मिक तापो का समग्ररूप से विनाश न होकर छिटपुट कही किसी ताप का, कही किसी ताप का, नाश होता है, वहा कोई न कोई ताप वर्तमान रहता ही है, यह स्पष्ट है और तब "त्रिविध ताप भव-भय दावनी" , "दुख लवलेश न सपनेहु ताके" इन अर्द्धालियो का प्रतिफलित होना नही माना जा सकता । जहा पर प्रारब्ध के भोग की ढाल पर मानस की उक्त अर्द्धालियो के दावो का निराकरण करने की चेष्टा की जाती है, वहीं ' मेटत कठिन कुअक भाल के", "जो परलोक इहा सुख चहहू", "लहहि चारि फल अछत तनु" और "जन्म कोटि अघ नासहि तबही", इन अर्द्धालियो के प्रति उदासीनता कैसे दिखाई जा सकती है ? "लहहि चारि फल अछत तनु" मे स्पष्ट है कि पिछले एव इस जन्म के कर्मफल-भोगो

ो अवमानना करके, उसे विफल करके, इस शरीर के रहते हुए ही अथ, धम, काम और मोक्ष चारो फल प्राप्त किये जा सकते हैं। "जो परलोक इहा सुख चहहू" मे जोरदार शब्दो मे यह कहा गया है कि अगर तुम परलोक में और स लोक में भी सुख चाहते हो तो करो। अर्थात् अगर तुम आगे बताई ई बातें करोगे तो पिछल बुरे कर्मों के फल-भोग तुम्हारे सुखी होने के मार्ग ें अनिवार्य रूप से आकर तुम्हें दुखी नही कर सकते। "मेटत कठिन कुअक भाल ऽ" मे उस बात को और स्पष्ट कर दिया गया है कि बुरे कर्मो के कारण उनके भोगने के लिये जो विधान अकित कर दिया गया है तथा जिनका भागना कुछ क्या अधिकाश लोग अनिवार्य मानते है, उस विधान को भी यह राम-कथा मेट सकती है तथा "जन्म कोटि अघ नासहिं तवही" मे तो डके की चोट कहा गया है कि करोडो जन्मो के भी पाप उसी क्षण मिट जाते है। फिर प्रारब्ध-भोग राम-कथा के दावो के फलित होने पर भी शेष रह जायेंगे, यह किस प्रकार कहा जा सकता है ?

अब मैं थोडी सी चर्चा उस बात की भी करना उचित समझता हू जिसके कारण हम अब तक एसी भूल भुलैया में पडे हुए भटक रहे है, जो हमें मानस . दावो को प्रतिफलित करने वाले सही मार्ग स विरत किये हुए है। मानस में एक दो स्थलो पर उस सही मार्ग का निर्देश किया गया है। प्रारम्भ में वदना . श्लोकों में "नानापुराणनिगमाग सम्मत" कह कर गोस्वामी जी ने सकेत किया है कि मानस पुराण (कथाभाग), निगम (वैदिक सिद्धान्तो) और आगम (उन सिद्धान्तो के प्रयोग की प्रविधि यानी टेक्नीक) स सम्मत अर्थात् समन्वित है। इसी बात को एक अन्य स्थल पर और भी अधिक स्पष्ट कर दिया गया है —

"जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहि सुनिहहि समुझि सचेता ॥"

यानी जो इस मानस को प्रेम पूर्वक पढ़ेंगे या सुनेंगे, बुद्धि लगा कर इसके सिद्धान्तो को समझेंगे और उन्हें चित्त मे धारण करेंगे अर्थात् दृढतापूर्वक उनका प्रयोग करेंगे, वे :—

"होइहहिं राम-चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमगल भागी।।" अर्थात् वे १. सुमगल के भागी होगे या उन्हें सासारिक बाह्य सुख प्राप्त होगे, २ वे कलियुग के मल (मन) के विकार से रहित होकर आन्तरिक शान्ति का अनुभव करेंगे और ३ उन्हें राम के चरणो का अनुराग प्राप्त होगा, जो उक्त बाह्य और अन्त सुख से भी परे का तत्व है और जिसे तुलसी दास जी ने "स्वात सुख" की सज्ञा दी है। वास्तव मे मानव की मौलिकमाग एव रामचरित मानस के प्रणयन का उद्देश्य यही "स्वात सुख" है। यथा "स्वात सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'। और मानस के अन्त मे गोस्वामी जी ने "पायो परम विश्राम" लिखकर उसी "स्वात सुख' की प्राप्ति का सकेत किया है। इसी "स्वात सुख" को "राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहु ताके।।" कह कर और स्पष्ट किया गया है। जिसके हृदय मे राम भक्ति का निवास होगा उसे जाग्रत अवस्था के कष्टो और दुखो (त्रितापो) की ता चर्चा ही न कीजिये, स्वप्न मे भी किसी प्रकार का दुख नहीं होगा। उसे कभी दुख होगा इसकी कल्पना भी नही की जा सकती।

अब मैं पुन उसी स्थल पर आता हू जहा मैंने कहा है कि हम भूल भुलैया मे पडे हुए सही मार्ग से भटक गये हैं।

वास्तव मे मानस के दावो का फलीभूत करने के लिये उक्त तीन शर्तों (प्रेमपूर्वक कहना, सुनना, बुद्धि लगाकर कथानको के आधारभूत सिद्धान्तो को समझना और उन्हें सही प्रविधि (टेक्नीक) के अनुसार प्रयोग करना) का पूरा करना आवश्यक है। अब शायद स्पष्ट हो गया होगा कि इन शर्तों म से केवल एक (प्रेमपूर्वक पढने सुनने) की शर्त को पूरा करने के कारण ही वे दावे प्रतिफलित वही हो रहे हैं, जिनके लिये मानसकार ने स्पष्टत. तीन शर्तें बतायी हैं। थोडा सा भी विचार करने पर हम देखेंगे कि इन तीन शर्तों मे से अब तक केवल उक्त प्रथम शर्त पर ही हमारा ध्यान केन्द्रित रहा है और आज भी ऐसे कथावाचको का अभाव नही है, जो मानस की इस

ट की मनोहारी व्याख्या करने मे समर्थ है, जो हमे आत्मविभोर कर त सुख देती है। मानस मे भी इस स्थिति को "श्रवण सुखद अरु मन रामा" कह कर स्वीकार किया गया है। अनिच्छापूर्वक किन्तु विवश ए हम यह कहने के लिये पहले से ही क्षमा माग लेते है कि प्रेमपूर्वक मानस कथा कहने सुनने वाला रस की जिस गहराई तक उतर जाता है, विपयी त भी सिनेमा देखते समय उससे कम गहराई तक नही उतरता। उतने तक वह भी कथा-श्रवण कर सुधि बुधि खोने वाले प्रेमी व्यक्ति से पीछे रहता। प्रसगवश यहा यह भी बताना आवश्यक है कि कथा का रस वह सा" है जो हनुमान जैसे साधक को निगलने के लिये अपना मुह अधिकाधिक ी जाती है और अगर साधक अपने लक्ष्य की ओर से सावधान न रहा तो उसे निगल जायगी अर्थात् साधक की प्रगति नही हो सकेगी, वह कथा भाग मे न रस ही लेता रह जायगा। आज की स्थिति शायद इससे भिन्न नही है।

अब दूसरी शर्त के बारे में विचार करना चाहिए। इस दूसरी शर्त को ध्यान आसानी से आकर्पित न होना स्वाभाविक है। यह कुछ गूढ भी है कुछ अप्रकट भी। गोस्वामी जी जैसे विद्वान एव बहुश्रुत व्यक्ति को भी कार करना पडा है: "तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी . .।" मानस के सिद्धान्त बार बार सुनने, मनन करने पर भी पूरी ६ हृदयगम नहीं हो पाते। प्रश्न उठ सकता है कि जितने भो मानस पाठक या श्रोता हैं, क्या वे सब मानस पढते सुनते समय बुद्धि का उपयोग करते ? मेरा नम्र निवेदन है कि करते है। परन्तु जिस ओर बुद्धि लगानी हिए उस ओर न लगा कर चौपाइयो के अनेकार्थ प्रस्तुत करने मे, उनमे त्ति-वैचित्र्य ढूढने मे एव इसी प्रकार की अनेक मनोहारी बौद्धिक कुशलताओं अन्वेषण मे करते हैं। इस बात को एक छोटे से उदाहरण से समझिये।

भगवत्-प्रेम के कारण अक्सर हम कथा-कीर्तनो मे भाग लेते ही रहते मान लीजिये किसी स्थल पर हमे मीराबाई का "मेरे तो गिरिधर गोपाल,

दूसरो न कोई" भजन सुनने को मिला। संगीत की लहरी, गायक के स्वरों के उतार चढ़ाव और भजन के भावो से हम आत्मविभोर हो उठते हैं, एक अलौकिक आनन्द का भी अनुभव करते हैं। परन्तु क्या हम इसमे बुद्धि का उपयोग करते हैं ? शायद नही। क्योंकि अगर हम इस भजन मे बुद्धि का उपयोग करें तो एक बडी विचित्र और असुखद स्थिति का सामना करना पडेगा और यदि दुर्भाग्यवश किसी ने बुद्धि का उपयोग कर प्रश्न प्रस्तुत कर दिया तब तो उसे रग मे भग डालने वाला कहा जायगा और ताज्जुब नही कि उसकी भर्त्सना भी की जाय। यह भजन मन को चाहे जितना "सुखद और अभिरामा" लगे परन्तु बुद्धि को तो बेहद खटकेगा। वह कहेगी, मेरे तो माता, पिता, भाई, बहन, स्त्री पुत्र, पुत्री, नाते रिश्तेदार, मित्र, शुभैषी न जाने कितने अपने हैं। उनके रहते हमारा अन्तर भला यह कैसे स्वीकार करेगा कि "केवल *गिरिधर गोपाल" ही अपने है दूसरा कोई भी अपना नही है।* *अगर आप* इस अप्रिय शुष्क और कभी कभी कष्टकर मार्ग को अपनाने से भागेंगे, जैसा कि अधिकतर होने की आशका है, तो आपके लिये मानस का सिद्धान्त गहन और गुप्त ही रहेगा और जब तक आप इस ड्योढ़ी को पार नही करेंगे तब तक तीसरी ड्योढ़ी पर पहुँचने और उसे पार करने का प्रश्न ही कहा उठेगा ? तथा बिना इन शर्तों को पूरा किये, बिना इन तीनो फाटको को पार किये, बिना आगे बढे, मानस के दावे हम सबके जीवन में चरितार्थ न हो तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नही होनी चाहिए।

लेख के विषय को आगे बढाने के लिये हम यह मान लेते हैं कि हमने बुद्धि का, समुचित प्रयोग करके मानस के गुप्त सिद्धान्तो को समझ लिया और दूसरी ड्योढी पार कर तीसरी पर खडे है। यह वह स्थान है जहा हमे मानस के सिद्धान्तो को अपने जीवन मे प्रयोग कर परिणाम प्राप्त करना है, मानस के दावों को अपने इसी जीवन मे अनुभव करना है। स्मरण रखना चाहिए कि मानस के केवल कथाभाग मे ही उलझे रहने से जीवन मे उसके दावे कभी भी प्रतिफलित नही हो सकेंगे। सिद्धान्त भाग समझने के बाद उन दावों के

अनुसार जीवन मे परिवर्तन होने की सम्भावना पैदा हो जायगी और जब इस तीसरी शर्त को पूरा किया जायगा उन सिद्धान्तो को जीवन मे निश्चित प्रविधि (टेक्नीक) द्वारा प्रयोग मे लाया जायगा, तभी जीवन म वाछित परिवर्तन होगा। परन्तु इस तीसरी शर्त के पूरा होने मे जो कठिनाइया एव बाधाए उपस्थित होगी, उन्हें भी समझना आवश्यक है।

सिद्धान्त समझ लेने के बाद जब हम उसे अपने जीवन मे प्रयोग करने को तत्पर होते हैं, तब प्रयोग आरम्भ करने से लेकर सिद्धि होने तक के मधिकाल मे साधक के जीवन म कुछ ऐसी परिस्थितिया उपस्थित हो सकती है, जिनका बौद्धिक दृष्टि से साधक को ओर छोर नही मिलता, यद्यपि मानस उनके कार्य-कारण पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। ये अप्रिय परिस्थितिया साधक के पिछले एव इस जन्म के दवे अवाछनीय सस्कारो को, चेतना के स्तर पर लाकर, उनका सदा सदा के लिये परिहार कर देना चाहती है। ये इतनी विचित्र, प्रत्यक्षत इतनी आकुल व्याकुल और हतोत्साहित करने वाली भी हो सकती हैं कि उनसे घबडा कर साधक इस पथ को छोड देने के लिये भी उद्यत हो सकता है और बहुतो ने छोड भी दिया है। शिव जी के विवाह के समय बारात का जो वर्णन मिलता है —

"कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू। कोउ कर बिनु कोउ बहु पद बाहू॥" मे इन्ही स्थितियो का सकेत समझना चाहिए और उसके साथ ही गोस्वामी जी के "बालक सब लै जीव पराने" तथा "अबलन्ह उर भय भयेउ विसेखा" पर भी ध्यान दीजिये। बालक मे बौद्धिक अपरिपक्वता और प्रयाग के लिये अपेक्षित दृढता तथा अबलाओ मे प्रयोग के लिये अपेक्षित दृढता होने पर भी बौद्धिकता का अभाव बताने का प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार का एक और स्थल है जहा राम-दर्शन म असमर्थ लोगो का विवरण दिया गया है। "बालक अबला वृद्ध जन, कर मीजहिं पछिताहिं" म इसी बात को प्रकारान्तर से दुहराया गया है। इन परिस्थितियो से बचने एव उनके उपस्थित होने पर

उनके सम्यक् निराकरण के लिये साधक को सिद्धान्त भाग का विस्तार और बारीकी से ज्ञान होना तथा प्रयोग-काल मे अपेक्षित दृढता के साथ उपयुक्त समय पर सही मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। इसी कारण रामचरित मानस के इन रहस्यो के उद्‌घाटनकर्ता—जिनकी विचारधारा इस लेख म प्रस्तुत की गयी है—श्री हृदय नारायण योगी जी' का कहना है कि मानस के सिद्धान्तो को समझने के लिये योग्य गुरु से सवाद करना तथा प्रयोग करते समय उनसे सम्पर्क रखना अति आवश्यक है।

मानस के प्रेमपूर्वक पढने-सुनने, बुद्धिपूर्वक उसके सिद्धान्तो को समझने और चित्त लगाकर विधिपूर्वक उनको जीवन मे उतारने की तीन शर्तों का, जिनके आधार पर ही मानस के दावे साकार हो सकेंगे, विवेचन करने के बाद, अब मै मानस के जीवनोपयोगी, व्यावहारिक एव प्रयोगात्मक पक्ष के बारे मे कुछ निवेदन करना चाहूगा।

साधारणतया हम अपने अवाछनीय एव कष्टकर अनुभवो के लिये दूसरो एव बाह्य परिस्थियो को ही जिम्मेदार ठहराते है। जो कोई कुछ अधिक समझदारी वर्तते हैं, वे भी दुर्भाग्यवश अपने अनुभवो का कारण केवल अपनी विगत क्रियायें ही समझते हैं और अनचाहे, दुखद अनुभवो को ग्राह्य एव सुखद अनुभवो मे परिवर्तित करने के लिये अपनी क्रिया मे परिवर्तन करने की बात सोचते हैं और ऐसा करते भी है। परन्तु केवल क्रिया मे परिवर्तन से, चाह वह क्रिया कितनी ही उदात्त, औचित्यपूर्ण एव कल्याणकर क्यो न दीखे, जीवन के अनुभव बदल जायगे, कम से कम मानस की ऐसी मान्यता नही है। इस बारे मे मानसकार का कथन सुनिये —

> नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।
> भेषज पुनि कोटिन्ह, नहिं रोग जाहिं ॥

इस दोहे म जिन कार्यों का जिक्र किया गया है, क्या उनसे भी अधिक उदात्त क्रियाआ की कल्पना की जा सकती है ? फिर भी गोस्वामी जी लिखते

हैं कि इस प्रकार की करोडो औषधियो से भी (भव) रोग नही जा सकता। और इसका कारण केवल इतना ही है कि विचारो, भावनाओ एव क्रियाओ तीनो का समन्वित परिणाम ही अनुभव कहलाता है। विचार और भावना पहले ही की स्थिति मे रखकर क्रिया मे परिवर्तन कर देने मात्र से अनुभव मे परिवर्तन आयेगा यह शायद मानस के सिद्धान्तानुसार सम्भव नही है। मानस मे, जैसा कि उक्त दोहे मे स्पष्ट कर दिया गया है, क्रिया को बहुत ही कम महत्व दिया गया है। 'कबहुक दुख सबकर हित ताके', 'विफल होहि सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के' म क्रिया के मुकाबले भावना और विचार का महत्व स्पष्ट है। 'भवानीशकरौ वदे श्रद्धाविश्वास रूपिणौ' मे भावना-प्रधान विश्वास के प्रतीक शकर और विचार-प्रधान श्रद्धा (खोज) रूप भवानी के अभाव मे साफ लिखा गया है कि याभ्या विना न पाश्यन्ति सिद्धा: स्वान्तस्थमीश्वरम।

अगर ससार के जन साधारण यह मानते हैं कि भोजन से शक्ति मिलती है और यह जानते है कि भोजन के अभाव मे कमजोरी आती है तथा शक्ति प्राप्त करने के लिये अथवा शक्तिहीनता से बचने के लिये श्रम करने से पूर्व अधिक और पौष्टिक खाद्य पदार्थ खाने की विचारधारा के पोषक है, तो इस विचार एव भावना को दृढता से पकडे रह कर व्रत या उपवास द्वारा केवल क्रिया मे परिवर्तन कर वे अन्य लोगो से भिन्न प्रकार का अनुभव नही प्राप्त कर सकते। इसलिये अगर हम चाहते हैं कि ससारिक लोगो के बीमार और कमजोर रहने, अशान्त और दुखी रहने तथा भयभीत और अभिमानी रहने के अनुभवो से भिन्न अनुभव हमारे जीवन मे उतरे, तो निश्चित है कि सासारिक सामान्यजनो के विचारो एवं भावनाओ की छानबीन कर उनमे आवश्यक परिवर्तन करना आवश्यक होगा। तभी उन परिवर्तित विचारो एव भावनाओ की आधारशिला पर की गयी परिवर्तित क्रियाओ के फलस्वरूप जीवन मे उन सामान्यजनो से भिन्न अनुभव प्राप्त करने की आशा की जा सकती है। सासारिक सामान्यजनो एव साधकों के विचार एव भावनाए कितनी मात्रा तक भिन्न होगी, इसका दिग्दर्शन गीता के निम्न श्लोक मे कराया गया है:—

या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ।
यस्या जाग्रत्ति भूताना सा निशा पश्यतोमुने ॥

मानस के जीवनोपयोगी व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत करने के बाद अब हम उसके प्रयोगात्मक पक्ष के बारे मे थोड़ा सा कह कर इसे समाप्त करेंगे ।

ससार के मानव जीवधारियो के, विचार एव भावना-प्रधान दो दृष्टिकोणो को ध्यान मे रखते हुए, दो प्रधान वर्ग किये जा सकते हैं। भावना-प्रधान वे व्यक्ति है जिनकी प्रवृत्तियाँ हृदय-पक्ष को अधिक महत्व देती है। वे किसी की बातो पर सहज ही पूर्ण रूप से विश्वास कर लेते है। भगवान जैसी अदृष्ट सत्ता पर पूर्ण विश्वास का होना इस पथ के पथिको के लिये अनिवार्य शर्त है। ऐसे प्राणियो के लिये मानस मे विश्वास के मार्ग का निर्देश किया गया है जिसे भगवान शिव के कथानक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

दूसर वर्ग मे वे व्यक्ति आते है, जो बुद्धि-प्रधान होते है। बिना स्वय जाने वे किसी अदृष्ट सत्ता के अस्तित्व मे विश्वास करने मे अपने को असमर्थ पाते है। इस प्रकार अदृष्ट पर अविश्वास करने वालो के लिये, दृष्ट ससार का अबाधित (सही) ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। इन इन्द्रियो से जो साकार ससार दिखाई, सुनायी पडता है, विवेचनात्मक दृष्टि से उसकी छानबीन करते हुए उसके सही स्वरूप को जाने बिना, इस पथ के पथिक का काम नही चल सकता। उदाहरण के तौर पर एक बच्चे से पूछिये कि सूरज कितना बडा है? उसका उत्तर होगा, थाली के बराबर। अब अगर आप पता लगावें तो ज्ञात होगा कि वह बच्चा न तो झूठ बोलता है और न उसकी आख मे ही कोई दोष है। फिर भी उसकी आख की इन्द्रिय उसे सही जानकारी नही देती है। इसी प्रकार विचार-प्रधान व्यक्तियो के मन मे यह सशय उठना आवश्यक है कि वे इन इन्द्रियो से जो देखते, सुनते या अनुभव करते है वह शायद सही नही है। तभी वे खोज प्रारम्भ कर सकेंगे, जिसका परिणाम होगा अबाधित ज्ञान की प्राप्ति। इस मार्ग का विवेचन मानस मे माता पार्वती के प्रकरण मे किया गया है।

अन्त मे इतना और कह दू कि भावना-प्रधान विश्वास-पथ का पथिक अपनी साधना की सिद्धि के बाद जिस स्थान पर पहुचता है, विचार-प्रधान व्यक्ति भी दृष्ट ससार का अबाधित ज्ञान प्राप्त करने के बाद वही पहुचता है। न उनमे स्तर का अन्तर होता है और न गुण का —

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव सभव खेदा॥

बल्कि सही बात तो यह है कि मान कर चलने वाला जान जाता है और जानने के लिये चलने वाला जान कर उसे मान भी लेता है। भावना और विचार के पथ के इस एकीकरण को, शिव और पार्वती का एकीकरण भी कह सकते हैं, जो हमारे यहा अर्द्धनारीश्वर के रूप की कल्पना का आधार है।

"नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर। सावधान होइ सुनु विहगवर॥"

इन दोनो मे कुछ अन्तर भी है और वह अन्तर केवल अलग अलग मार्ग के कारण है। इन दोनो पथो की साधनाओ का विस्तार से विवेचन अलग से अपेक्षित होगा।

श्री कुवेर प्रसाद गुप्त, सहायक मत्री, मानस साधना मण्डल, डी—१२।४, राजेन्द्र नगर लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित तथा अवध प्रिंटिग वर्क्स, ९२, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ में मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

—०:*:०—

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष :
परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी, बी. एस.

प्रधान कार्यालय
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखण्ड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखण्ड आनन्द, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड प्रेम की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस में वर्णित पौराणिक कथानकों के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तों की साधन-प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढ़िये

पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'	०.२५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	,, ,, ,,	०.२५
३. मानस में श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	,, ,, ,,	०.२५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	,, ,, ,,	०.२५
५. अखंड स्वास्थ्य का आधार— संतुलित आहार	,, ,, ,,	०.२५
६. मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनों का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
७. खाद्य-समस्या : एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	,, ,, ,,	०.२५
८. पूज्य योगी जी के साथ दो घंटे	श्री रवीन्द्र सक्सेना, एम. ए.	०.२५
९. मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाक्ल्य बी. एस-सी.	०.२५
१०. दमा से मुक्ति	संकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
११. असाध्य रोगों से छुटकारा	,, ,, ,,	०.२५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	,, ,, ,,	०.२५
१३. तीन साधकों के अनुभव	,, ,, ,,	०.३५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	,, ,, ,,	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मंडल, डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-७

खाद्य समस्या

एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान

लेखक :-
श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३००० मूल्य २५ पैं

मानव की मौलिक माँग : १. शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखण्ड स्वास्थ्य ।
२. इन्द्रियों मे थकावट विहीन अखण्ड शक्ति ।
३. मन मे चिन्ता रहित अखण्ड आनन्द ।
४. बुद्धि मे भय रहित अखण्ड ज्ञान ।
५. अहं मे द्वैत रहित अखण्ड प्रेम ।

पंचस्तरीय विकार : १ शरीर मे रोग
२ इन्द्रियों मे कमजोरी
३ मन मे शोक
४ बुद्धि मे भय
५. अहं मे वियोग

पंचविकारो के कारण : १ औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२ भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नहीं हैं उनमे ममत्व

विकारो का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२ युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला—पुष्प—७

खाद्य-समस्या: एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान

—○ ○ ○—

श्री कुवेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

"देश के वर्तमान खाद्य-संकट को दूर करने के लिए हम अपनी सेवाएं देश को अर्पित करना चाहते हैं। अगर देशवासी दिन में अन्न न खाकर केवल मौसम में मिलने वाले स्थानीय सस्ते फल एवं तरकारियों से काम चलावें और रात को साधारण रूप से अनाज, दाल, सब्जी का भोजन करें तो न केवल उनका स्वास्थ्य सुधरेगा, उनकी कार्य-क्षमता बढ़ जायगी अपितु वे देश को खाद्यान्न में स्वावलम्बी बनाने के साथ-साथ काफी मात्रा में विदेशों को भी गल्ला निर्यात करने की स्थिति में ला देंगे।"

—हृदय नारायण 'योगीजी'

प्रकाशक.—

श्री कुबेर प्रसाद गुप्ता

सहायक मंत्री

मानस साधना मण्डल

डी—१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

नम्र-निवेदन

आज का युग विज्ञान का युग है। इसमे विज्ञान सम्मत सिद्धान्तो को ह
मान्यता प्राप्त होती है और यह उचित भी है। मानव अपनी ज्ञान की बा.
लगा कर प्रकृति के नियमो (रहस्यो) का उद्घाटन करने मे जुटा हुआ ;
जिससे उनका उपयोग मानव-कल्याण के लिये किया जा सके। प्रकृति के
अन्तराल मे अभी भी अनन्त नियम रहस्यमय स्थिति मे हैं —

"जेहि यह कथा सुनी नहि होई। जनि आचरजु करहि सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहि जे ग्यानी। नहि आचरजु करहि अस जानी॥
राम कथा कै मिति जग नाही। असि प्रतीति तिन्ह के मन माही॥"

इसलिये जब कोई नवीन विचारधारा (सिद्धान्त) सामने आये तो उसे सर्वथा नवीन एव असम्भव कह कर उससे उदासीन हो जाना या किन्ही निहित स्वार्थों के कारण उनका विरोध करना वैज्ञानिक नैतिकता एव समाज-हित के प्रतिकूल होगा। हा, उस विचारधारा को प्रयोग द्वारा कसौटी पर कस कर उसके खरा खोटा होने का निश्चय करने का स्वागत तो किया ही जाना चाहिए। परन्तु वैज्ञानिक प्रयोगो मे सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान एव उसकी प्रविधि (टेक्नीक) का बारीकी से पालन करना आवश्यक होता है।

प्रस्तुत पुस्तिका मे कुछ सिद्धान्त (मान्यताए) प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ साधको ने निश्चित प्रविधि के अनुसार इन सिद्धान्तो को अपने जीवन मे प्रयोग किया है। उनके प्रयोगो से प्राप्त अनुभव इन सिद्धान्तो की पुष्टि करते हैं। अगर वैज्ञानिक वर्ग इन सीमित और छोटे पैमाने के प्रयोगो से सतुष्ट न हो सके तो उनके आह्वान पर 'मानस साधना मडल' के साधक उनकी

देख रेख में प्रयोग कर उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर सकते है और तब वैज्ञानिको का भी यह कर्तव्य हो जायगा कि वे इस प्रयोग के परिणामो को अपने विचारो के साथ विश्व के सामने प्रस्तुत करें जिससे उनका उपयोग अखिल मानव के कल्याण के लिये किया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तिका के दोनो भागो मे जिन बातो पर विशेष बल दिया गया है, वे अनेक व्यक्तियो के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित हैं। जन साधारण के समक्ष इन्हें प्रस्तुत करने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि खाद्यान्न के सम्बन्ध मे लोगो को सही दृष्टिकोण प्राप्त हो सके जिससे वे स्वर्गीय प्रधान मत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री की खाद्यान्न कम खाकर देश को खाद्यान्न मे स्वावलम्बी बनाने का स्वप्न कही अधिक बड़े पैमाने पर सफल हो सके।

७ मार्च १९६६।

—कुबेर प्रसाद गुप्त,

।

खाद्य-समस्याः
एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान

—: o :—

भारतवर्ष के देशवासियो को आवश्यक खाद्य-सामग्री उपलब्ध करने जैसी महत्वपूर्ण समस्या, जिसे किसी भी हालत मे दो चार दिन के लिये भी टाला नही जा सकता, तथा जो आज की राजनैतिक परिस्थिति मे आजादी और गुलामी के प्रश्न के साथ साथ जीवन-मरण के प्रश्न के समान महत्वपूर्ण हो गयी है, को हल करने पर देश का हर प्रेमी अपने अपने तरीके से जुट पड़ा है और शासन भी इस समस्या के हल के लिये "जय जवान जय किसान" का नारा देकर इसकी गम्भीरता को स्पष्ट कर चुका है। 'मानस साधना मडल' ने अपने उन प्रयोगो को, जिन्हें उसके सदस्यो ने गत कई वर्षो से अपने ऊपर प्रयोग कर सही पाया है, देशवासियो के लाभार्थ एव खाद्य-समस्या के समाधान हेतु सेवा भाव स जन-साधारण के समक्ष प्रस्तुत करने का निश्चय किया है। उसे आशा है कि इनके अपनाने से अन्य लाभो के अतिरिक्त खाद्य-समस्या न केवल हल हो सकेगी वरन् देश काफी मात्रा म खाद्यान्न का निर्यात करने मे भी समर्थ हो सकेगा।

आज के वैज्ञानिक युग मे सभी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने विचारो एव कल्पनाओ को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करे और तभी वे आज के भौतिकवादी एव बुद्धि-प्रधान मानव को स्वीकार्य हो सकेंगे। इसी कारण हम अपनी विचारधारा को यथाशक्य वैज्ञानिक रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

विज्ञान अपनी मान्यताओ को ससार के समक्ष निश्चयात्मक रूप से प्रस्तुत करने के पूर्व तीन प्रक्रियाओ को अपनाता है । प्रथम वह किसी घटना का क्रम निरीक्षण करता है फिर उसके सहारे उसके अन्तर्हित निश्चित सिद्धान्त की कल्पना कर उसका अनेक विधि परीक्षण एव विश्लेषण करता है और जब उसे उस सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब वह पुन उस सिद्धान्त के सहारे प्रथम प्रकार की घटना का पुनरावर्तन करता है । इस तीसरी प्रक्रिया मे जब वह सफल हो जाता है तब वह अपने उस सिद्धान्त एव प्रविधि (टेक्नीक) को ससार के सम्मुख प्रस्तुत करता है । सक्षेप मे वह घटना का आधार लेकर सिद्धान्त की खोज करता है और सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर उसके सहारे पुन घटना का प्रत्यावर्तन करता है ।

मानस साधना मडल के सस्थापक-अध्यक्ष परमपूज्य श्री हृदय नारायण 'योगी जी' ने गोस्वामी तुलसीदास कृत श्री राम चरित मानस के कथानको मे वर्णित घटनाओ एव मानस म किये गये दावो को आधार बना कर वैज्ञानिक प्रक्रियानुसार उसके अन्तर्हित सिद्धान्तो का अन्वेषण किया है। उन सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त होने पर उन्होने उनका अपने एव अपने मित्रो पर पुन प्रयोग कर उनकी सत्यता की जाच भी कर ली है । इस प्रकार उन्हें जो सिद्धान्त प्राप्त हुए हैं वे निम्न है –

१ अखण्ड शारीरिक स्वास्थ्य दवाओ के सहारे नही प्राप्त किया जा सकता । उसकी प्राप्ति का अचूक साधन सन्तुलित आहार है ।

२ कार्य करने के लिये जीवनी शक्ति (ऊर्जा) खाद्य-पदार्थों के सेवन से नही प्राप्त की जा सकती । युक्तियुक्त उपवास द्वारा थकावट विहीन आन्तरिक कार्य-क्षमता का जागरण किया जा सकता है ।

३ सासारिक पदार्थ, योग्यताएँ आदि मानव को अखण्ड शान्ति नहीं प्रदान कर सकते। विवेकपूर्ण सामर्थ्यानुसार सेवा ही अखण्ड शान्ति की जननी है।

४ अखण्ड (अबाधित) ज्ञान, जिसका परिणाम निर्भयता है, पुस्तकीय ज्ञान से मिलना असम्भव है। वह तो केवल विधिवत् ध्यान द्वारा ही प्राप्य है।

५ मनुष्य को हर प्रकार के द्वन्द्वों के आघातो से छुटकारा पाने के लिये अर्थात् द्वैत भाव तिरोहित करने के लिये उसे सर्वान्तर्यामी प्रभु के चरणो में सर्वभावेन् आत्म समर्पण करना होगा।

प्रस्तुत खाद्य-समस्या का सबध उक्त पाँच सिद्धान्तो मे से केवल प्रथम एव द्वितीय सिद्धान्तों से ही है। अत यहाँ हम केवल उन्ही के बारे मे थोड़ा विस्तार से चर्चा करेंगे।

विज्ञान की जिन तीन प्रक्रियाओ का जिक्र मैंने प्रारम्भ मे किया है, उनमे से निरीक्षण और सिद्धान्त की खोज के बारे मे थोडा ही कहना है। श्री राम चरित मानस मे लिखा है —

"राम कृपा नासहिं सब रोगा॥"
"राम कृपा कस भयऊ सरीरा॥"
"देह दिनहिं दिन दूवर होई।
घट न तेज बल मुख छबि सोई॥"
"देखि उमहिं तप खीन सरीरा॥"

तो निरीक्षण करने से यह मालूम पडा कि तप, उपवास करने से देह (शरीर) तो दिन प्रति दिन दुबला होता चला गया पर तेज, बल और मुख कीआभा वैसी ही रही। इन तथ्यो के पीछे छिपे सिद्धान्तो की खोज करने पर

पता चला कि यह शरीर, जो भोजन के अभाव में दुबला हो गया, जिसका वजन घट गया, वह तो उन पाँच तत्वों का ही बना है, जो खाद्य-सामग्री के रूप में हमें प्राप्त होते हैं। इसलिये यह निश्चित है कि शरीर में काम करने से टूट फूट होने पर अगर उसकी पूर्ति करने वाला तत्व भोजन न दिया जाय तो उसकी पूर्ति न होने से वह दुबला हो जायगा। पर चूकि ऊर्जा का सम्बन्ध इस शरीर निर्माता भोज्य पदार्थों से नहीं है, इसलिए उसमें कभी नहीं आयेगी। 'घट न तेज बल मुख छवि सोई ॥" इसी कारण अगर शरीर को भोजन न दिया जाय तो वह दुबला भले हो जाय पर जीवनी शक्ति में कमी नहीं आएगी। अस्वस्थ शरीर को स्वस्थ करने का तरीका दवाओं का प्रयोग न कर युक्तियुक्त उपवास द्वारा आन्तरिक शक्ति का जागरण करना मात्र है जिसके उपरान्त रोग अपने आप तिरोहित हो जाते हैं। इस तथ्य से शायद कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि अगर उचित पथ्य का सेवन किया जाय तो औषधि की आवश्यकता शायद ही पड़े परन्तु अगर कुपथ्य किया जाय तो धन्वन्तरि भी उस रोगी को निरोग करने में समर्थ नहीं होंगे। आयुर्वेद का एक सिद्धान्त है। "आहार पचति शिखी दोषान् आहार वंजित।" अर्थात् शरीर में स्थित शिखी। जठराग्नि। भोजन देने पर उसका पाचन करती है परन्तु अगर शरीर को भोजन न दिया जाय तो वह शरीर में एकत्र विजातीय द्रव्य (दोषों) का नाश करती है। युक्तियुक्त उपवास द्वारा भोजन के पाचन एवं शारीरिक श्रम का निवारण कर हम उस आन्तरिक शक्ति को यह अवसर देते हैं कि वह प्रस्फुटित हो और शरीर के विकारों को शरीर से निकाल कर हमें स्वस्थ कर दे।

आइये; अब इस बात पर थोड़ा विचार कर लें कि निरोग होने के पश्चात् अथवा साधारणतया स्वस्थ दीखने वाले शरीर को किस प्रकार सदा स्वस्थ रखा जा सकता है ?

भोजन शरीर का निर्माण करता है इस सिद्धान्त को मान लेन के पश्चात् हमे यह देखना है कि जिन तत्वो से शरीर का निर्माण हुआ है, उन्हे हम उचित प्रकार से एव उचित मात्रा मे किस प्रकार दे सकते है जिससे वह २५, २६ वर्ष की अवस्था तक शरीर को ठीक प्रकार से निर्माण कर सके और उसके बाद कार्य करने से होने वाली टूट फूट की उचित मात्रा मे पूर्ति भी कर सके।

यह स्थूल (अधम) शरीर प्राचीन ऋषियो की मान्यता के अनुसार पाच तत्वो से बना हुआ है —

"छिति जल पावक गगन समीरा। पच रचित यह अधम सरीरा॥"

इसके अनुसार शरीर के उचित निर्माण एव सरक्षण के लिये हमे इन पाच तत्वो के ठीक ठीक उपयोग का ध्यान रखना चाहिये। आकाश को छोड कर कहावतो मे भी हम हवा खाने, धूप खाने, जल खाने और मिट्टी खाने की बात केवल मजाक मे ही नही कहते। केवल आकाश तत्व खाने का तत्व नही है फिर भी शरीर के निर्माण मे उसका बहुत ही महत्वपूर्ण योग है। बाकी चार तत्वो का हम अपने दैनिक जीवन मे किस प्रकार प्रयोग करें? 'पचाम्यन्न चतुर्विधिम्" मे मिट्टी तत्व प्रधान दालो एव अनाज, जल तत्व प्रधान तरकारियो, अग्नि तत्व प्रधान (सूर्य की धूप मे पके) मौसम मे प्राप्य बिना पकाये खाये जाने वाले फल एव वायु तत्व प्रधान पत्तियो के चार प्रकार के भोजन का पचाने की ओर सकेत किया गया है। इसमे भी एक प्रकार का आपसी सम्बन्ध बडा महत्वपूर्ण है। प्रथम तो यह कि जिस प्रकार सबसे नीचे पृथ्वी है, उससे ऊपर जल, उसके भी ऊपर अग्नि (सूर्य) और उसके ऊपर वायु एव सबके ऊपर आकाश है, उसी प्रकार उपयोगिता एव वाछनीयता की दृष्टि से दाल और अनाज का भोजन सबसे नीचे की श्रेणी के, तरकारिया उससे ऊपर की श्रेणी के, फल उससे भी ऊपर की श्रेणी के और पत्तिया सबसे ऊपर की श्रेणी के खाद्य-पदार्थ है।

इस कारण अगर हम अपने भोजन को निम्न स्तर के भोजन से उच्चतर स्तर के भोजन की ओर क्रमश ले जाने का प्रयत्न करें, तो शरीर के स्तर पर बिना किसी प्रकार की हानि उठाये हम उच्चतर श्रेणियों के भोजन पर भली प्रकार जीवन निर्वाह कर सकेंगे अर्थात् शरीर को सबल और स्वस्थ रख सकेंगे।

डा० बारबरा मूर, एम० डी०, एक रूसी महिला का जीवन भी इस प्रविधि (टेकनीक) का एक ज्वलत उदाहरण है, जो पहले तीन वार भोजन करती थी, जिसको उसने क्रमश तीन बार से दो बार और फिर एक बार किया। उसके बाद अन्न छोड़कर तरकारियां, फिर तरकारियां छोड़कर फल और पत्तियां आहार मे लेती रही और अन्त मे केवल रस या कुछ शहद का अल्प मात्रा मे सेवन आरम्भ किया। अब वे महीनों केवल जल पर ही रह लेती है और स्विटजरलैंड, इटली आदि मे बर्फ के पानी पर ही रह कर नित्य ४०-५० मील पैदल चलती है। इसमे लगभग ८००० फीट ऊंचे पहाड़ पर चढ़ना उतरना भी शामिल है फिर भी उन्हे थकावट नही महसूस होती।

स्वास्थ्य लाभ के लिये श्री रामचरित मानस के सिद्धान्त किस प्रकार कार्य करते हैं यह, मुझे आशा है, स्पष्ट हो गया होगा। अब मैं ऊर्जा के स्रोत का सक्षेप मे निर्देश कर उसको प्राप्त करने की प्रविधि पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा।

प्रारम्भ मे मैंने सकेत किया है कि शक्ति पौष्टिक खाद्य-पदार्थों से नही प्राप्त की जा सकती। शक्ति का अनत भडार पच-तत्वों, यहाँ तक कि मन वाणी से भी परे स्थित है और वह सबके लिये सदा सुलभ भी है तथा भगवान की अहैतुकी कृपा कहिये अथवा भौतिकवादी दृष्टिविन्दु से प्रकृति का विधान, के द्वारा हम नित्य ही उस अक्षय भण्डार से अपनी लुटिया की माप भर शक्ति प्राप्त कर दैनिक जीवन मे उसका उपयोग करते रहते हैं। उक्त विधान के कारण हम जितनी ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं वह हमारी दैनिक आवश्यकताओं

के लिये पर्याप्त से भी अधिक होती है परन्तु उस ऊर्जा का हम अनावश्यक रूप से अपव्यय कर देते हैं और आवश्यक कार्यों के लिये उसका अभाव सृजन कर शक्तिहीनता एव थकान का अनुभव करते रहते हैं। इमे जरा और स्पष्ट रूप से समझिये।

शक्ति के व्यय का अर्थशास्त्र मेरी समझ मे निम्न प्रकार है —

१ शारीरिक श्रम मे शक्ति सबसे कम मात्रा मे व्यय होती है।

२ भोजन पचाने में शारीरिक श्रम से अधिक शक्ति खर्च होती है।

३ इन्द्रियो द्वारा विषयों के उपभोग की क्रिया मे उससे कही अधिक शक्ति का क्षय होता है।

४. चिन्ता उक्त तीनो प्रकार से भी अधिक शक्ति के ह्रास का कारण है।

५. और भय शक्ति को इतनी अधिक मात्रा में व्यय कर सकता है कि मनुष्य की तत्काल मृत्यु तक हो सकती है।

अब आप सोचिये कि प्रतिदिन उक्त पाच मदो मे से किस किस मद मे हम अपनी कितनी शक्ति का व्यय करते है या बिना हमारे चाहे भी व्यय हो जाती है। और जरा उस अवस्था की भी कल्पना कीजिये जब आपका जीवन चिन्ता और भय से रहित होगा तथा आज इन दो मदो मे आपकी शक्ति का जो व्यय हो जाता है वह बच कर शरीरिक श्रम के कार्य, भोजन पचाने के कार्य और सासारिक विषयो के उपभोग के कार्य मे आयेगा ? वेदो मे 'अदीन' हो कर सौ वर्ष तक जीने की जो कामना की गयी है उसका आधार शक्ति के खर्च करने का यह अर्थशास्त्र ही है।

"जीवेम शरदः शतम् अदीनस्या शरद शतम् ।"

अब ऊर्जा के अक्षय भडार का रहस्य खोल दू। यह भडार पच तत्वो, मन और वाणी के पार कही स्थित है। इसलिये उस भडार से ऊर्जा प्राप्त

करने के लिये आप, हमको शरीर, मन, वाणी मे भी पार जाना चाहिये और प्रकृति के विधानानुसार, जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है, गहरी नीद की अवस्था में हम नित्य शरीर, मन और वाणी से पार पहुँच कर उस भडार से सम्पर्क स्थापित करते और ऊर्जा प्राप्त करते हैं पर अफसोस है कि हम उसका उचित उपयोग न कर अज्ञानवश बुरी तरह अपव्यय कर डालते हैं। क्या कोई इस बात की कल्पना कर सकता है कि गहरी नीद द्वारा शरीर, मन और वाणी से पार गये बिना अर्थात् सोये वगैर कोई भी मनुष्य ससार मे दुर्लभतर पौष्टिक पदार्थों का सेवन कर उनसे ऊर्जा प्राप्त कर अपने को कार्यशील बनाये रख सकता है? मानस साधना मडल की मान्यता के लिये क्या यह प्रमाण यथेष्ट नही है? आध्यात्मिक साधक विधिवत् ध्यान द्वारा शरीर, मन और वाणी से पार जाकर उस अनन्त भडार से सम्पर्क स्थापित करता और ऊर्जा प्राप्त कर लेता है।

ऊर्जा के प्रकरण मे युक्तियुक्त उपवास का केवल इतना ही महत्व है कि वह शारीरिक विकारो को निकाल कर शक्ति का जागरण कर देता है जिससे जिन माध्यमो द्वारा हम शक्ति उपयोग करेंगे, वे विकार रहित होकर प्राप्त ऊर्जा का सचालन भली भाति कर सकें।

अन्त मे मैं वर्तमान साधारणतया मान्य अभाववाद की मान्यता, जिसमे दवा के अभाव मे रोग की उपस्थिति, पौष्टिक खाद्य-पदार्थों के अभाव मे शक्तिहीनता की स्थिति के विपरीत श्रीराम चरित मानस के प्रकाशवाद एवं विकारवाद के सिद्धान्तों की बात कह कर अपना निवेदन समाप्त करना चाहूँगा। प्रकाशवाद का सिद्धान्त भवना-प्रधान साधको के लिये भक्ति या शरणागति का मार्ग है तथा विकारवाद का सिद्धान्त विचार-प्रधान व्यक्तियों के लिये सृष्टि का अबाधित ज्ञान प्राप्त करके विश्लेषण और प्रयोग का मार्ग है, यद्यपि दोनो की वाछित उपलब्धियो मे मात्रा एव गुण का कोई भेद नहीं हैं। यथा:—

"ग्यानहि भगतिहि नहि कछु भेदा । उभय हरहिं भव सम्भव खेदा ॥"

इतना सब लिखने और इसके पढने मे आपका इतना बहुमूल्य समय लेने का मेरा केवल इतना ही उद्देश्य है कि आप मानस की इन मान्यताओ पर गम्भीरता से विचार करें और भोजन के क्रमिक त्याग की जो प्रविधि (टेक्नीक) है उसके अनुसार प्रयोग कर कम से कम दिन का अन्न का भोजन त्याग दें । इससे मेरा विश्वास है कि आपकी कार्यशक्ति घटने के बजाय बढ जायगी, आपका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन अधिक अच्छा होता जायगा और सबसे अधिक आप अपनी मातृ-भूमि की सेवा खाद्य-समस्या को हल करने मे अपना योग देकर कर सकेंगे, जिस मातृ-भूमि पर आज सकट के बादल छाये हुये हैं और जिन्हे छिन्न भिन्न करने मे आपका यह अन्नत्याग प्रबल प्रभजन का काम करेगा ।

-○-

नोट—यह लेख लखनऊ के दैनिक पत्र 'स्वतन्त्र भारत' मे १३ दिसम्बर, १९६५ को प्रकाशित हो चुका है ।

फल, शाक, एवं सब्जियों का महत्व ❋

— ० —

यह तो आप जानते ही हैं कि दुनियाँ मे मांस और दूध को छोड कर सभी खाद्य-पदार्थों मे मिट्टी, जल, अग्नि (धूप), वायु और आकाश का ही तत्व भोज्य पदार्थों के रूप मे विद्यमान है। आज मै आप से यह भी निवेदन करना चाहता हूँ कि दाल और अनाजो मे पृथ्वी तत्व, हरी तरकारियो मे जल तत्व, धूप मे पके फलो मे अग्नि तत्व और पत्तियो मे हवा तत्व की प्रधानता रहती है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वैज्ञानिक खोज एव परीक्षणो द्वारा यह निष्कर्ष निकाला है कि आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की, और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है एव आकाश तत्व मे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व, वायु तत्व मे अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व, अग्नि तत्व मे जल और पृथ्वी तत्व तथा जल मे पृथ्वी तत्व भी विद्यमान है। इस प्रकार हम देखते है कि जल तत्व प्रधान हरी तरकारियो मे, पृथ्वी तत्व प्रधान दाल और अनाजो के गुण, अग्नि तत्व प्रधान फलो मे जल तत्व प्रधान हरी तरकारियो एव पृथ्वी तत्व प्रधान दाल और अनाजों के गुण तथा वायु तत्व प्रधान पत्तिया मे अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व प्रधान फल, तरकारियो एव अनाजो के गुण मौजूद हैं। इसलिये अगर कोई अनाजो को छोड कर केवल हरी तरकारियो का ही भोजन करे, क्रमश अनाजो और तरकारियो को छोड कर केवल सूर्य की धूप मे पके फलो का ही भोजन करे, तथा अनाज, तरकारियो, और फलो को छोड कर केवल पत्तियो का ही भोजन करे तो भी उसे स्वस्थ एव सबल जीवन व्यतीत करने के लिये सभी आवश्यक तत्व क्रमश इनसे ही प्राप्त होते रहेगे।

आप यह भी जानते है कि पृथ्वी तत्व सबसे स्थूल एव नीचे की श्रेणी मे स्थित है, जल तत्व उससे सूक्ष्म एव ऊपर स्थित है, अग्नि तत्व उससे भी सूक्ष्म एव ऊपर स्थित है, वायु तत्व उससे भी अधिक सूक्ष्म एव ऊपर स्थित

❋ यह लेख उत्तर प्रदेश सरकार के कृषि विभाग के मुखपत्र 'कृषि और पशुपालन' के जनवरी, १९६६ के अक मे प्रकाशित हुआ था।

है तथा आकाश तत्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म एव सबसे ऊपर स्थित है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि दाल और अनाजो से तरकारिया श्रेष्ठ भोजन है, अनाज और तरकारियो से फल श्रेष्ठ भोजन है, और इनसे भी श्रेष्ठ भोज्यपदार्थ पत्तिया है। अत यदि आप प्रारम्भ मे दिन मे केवल तरकारियो, कुछ फल और पत्तियो का भोजन करें और शाम को रोटी, दाल, चावल सब्जी का भोजन करें, फिर कुछ दिनो बाद दोनो वक्त के भोजन में मे अनाज निकाल कर फल, सब्जी और कुछ पत्तियो का भोजन करें, फिर कुछ दिनों बाद तरकारियाँ भी निकाल कर केवल फल और पत्तियो का भोजन करें और अन्त मे फल भी हटा कर केवल पत्तियो पर निर्वाह करने लग तो इस क्रम से भोजन मे परिवर्तन करने पर आप क्रमश उच्चतर किस्म के भोजन पर ही रह कर अपने जीवन के सारे कार्य, जो अब तक करते रहे हैं, पूरी सफलता से करने मे समर्थ हो सकेंगे। क्योंकि इस प्रविधि (टेक्नीक) के अपनाने पर आपके शरीर में सचित मल बाहर निकलता जायगा और मल रहित शरीर अपेक्षाकृत कम और सूक्ष्म भोजन से ही अपनी सारी आवश्यकतायें पूरी कर लेगा। आप चाहे तो इससे भी आगे बढ कर हफ्तो केवल हवा पर और महिनो केवल जल पी कर भी रामायण की उस चौपाई को प्रत्यक्ष दिखा सकते है जिसमे पार्वती जी के लिए लिखा है कि "कछु दिन भोजन बारि बतासा।"

'मानस साधना मडल' के सदस्य वर्षों से केवल शाम को ही रोटी, दाल, चावल, सब्जी का भोजन करते हैं। दिन मे वे प्राय. शर्बत या अधिक से अधिक मौसम के स्थानीय फल अथवा तरकारियाँ ही खाते हे। इससे उनकी कार्य क्षमता इतनी बढ गयी है कि वे थकान का अनुभव नही करते। इस नियम को अपनाने के बाद से वे आज तक कभी बीमार नही पडे यहाँ तक कि जो कोई पहले कठिन रोगो से ग्रस्त थे और अनेक प्रकार की औषधियो का सेवन करके निराश हो चुके थे, वे भी इस प्रकार के भोजन से उन बीमारियों से बिना किसी दवा के नीरोग हो चुके है। जो भी महानुभाव चाहेगें हम अपने ऐसे साथियो के पत्र उनके पास भेज सकते है जिससे वे इन तथ्यो की जाच स्वय कर सकें।

इतना निवेदन करने का तात्पर्य केवल यही है कि अगर आप इन लाभों को ध्यान मे रखते हुए दिन मे अनाज न खाकर फल सब्जी खायें और रात मे दाल रोटी चावल और सब्जी खायें तो जहां आप अधिक शक्ति का अनुभव करेंगे, बीमार होने से सदा के लिये छुट्टी पा जावेंगे, वही आप देश की इस सकट की घडी मे उसे खाद्यान्न के मामले मे स्वावलम्वी बना कर देश की बहुत बडी सेवा भी कर सकेंगे और हमारे स्वर्गीय प्रधान मत्री जी की अपील को ७ गुना अधिक सफल बना सकेंगे ।

भोजन मे अनाज को कम कर मौसम के फल एव सब्जी के अधिक उपयोग से देश खाद्यान्न मे स्वावलम्बी होगा देशवासियो के स्वास्थ्य मे सुधार होगा एव उनकी कार्य क्षमता बढ जायगी ।

हमे आशा है कि प्रत्येक देशवासी भोजन सम्वन्धी इस भूली हुई प्राचीन विचारधारा पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेगा और इसे अपनायेगा ।

मेरी प्रार्थना है कि अगर केवल देश को खाद्यान्न मे स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि से भी आप केवल पूरे एक माह तक भी दिन मे फल सब्जी एव शाम को रोटी दाल सब्जी का भोजन करने का निश्चय कर उसे कार्यरूप में परिणित कर दें तो उसके बाद आपका सुधरा हुआ स्वास्थ्य एव बढी हुई कार्य-क्षमता हमारी इन बातो को सही प्रमाणित कर देगी। मनुष्य के जीवन मे इस प्रकार के प्रयोग के लिये एक माह का समय कोई बहुत अधिक नही है इसलिये आप आज ही निश्चय करें कि अपने कल्याण के लिये तथा देश के सकट को दूर करने के लिये कम से कम एक माह तक आप दिन को अन्न न खाकर केवल फल और हरी सब्जी खायेंगे और एक माह ऐसा करने के बाद अपने प्राप्त अनुभव के आधार पर आगे निश्चय करेंगे। मेरा तो विश्वास है कि एक माह तक यह प्रयोग करने के बाद इसके लाभकारी परिणामो को देख कर आप इसे सदा सदा के लिये अपना लेंगे ।

कृपया अपनी शकाओ एव दुविधाओ के निवारणार्थ 'मानस साधना मडल' डी १२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ-४ को सेवा करने का अवसर अवश्य प्रदान करें। इसके लिये हम कृतज्ञ होगे.।

मुद्रक—अवध प्रिंटिंग वर्क्स, ९२ गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ ।

—◦|✻|◦—

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तो की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओ से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष .

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मन्त्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी, बी एस.

प्रधान कार्यालय

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

मानस साधना ग्रन्थमाला--पुष्प--१०

दमा से मुक्ति

रामचरित मानसके वैज्ञानिक अध्ययन एव मेरे तथा मेरे मित्रोंके प्रयोगोंसे मेरी इस मान्यताकी पुष्टि हुई है कि इस ग्रन्थमें प्रतिपादित दर्शन कोरी कल्पनाकी वस्तु नहीं बल्कि पूर्ण तथा व्यावहारिक है। यह अपने उन पाठकों और श्रोताओंके जीवनमें आमूल परिवर्तन लाने में सक्षम है, जो इसका सिद्धात समझकर उसका सही प्रयोग करेंगे। मेरे बहुतसे मित्रों और सह-साधकोंने रामचरित मानसमे निर्दिष्ट पचसूत्री साधन प्रणाली के अनुसार जो वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं, उनसे पता चलता है कि साम्प्रतिक मापदडके अनुसार इस साधनासे उन्हें आश्चर्य-जनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। उनके शरीर बिना औषधोपचारके ही सभी प्रकारके रोगोंसे, जिनमें डायबटीज, अथ्राइटीस, दमा, गठिया, टी० बी० आदि असाध्य कहे जाने वाले रोग भी हैं, मुक्त हो गये हैं। इस पुस्तिकामे दमाके ऊपर मानसके सिद्धान्तोंका प्रयोग एव उनके परिणाम प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु व्यक्ति विशेषकी स्थितियोंमें भिन्नता होने के कारण इन-का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए।

इन प्रयोगोंसे जिनके परिणाम रामचरित मानसके त्रिताप नाशके दावोंकी पुष्टि करते हैं, जो वैदिक सिद्धान्तोंकी पुष्ट-

भूमि पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगोंकी प्रविधि (टेक्नीक) की मोटी-मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं तथा जन साधारणकी अनुभूतियोंके मुकाबले आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, 'मानस-साधना मंडल' समाजके सामने इस दृष्टिसे प्रस्तुत कर रहा है जिससे इस प्रकार के परिणामोंकी अभिलाषा रखनेवाले ग्रहणशील व्यक्ति इस ओर उन्मुख हों, रामचरित मानस के सिद्धान्तोंको समझने और उनकी प्रविधिके अनुसार प्रयोग करने के लिये सचेष्ट हों और बाह्य अभाव एवं आन्तरिक अशांति मिटा कर आनन्दमय जीवनका उपभोग कर सकें।

(१)

(डा० सीताराम गुप्त, ग्राम-पोस्ट डूहाँ,बिहरा, बलिया)

२३ सितम्बर सन् १९६२ ई० का वह दिन मुझे भूला नहीं है, जब दमाके प्रचण्ड प्रकोपने वस्तुतः मेरे जीवनको अवसानके समीप ला दिया था। सारी औषधियाँ उसका दमन करनेमें विफल हो चुकी थीं। मेरे सगे संबंधी, मित्र, पड़ोसी तथा गाँवके सभी शुभचिंतक मुझे घेरे खड़े थे। संभवतः वे मुझे मृत्युशय्या पर ही देख रहे थे और मेरे जीवनकी अन्तिम घड़ियोंको बड़े व्यथित हृदयसे गिन रहे थे। किंकर्त्तव्यविमूढ हो सबके सब बड़ी निराशा भरी नजरोंसे मेरी ओर निहार रहे थे। दमाके वेगने मुझे बोलनेसे भी मजबूर कर रखा था। इतनेमें किसीने मुझे सुझाव दिया कि नवानगर सरकारी अस्पतालमें कोई नये डाक्टर आए हैं। उन्हें भी दिखा दिया जाय। मौसम इतना खराब था कि घरसे बाहर निकलना मुश्किल था। उस पर हमारा गाँव बाढ़के पानीसे चारों ओरसे घिर गया था। गाँवमें आने-जानेके लिए केवल एक छोटी-सी नाव थी। जो हवाके हल्के झोंके पर भी डगमगा जाती थी। ऐसे खराब मौसममें रात्रिके समय नव नगर अस्पतालसे इतने बीहड़ रास्तेको पैदल तय करके बिना किसी

सगारीके नवागन्तुक डाक्टर साहब मुझे देखने आ सकेंगे, ऐसी आशा किसीको नहीं थी। परन्तु सब लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जब मुझ गरीब दुखियाकी करुण पुकार पर डा० चन्द्रदीप सिंह मेरी प्राण-रक्षा हेतु दौड़ पड़े। भयंकर तूफान, पानी और कीचडको पार करते हुए उस रात आदरणीय डाक्टर साहब मेरे यहाँ पधारे। अपने फुलपैन्टको जंघों तक चढ़ाए, जिस अजनबी किन्तु महान आत्माको मेरी सजल आँखोंने पहले पहल देखा और जो सुख मुझे प्राप्त हुआ वह अनिर्वचनीय है। इस कर्मठ समाज-सेवीके कठिन परिश्रमका अनुमान लगाकर मेरी आँखें क्षण भरके लिए छलछला आयीं किन्तु उसी क्षण मुझे रोगने बेसुध कर दिया। बलगमके कारण मेरी श्वास-क्रिया बन्द होने लगी थी—पानी तक अन्दर नहीं जाने वाला था।

उन्होंने आते ही मुझे एक इंजेक्शन दिया और मुझे पाँच मिनटमें ही रोगसे अवकाश-सा मिल गया और मैं उनसे कुछ बात करने की स्थितिमें हो गया। डाक्टर साहबने मुझसे कहा कि आप घबड़ायें नहीं। जब तक आप नहीं कहेंगे, तब तक मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगा। इन शब्दोंसे मुझे काफी साहस और संतोष मिला। इंजेक्शनके लगते ही मुझे बहुत आराम मिला—मेरी सांस ठीक चलने लगी और मैं आसानीसे बोलने भी लगा। अतः मैंने उनसे कहा कि अब मैं ठीक हालतमें हूँ आप जा सकते हैं। रात काफी हो चुकी थी, पर डाक्टर साहब उसी समय अपने अस्पताल पर लौट गए।

उसके बाद करीब छै माह तक विधिवत् अंग्रेजी दवा होती रही, पर मेरा रोग समूल नष्ट नहीं हुआ। कुछ दिनोंके लिए दब जाता था, पर फिर उभड़ आता था। एक दिन डाक्टर साहबने कहा कि यदि आप मेरे यहाँ ठहर कर इलाज करा सकें तो बडा अच्छा हो। ऐसा करनेसे मुझे आपके रोगका अध्ययन

करने तथा उचित उपचार करनेका पूरा अवसर प्राप्त हो सकेगा। अतः मैं डाक्टर साहबके यहाँ टिक गया।

अपने सरकारी निवासके पास ही डाक्टर साहबकी फूसकी झोपड़ी थी। यह पर्ण कुटीर इस इलाकेमें आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। आश्रममें ही डाक्टर साहबने अपने आसनके बगलमें मेरी चारपाई लगवा दी और अपने ही घरमें मेरे भोजन आदि की व्यवस्था कर दी। एक सप्ताह तक उन्होंने मेरे रोग-का भाँति-भाँति परीक्षण किया और फिर कहा—"आपका यह दमा औषधिसे केवल दब ही सकेगा, समूल नष्ट नहीं होगा, और वह भी कितने दिनोंके लिए दबा रहेगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। परन्तु आप निराश न हों। भगवानकी दयासे शरीरको रोग मुक्त करने तथा मानव जीवनको हर तरह सुखमय बनाने का साधन भी श्रद्धेय योगीजीके सत्संग द्वारा मुझे मालूम है। डाक्टर होनेके साथ में रामायणका एक विद्यार्थी भी हूँ। तुलसीदासके श्री रामचरित मानसको मैं जीवनका सार्वभौम-ग्रन्थ मानता हूँ और श्रद्धेय योगीजी (श्री हृदय नारायण जी) के सरक्षणमें उसके जीवनोपयोगी पक्षका अध्ययन करता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि मानसके मूल सिद्धान्तोंको भली-भाँति समझ-कर तथा उनके अनुसार अपने जीवनमें आचरण करके मनुष्य केवल रोगसे ही छुटकारा नहीं पा सकता वरन् वह चिन्ता-मुक्त और भयमुक्त भी हो सकता है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि मनुष्यके अन्दर अटल विश्वास हो, अदम्य साहस हो और अपूर्व धैर्य हो।

इन बातोंको सुनकर मैं कुछ देरके लिए चेतना-शून्य हो गया। मेरा रोग औषधिसे समूल नष्ट नहीं हो सकेगा, यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मैं सोचने लगा कि क्या मैं आजीवन रोगी ही रहूँगा। ऐसी हालतमें मेरे बच्चोंका क्या होगा? परिवारका भरण-

पोषण कैसे होगा ? फिर ऐसे दुखी जीवनसे लाभ ही क्या ? मुझे चारो ओर अंधेरा ही अंधेरा दीखने लगा। लगातार छ महीनेसे रोग-शैय्या पर पड़े रहनेके कारण मेरी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी और हमारे मित्रों और शुभचिन्तकोंकी संख्या अब नगण्य हो चली थी। ऐसी अवस्थामें केवल भगवानका ही सहारा शेष रह गया था।

जीवनकी रक्षाका कोई दूसरा उपाय न देखकर मैंने संत डाक्टर साहबसे कहा कि मैं अब आपकी शरण आया हूँ। आप जिस तरह चाहें मेरे प्राणोंकी रक्षा करें। मैं सब कुछ करनेको तैयार हूँ। डाक्टर साहबने कहा कि करने की बात तो बाद में है। सबसे पहले तो आपको जानना है कि आप रोगी क्यों हैं और फिर यह समझना है कि नीरोग होने का साधन क्या है। यह समझ लेनेके बाद ही कुछ करनेका प्रश्न उठता है। अतः मेरे अनुरोध पर उन्होंने मानसके मूल सिद्धान्तोंको मुझे समझाना शुरू किया। मैंने उसी दिनसे औषधियोंका सेवन बन्द कर दिया और जीवनमें फिर कभी किसी प्रकारकी औषधि न खाने की प्रतिज्ञा अपने मनमें कर ली। संत जी (डाक्टर साहब) नित्य मुझे तरह-तरहसे मानसके वैज्ञानिक विवेचनको समझाने लगे। बीच-बीचमें श्रद्धेय योगीजी तथा उनके जीवनोपयोगी सूत्रों "कसो और ढीला करो", 'घटाओ और बदलो', 'भूलो और बांटो' की भी बड़ी जोरदार चर्चा करते रहे। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि श्रमके बाद भोजन और भोजनके बाद विश्राम करना चाहिए तथा उत्पादनके बाद वितरण और वितरणके पश्चात् उपयोगकी बात सोचनी चाहिए। वे मुझे बराबर यही उपदेश देते थे कि मानवके लिए चिन्तन, सेवा और उपवास आवश्यक है। साथ ही मुझे उन्होंने यह भी बताया कि किस तरह उन्हें श्रद्धेय योगीजीके दर्शन हुए और फिर उनके सत्संगसे

उनका जीवन किस तरह बदल गया। इन सब बातोंको सुनकर मेरे हृदयमें श्रद्धेय योगीजीके दर्शनकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई और मैंने डाक्टर साहबसे आग्रह किया कि वे मुझे भी श्रद्धेय योगीजीके दर्शन करानेका कष्ट करें।

मेरे इस निवेदन पर उन्होंने ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप १६ अप्रैल सन् १९६३ ई० को नरानगर आश्रम पर ही परमपूज्य योगीजीने आकर मुझे दर्शन देने की कृपा की। डाक्टर साहबके उपयोगी उपदेश तथा श्रद्धेय योगीजीके प्रभावशाली प्रवचनने मेरे शरीरमें नई जान डाल दी और मेरे जीवनकी धारा ही मोड़ दी। उसी समयसे मैंने दिनके भोजनका परित्याग कर दिया। दिनमें प्रायः गाजर, टमाटर, पालक या लौकीका रस ले लेता था। थोड़ा सा साग और फल खा लेता था और रातमें ही एक बार सादा किन्तु सात्विक आहारका नियम बना लिया था। प्रातः उठते ही एक कम्बल पर बैठकर भगवानका चिंतन किया करता और सूर्योदयसे पहले एक मील टहलने जाता था। भोजनमें घटे अन्नको भगवानके नाते निस्वार्थ भावसे वितरित किया करता था। रातके भोजनका चतुर्थांश निकाल कर किसी प्राणीको, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता, खिला देता था।

अब यही हमारी दिनचर्या हो गयी है। इसी उपचारसे मेरा रोग नष्ट हो गया है और मैंने किसी प्रकारकी औषधि या तन-मन्त्रका सहारा नहीं लिया। मैं अब केवल जिन्दा ही नहीं, हूँ बल्कि मेरे जीवनमें पुनः बसतागमन हो गया है। मैं अपनेमें नया जीवन, नई चेतना और नई शक्तिका अनुभव कर रहा हूँ। अब मेरे शरीरसे रोग, मनसे चिंता, बुद्धिसे भय भगवानकी दयासे मिटते चले जा रहे हैं और मुझे किसी प्रकारकी कोई तकलीफ महसूस नहीं होती। साथ ही मेरी आमदनी भी पहलेसे अधिक होने लगी है। परमपूज्य योगीजीकी दया तथा श्रद्धेय डाक्टर

चन्द्रदीप सिंहके सत्संगसे ही मैं मानसको जीवन उपयोगी साधनाको कुछ समझ पाया हूँ और उन्हें हृदयंगम करके अपने जीवनमें सफल प्रयोग करने का ही परिणाम है कि दमा जैसे असाधारण रोगसे मुझे मुक्ति मिली है और मुझमें नये जीवनका संचार हुआ है।

(२)

(श्रीमती श्यामा रानी. ८।१० ब्लॉ० ए० एरिया,
करोलबाग, नई दिल्ली—५)

जब मेरा विवाह हुआ था तो मेरा शरीर देखनेमें बहुत स्वस्थ था परन्तु भीतर मलभार था, जिसे मैं जान ही न पाती थी। पतिदेव (पूज्य योगीजी) की बात सुनकर कि शरीरको उपवास द्वारा मल-रहित करो, हैरानी होती थी। कुछ दिनों बाद मैं जुकाम-खांसीसे पीड़ित हुई। उसके निवारणार्थ मैंने जो औषधि सेवन की, उससे मुझे भयंकर दमा हो गया। चौदह वर्ष तक इस भयानक रोगसे पीड़ित रही। जाड़ा, गर्मी, वर्षा किसी ऋतुमें भी चैन नहीं था। जीवनसे मृत्यु अधिक सुखद प्रतीत होने लगी, क्योंकि किसी समय जब दौरा हो जाता था, साँस रुकने लगती थी। उस समय मैं लखनऊमें थी। वहाँके एक प्रतिष्ठित चिकित्सकने कहा "दमा दमके साथ जाता है औषधिसे थोड़ी देरके लिए भले ही कुछ आराम हो जाय।"

मैंने पतिदेवके जीवनमें विवाहके दिनसे ही कठोर तपकी रूप-रेखा देख रक्खी थी। अतः वही मार्ग अपनाने का निश्चय किया। ६ महीनेके लिए अनाज, नमक, चीनी, दूध आदि सब छोड़ दिया। दिनमें पालक, गाजर, टमाटर आदि कच्ची सब्जियाँ और संध्याको बिना नमककी पकी सब्जी खाना आरम्भ किया। ६ महीने यही नियम चलाया। फल यह हुआ कि जो दमा दमके साथ जाने वाला था, वह सदाके लिये विदा हो गया और आज २० सालसे भी अधिक हो गये, मुझे एक भी दौरा नहीं

में तो भूल ही गई हूँ कि कभी मुझे दमा था और अब रात्रिमें भी दही, मूली, अमरूद, खीरा आदि खानेमें डर नहीं लगता। कोई परहेज करने की आवश्यकता नहीं रही।

(३)

(श्री गणेशदत्त मिश्र, ग्राम-गणेशपुर, पो०-नरायनपुर, जिला-नैनीताल)

जब मैं लगभग दस वर्षका था तभीसे मुझे दमेकी शिकायत हो गयी थी। प्रारम्भमें ओझा-सोखा द्वारा झाड़ फूंकके रूपमें उपचार हुआ। जैसे-जैसे उम्र बढ़ने लगी, वैसे-वैसे बीमारी भी जोर पकड़ने लगी। बादमें देहाती दवा भी होने लगी। पर कोई फायदा नहीं हुआ। जब मैं लगभग १५ वर्षका हुआ तबसे (बलिया) शहरमें रहने लगा। वहां पर टेलरिंगका काम करने लगा। साथमें होटल भी खोल रखा था। एक होटलका नाम गणेश राष्ट्रीय भोजनालय तथा दूसरेका प्रेम भोजनालय था। इन सब कामोंसे जो आमदनी होती थी, उसका व्यय तीन प्रकार से होता था। पहला सार्वजनिक सेवामें यानी बच्चोंकी शिक्षा, गरीबोंके इलाज तथा राजनीतिक पार्टियोंको चन्दा देने, परिवारके सदस्यों पर तथा तीसरा अपनी इस दुष्ट दमे की बीमारीमें।

ओझा-सोखाकी झाड़-फूंक और देहाती दवासे लाभ होता न देखकर शहरमें एलोपैथी इलाज कराना प्रारम्भ किया। बलियामें डा० राम दयाल सिंहजी मेरा इलाज करते रहे। हम इनके व्यवहार व उपकारको नहीं भूल सकते। इन्होंने अपने परिवारके एक सदस्य की भाँति मेरा इलाज और देखभाल की। परन्तु शायद एलोपैथीके पास इस बीमारीका इलाज न था और वे भी इस दुष्ट दमाको मुझसे अलग न कर सके। दौरा पड़ने -- मैं कष्टसे रोता था और डाक्टर साहब देखते रहते थे।

सन् १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रहमें मैं जेल गया। जेलमें बनारसमें रहा। वहाँके डाक्टरोंने भी इस बीमारीसे शक्ति भर युद्ध किया परन्तु उन्हें भी हार माननी पड़ी। बीमारी पर उनकी दवाका कोई लाभकर प्रभाव नहीं पड़ा।

सन् १९५१ से ग्राम गणेशपुर पो० नरायनपुर जिला नैनीतालमें रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद बीमारी धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करने लगी। उन दिनों डा० शिव शंकर मिश्र, फैजाबादमें थे। मैं सन् १९५७ में उनके पास फैजाबाद गया और उनकी देखरेख में दवा होने लगी। इन दिनों मेरी शारीरिक दशा ठीक नहीं थी। दिल का धड़कना, बेहोशी और दमेका दौरा पड़ता रहता था। मैं फैजाबादमें भी डेढ़ माह इलाज कराकर और निराश होकर वापस आ गया। सन् ५८ में दमाके कारण शक्तिहीन और जीविका कमानेमें असमर्थ होनेके कारण पेन्शनके लिये सरकारको लिखा था। सरकारने दमेकी स्थिति देखकर मेरे लिये अस्थायी पेन्शन मंजूर कर दी।

सन् ६२ तक आते-आते इस दमेके कारण मैं पंगु हो गया। चलना, फिरना मुश्किल हो गया। मेरे लिये यह आवश्यक हो गया कि जहाँ भी रहूँ किसी न किसी डाक्टरसे मित्रता बनाये रक्खूँ। जीवनकी रक्षाका एक यही सहारा दिखायी पड़ता था। गनेशपुर रहते समय रुद्रपुरके डा० सतीशचन्द्र रस्तोगीसे मित्रता हो गयी थी और वे लगनसे प्रेमपूर्वक मेरी चिकित्सा व देखभाल करते थे। वे एक अनुभवी और मिलनसार डाक्टर हैं।

जुलाई १९६३ में दमेका दौरा बड़े जोरोंसे पड़ा। डाक्टर लाये गये। हालत बड़ी नाजुक थी। सुइयां दी गयीं और डाक्टर साहब मुझे अपने साथ रुद्रपुर ले गये। वे अपने पास रखकर ही दवा करने लगे। धीरे-धीरे हालत बिगड़ती गयी

और मजबूर होकर रुद्रपुर अस्पताल ले जाया गया। वहाँ डाक्टरने मुझे लखनऊ भेजने की राय दी। पर मेरी हालत इतनी खराब थी कि मुझे लखनऊ कैसे पहुँचाया जाय, यह समस्या खड़ी हो गयी। खैर किसी तरह नवम्बरमें लखनऊ आया। लखनऊमें वलियाके एम० एल० ए० पं० राम अनन्त जी पांडेयने मुझे अस्पतालमें भरती करा दिया। वहां दवा होने लगी। कभी बीमारी कुछ कम हो जाती कभी कुछ अधिक। यह क्रम काफी दिनों तक चलता रहा। इस दमेकी बीमारीमें कितनी तकलीफ होती है यह तो केवल भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। कुछ दिनों बाद मैं लखनऊसे वापस आ गया।

अक्तूबर ६४ में मेरी हालत एक बार फिर बहुत खराब हो गयी। डाक्टर साहब आये और मुझे अपने साथ रुद्रपुर ले गये। कुछ दिनोंके बाद एक दिन ऐसा हुआ कि मैं दुनियोंसे चल बसा। मेरे साथ रहने वाला नौकर डाक्टर साहब को बुला लाया। डाक्टर साहब मेरी हालत देख कर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। आखिरी सुई जो दी जाती है, वह मेरे सीने पर दी गयी और मालिश होने लगी। नौकरसे घर पर भी सूचना भिजवाने के लिये कह दिया गया कि "अब वे नहीं रहे।" एक आदमी दौड़ा हुआ गणेशपुर गया। वहाँ रोना-पीटना शुरू हो गया। जो जहाँ था वहींसे रुद्रपुरके लिये चल पड़ा। उधर आक्सीजन वगैरह न होने के कारण डाक्टर साहब अपनी कारसे मुझे अस्पताल ले गये। वहाँ पर सैकड़ों आदमी पहुँच गये थे। कई दिनोंके बाद होश हुआ। उसके बाद अपने किसी आदमीको देखते ही रुलाई आती थी और बेहोश हो जाता था। इस कारण कोई आदमी मुझसे भेंट भी नहीं करता था। दिसम्बर मासमें अस्पतालसे घर वापस आगया।

इलाजके लिये मैं पुनः १ फरवरी, ६५ को लखनऊ आया। यहाँ पर मेरे ठहरने के तीन स्थान हैं। पहला दारलशफामें पं० रामअनन्त पांडेयजीका निवास स्थान, दूसरा बलरामपुर अस्पताल तथा तीसरा सिविल अस्पताल हजरतगंज। श्री पांडेयजीकी सेवा सराहनीय है। वे मेरे पहुँचते ही मुझे अस्पताल ले जाते थे और भरती करा देते थे। मेरी सुख-सुविधाकी भी देख-भाल किया करते थे। शारीरिक अवस्था इतनी खराब थी कि भरती होने में तनिक भी विलम्ब नहीं होता था। इस बार अस्पतालसे लौटकर आने पर पांडेयजीके यहाँ श्री कुबेर प्रसाद गुप्तसे मुलाकात हुई। यहाँ से मेरे जीवन में परिवर्तन प्रारम्भ होता है।

श्री कुबेर प्रसाद गुप्तने मुझे 'साधक' पत्रिकाकी कुछ प्रतियाँ दीं और उन्हें पढ़ने को कहा। मेरा हालचाल पूछने वे अक्सर वहाँ आ जाया करते थे और हर बार 'साधक' पढ़ने के लिए आग्रह करते थे। और कहते थे आप इसे जरूर पढ़ें और इसके बाद उचित समझें तो मुझसे बात करें। मैं चाहता था कि ये यहाँ से शीघ्र चले जाँय। इनसे बातें करने को भी जी नहीं चाहता था। क्योंकि मैं जीवनसे निराश हो चुका था। एक दिन जैसे ही श्री कुबेर प्रसाद जी मिलकर बाहर गये कि मुझे हमेशा दौरा पड़ा और मुझे अस्पतालमें भरती करा दिया गया। अस्पतालमें मौतकी शय्या पर पड़े-पड़े जीवनका एक-एक दिन काटना दूभर हो गया। इसी समय अचानक 'साधक' पत्रिकाकी याद आई। सौभाग्यसे 'साधक' की कुछ प्रतियाँ मेरी तकियाकी गिलाफमें थीं। मैं बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्हें पढ़ने लगा। बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं उबता था। दिनांक २३ सितम्बर, ६४ की घटनासे, जो डा० सीताराम गुप्तके अनुभवोंमें वर्णित है और जिसमें डा० चन्द्रदीप सिंह जी का उनसे उस स्थितिमें कष्ट उठा कर भी मिलना लिखा है, मैं

काफी प्रभावित हुआ। अब अस्पतालसे निकलकर दारुलशफा आया और श्री कुबेर प्रसादजीसे मिलने को आकुल हो गया। उसी दिन उनके कार्यालयमें जाकर उनसे मिला और केवल इतना ही कहा कि आपसे कब और कहाँ पर मुलाकात होगी? उन्होंने कार्यालय समाप्त होने पर सवा पाँच बजेका समय बताया और मेरे ठहरनेके स्थान पर ही आने का भी आश्वासन दिया। वे मेरे यहाँ ठीक सवा पाँच बजे आ गये। अब मैं उनसे आग्रह करने लगा कि योगीजीसे मेरी भेंट करा दें। मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। हमारी उत्सुकताको देखकर उन्होंने कहा कि १४ मार्च, को सिटी मान्टेसरी स्कूलमें और १८ मार्चको होली के दिन मेरे यहाँ उनसे मुलाकात हो सकती है। मैं १४ मार्चके पूर्व ही एक दिन जाकर सिटी मान्टेसरी स्कूल देख आया और १८ मार्चके पूर्व श्री कुबेर प्रसाद गुप्तका मकान नं० डी-१२१४, राजेन्द्र नगर भी देख आया, जिससे निश्चित तारीखको भटकना न पड़े। क्योंकि अब मैं इस स्वर्ण अवसरको खोना या उसमें तनिक भी विलम्ब करना नहीं चाहता था।

सिटी मान्टेसरी स्कूलमें जब प्रवचन प्रारम्भ हुआ तो मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ और कुछ अविश्वास भी कि सफेद खादीके कुर्ते धोतीमें एक दुबले-पतले व्यक्ति प्रवचन कर रहे हैं। मुझे आशा थी कि मैं एक गेरुआ वस्त्र पहने, किसी मोटे-ताजे संन्यासीको देखूँगा। इस निराशासे प्रथम तो मेरे मनमें अविश्वासकी भावना पैदा हुई परन्तु प्रवचनमें जो कुछ सुना वह तो कल्पनातीत था। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि इस संतके मार्ग-दर्शनमें चलने पर मेरा रोग समाप्त हो जायगा।

दिनांक १८ मार्चको मैं श्री कुबेर प्रसादजीके यहाँ गया। उस दिन होली थी। रास्ते में रंग पानीसे सारा शरीर भीग गया। मुझे डर लगा कि यहीं फिर बीमार न पड़ जाऊँ क्योंकि

मैं दो सालसे स्नान नहीं कर पाया था। सवेरेका समय और भीगनेके कारण ठंडसे कॉप रहा था। वहाँ पहुँचते ही पूज्य योगीजीने पहले मुझे कपड़ा बदलने को कहा। श्री कुबेर प्रसाद जीका कपड़ा पहन कर अपना कपड़ा सूखनेको डाल दिया और पूज्य योगीजीसे बातें होने लगी।

पूज्य योगीजीने सर्वप्रथम भगवान पर भरोसा करने तथा दवाका प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा करने को कहा। यह सुन कर मैं बहुत असमंजसमें पड गया। दबती हुई धीमी आवाजमें कहा कि मेरे जैसा दमाका मरीज आपने न देखा होगा। जिस समय इस दुष्ट दमेका दौरा पड़ता है, उस समय मेरी सारी सुधि-बुधि खो जाती है। मुझे पता ही नहीं चलता कि कब और क्या हो गया। साथमें रहने वाले ही समयानुसार डाक्टर बुलाने की व्यवस्था करते हैं। ऐसी स्थितिमें मैं कैसे प्रतिज्ञा करूँ कि मैं दवाका प्रयोग नहीं करूँगा इस पर उन्होंने पूछा कि क्या दमाका दौरा पड़ने से दो चार मिनट पहले मालूम हो जाता है कि दौरा पड़ेगा ? इस बातसे तो मैं चकित हो गया। मैंने कहा कि हां, कुछ मिनट पूर्व मुझे आभास मिल जाता है कि दौरा पड़ने वाला है। इस पर उन्होंने कहा कि ऐसा मालूम पड़ते ही गुनगुने पानीका एनिमा लो और गुनगुने पानीमें दोनों पैर डाल देना और घुटनेसे नीचे धुलवाना। इससे मुझमें एक अजीब शक्तिका संचार हुआ और मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मेरी बीमारीकी आधी शक्ति तो अभी नष्ट हो गयी।

इसके बाद कुछ नोट करने के लिये कहा। मैंने कुबेर प्रसाद जीसे नोट करने के लिए कहा क्योंकि उस समय मैं कुछ भी लिख सकनेमें असमर्थ था। कमजोरीके कारण दाहिना हाथ और दाहिना पैर खराब हो गया था यानी

होती थी। पूज्य योगीजीने जो नोट करवाया वह निम्न प्रकार है:—(१) प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सुन्दरकाण्डका समूचा पाठ करना। यह पाठ लगातार ५१ दिन तक होगा। (२) प्रति दिन एनिमा लेना। (एनिमा लेने की विधि भी अपना विशेष महत्त्व रखती है।) (३) १०-१२ तुलसीका पत्ता शामको तांबेके वर्तनमें भिगो देना और सुबह ७।। बजे तुलसीका पत्ता खाकर वह पानी पी लेना। (४) सवेरे ९।। बजे किसी हरी सब्जीको पानीमें पकाकर उसका रस पीना। (५) १२।। बजे दिनमें उबली हुई हरी सब्जी खाना। (६) रातमें चिराग जलनेके बाद लगभग ७ बजे सब्जी और रोटी खाना। (७) भोजनके पहले भोजनका चतुर्थांश निकाल कर भगवानके नाते किसी जीवको खिला देना (अपने किसी जानवर, कुत्ता, बिल्ली, गाय आदि को नहीं)। (८) मंगलवारको व्रत रहना। (९) जो भी आमदनी हो उसका दसांश अलग कर भगवानके नाते बच्चों, किसी सार्वजनिक हितके काम या साधू-सन्तोंकी सेवामें व्यय करना। (१०) कम से कम महीनेमें एक बार सम्पर्क स्थापित करना अपने कार्यक्रम तथा अवस्थाका विवरण रखना और पत्र द्वारा सूचित करते रहना।

बस इतनी ही बातें हुईं। उसके बाद वहाँसे विदा लेकर अपने निवास स्थान पर आया। दूसरे दिन पूजाका आवश्यक सामान खरीद लाया और उसी दिन अपने घर गणेशपुरके लिये प्रस्थान किया। २० मार्चको प्रातः अपने घर पहुँचते ही पूज्य योगीजीके निर्देशके अनुसार कार्यक्रम बनाकर उसका पालन करने लगा। अपने भाईसे बता भी दिया कि जब इशारा करूँ तुरन्त एक बाल्टी पानी गरम करा दीजियेगा और उसके पहले एक लोटा गरम पानी एनिमा के लिये भिजवा दीजियेगा। और उसी दिन रातमें दौरा आ ही तो गया। गुनगुने पानीका एनिमा लिया। तब तक एक बाल्टी गरम पानी भी आ गया। बाल्टीमें दोनों

पैर डाल दिया और नौकरसे घुटनेसे नीचे धोनेको कहा और मैं स्वयं भगवान एवं उन्हींके रूप पूज्य योगीजीकी आराधना करने लगा। थोड़ी देर बाद यानी कुल १०, १५ मिनटमें दौरा बन्द हो गया और मैं सो गया। सच मानिये ऐसी सुखकी नींद जीवनमें कभी नहीं आयी थी। अब पूज्य योगीजीके प्रति मेरी आस्था चढ़ गयी। अब उनके दर्शनों हेतु हल्द्वानी, रामपुर, बरेली जाया करता हूँ तथा दर्शन करता, प्रवचन सुनता और अपनी साधनाकी बातें बता कर आगेके लिए आदेश प्राप्त करता हूँ। दमेका दौरा पड़नेकी अवधि बढ़ने लगी और उसका जोर भी कम होने लगा। करीब एक सप्ताहमें दौरा समाप्त हो गया और सुन्दरकाण्डके पाठकी समाप्ति यानी ५१वें दिन तो मैं अपनेको पूर्ण रूपसे स्वस्थ अनुभव करने लगा। दो माह बाद जब मैं पूज्य योगीजीसे बरेलीमें मिला तो मैंने उनसे कहा कि जाड़ेमें दौरा काफी होता है आप मुझे जाड़ा प्रारम्भ होनेके पहले ही निर्भीक बना दें। उन्होंने सप्ताहमें तीन दिन उपवास करने को कहा। मैंने उनकी आज्ञानुसार व्रत प्रारम्भ कर दिया। सप्ताहमें तीन दिन रविवार, सोमवार और मंगलवारको व्रत रहता हूँ। शेष चार दिन सुबह ७॥ बजे तुलसीका पत्ता और उसका पानी पीता हूँ। ९॥ बजे हरी सब्जीका रस, १२॥ बजे हरी सब्जीकी तरकारी और रातमें रोटी तरकारी या खिचड़ी खाता हूँ।

इस बार बरेलीसे आनेके बाद पहले रविवारसे ही व्रत प्रारम्भ कर दिया। तीसरे दिन यानी मंगलवारको मेरा हाथ, पैर और मुंह काफी सूज गया। मुझे काफी चिन्ता हुई। उसी दिन पूज्य योगीजीको पत्र द्वारा अपनी अवस्थाका ज्ञान कराया और उनके सह-साधक डा० चन्द्रदीप सिंह जी व श्री कुंवर प्रसादको भी उसकी सूचना दी। अपनेको मिलने वालोंसे छिपाये रखा। रोनेके सिवाय कोई दूसरा मार्ग दिखायी नहीं देता था। मैंने सुन

रखा था कि उम्र ढल जाने पर जब हाथ, पैर, मुंह सूज जाते हैं तो वह मनुष्यकी मृत्युका द्योतक होता है। अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरा अन्त निकट है। मेरे पत्रके उत्तरमें तीनों महानुभावोंके आश्वासन और उचित सलाह-भरे पत्र आये और मुझे काफी आत्मबल प्राप्त हुआ।

इस कष्टकी अवस्थामें अन्य तरफसे सहारा छोड़ कर भगवान और पूज्य योगीजीका स्मरण करने लगा। इसी स्थितिमें एक दिन रातमें अचानक नींद खुल गयी तो देखता क्या हूँ कि हाथ, पैर और मुंहकी सूजन समाप्त हो गयी है। विश्वास नहीं हुआ। ऐसा आभास हुआ जैसे स्वप्न देख रहा होऊँ। तुरन्त लालटेन जलवाया। सूजन समाप्त देखकर खुशीका ठिकाना नहीं रहा। व्रतके दूसरे सप्ताहमें कुछ इसी प्रकारका हुआ परन्तु इस बार सूजन कम थी और कष्ट भी कम हुआ। तीसरे सप्ताहके व्रतसे यह बिल्कुल समाप्त हो गया।

२० मार्च, ६४के पूर्व लगभग दो वर्षसे मैंने स्नान नहीं किया था परन्तु पूज्य योगीजीकी शरणमें आ जानेके बाद उसी दिनसे नित्य स्नान करता हूँ। नैनीताल जिलेकी ठंडकमें भी एक दिनका नागा नहीं हुआ।

१० वर्षसे दूध, दही, मट्ठा खानेको तरस रहा था। पर अब बारह बजे रातमें भी दूध, दही और मट्ठा खाकर आजमा लिया है। इनसे कोई नुकसान नहीं होता।

१० वर्षकी अवस्थासे ही दमा था। अब मेरी उम्र लगभग ५० वर्षकी है। अब मैं अपनेको पूर्ण रूपसे स्वस्थ अनुभव करता हूँ, यद्यपि शरीरसे अभी पूरा विकार नहीं निकल पाया है जैसा पूज्य योगीजी बताते हैं कि विकारका एक-एक स्तर क्रमशः निकलता जायगा। अब जीवनमें सुख ही सुख है। यह सब पूज्य योगीजीकी शरणमें जाने एवं उनके बताये मार्ग पर चलनेसे ही सम्भव हो सका है।

मेरी साधना और अनुभव

लेखक
पं० सूरज भान शाकल्य, बी० एस-सी०

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति—३०००

मूल्य—२५ पैसे

मानव की मौलिक माँगें : १. शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य।
२ इन्द्रियो में थकावट विहीन अखंडशक्ति।
३. मन में चिन्ता रहित अखड आनन्द।
४. बुद्धि में भय रहित अखड ज्ञान।
५ अहं में द्वैत रहित अखड प्रेम।

पंचस्तरीय विकार : १. शरीर में रोग
२. इन्द्रियों में कमजोरी
३. मन में शोक
४. बुद्धि में भय
५. अहं में वियोग

पंचविकारो के कारण : १ औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३ धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४ पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव में अपने नहीं है उनमें ममत्व

विकारो का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति।
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति।
५ सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखंड प्रेम की प्राप्ति।

प्रकाशक का निवेदन

पं० सूरजभान शाकल्य पूज्य योगी जी के साधकों में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। रामचरित मानस में जीवन को हर प्रकार से सुखी करने के जो आश्वासन दिये गये हैं, उन्हें वैज्ञानिक प्रविधि से अपने ऊपर प्रयोग कर इन्होंने उनकी सत्यता को दृढ़तापूर्वक प्रमाणित कर दिया है।

इनके प्रस्तुत अनुभवों में उन सूक्ष्म सैद्धान्तिक एवं प्राविधिक विवरणों तथा उनके आश्चर्यजनक परिणामों को प्रस्तुत करना न तो संभव है और न सबके लिए उपयोगी ही, क्योंकि यह विचारधारा तो संवाद द्वारा ही भली प्रकार समझी जा सकती है तथा व्यक्ति विशेष की शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक स्थिति के अनुसार उन सिद्धांतों के प्रयोग में भिन्नता भी होगी। फिर भी बहुत से साधकों ने इनसे प्रेरणा प्राप्त की है तथा लाभ उठाया है।

मुझे आशा है कि मानस-साधना मण्डल के इस प्रमुख साधक के अनुभवों से जनसाधारण मार्ग-दर्शन प्राप्त कर लाभ उठायेगा।

—कुबेर प्रसाद गुप्त

मेरी साधना और अनुभव

मेरा जन्म १७ जनवरी सन् १६२१ को एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में, पंजाब राज्य के एक ग्राम राठधना में, जो कि देहली से २८ मील की दूरी पर है, हुआ था। सन् १६४२ में पंजाब विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० (कृषि) की डिग्री प्राप्त करने पर अध्ययन काल समाप्त हुआ। फिर पंजाब सिंचाई विभाग में जिलेदारी के लिये ट्रेनिंग समाप्त होने पर सन् १६४४ में जिलेदार के पद पर नियुक्त हो गया। इस समय भी उसी पद पर कार्य कर रहा हूँ।

१ अप्रैल, १६५८। प्रातःकाल ७ बजे। स्थान करोलबाग, नयी दिल्ली का अजमल खाँ पार्क। मुझे बताया गया था कि वहाँ पर एक योगीजी का प्रवचन हो रहा है। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण जब वहाँ पहुँचा तो प्रवचन समाप्त हो चुका था। परन्तु कुछ लोग पूज्य योगी जी से, जो मेरी धारणा एवं कल्पना के विपरीत एक गृहस्थ के वेश में सफेद खादी के वस्त्र पहने थे, बातचीत कर रहे थे। मैं उत्सुकतावश यह वार्तालाप सुनने लगा। बातचीत का विषय ऐसा था जो मेरी अपनी विषम समस्याओं से सम्बन्ध रखता था और जिनसे मैं बहुत ही त्रस्त था। स्वाभाविक था कि मैं भी अपनी बात इनसे कहता और मैंने अपनी हालत उन्हें बतायी।

पंच तत्वों से निर्मित यह भौतिक शरीर भोजन के माध्यम से इन पाँच तत्वों को पाकर बढ़ता और विकसित होता है। शरीर के बढ़ने की आयु तक इनको जिस मात्रा में भोजन की आवश्यकता हो सकती है, शरीर का वृद्धि-काल समाप्त होने के बाद उतनी नहीं हो सकती। उसके बाद तो शारीरिक श्रम से होने वाली टूट-फूट की पूर्ति के ही लिए भोजन चाहिए। परन्तु २३ वर्ष की आयु में जिलेदारी के पद पर

नियुक्त होने के बाद से ही शरीर के वृद्धिकाल की समाप्ति के बाद भी इस भ्रम के कारण कि भोजन शक्ति प्रदान करता है और भगवान की दया से उसकी सुविधा होने के कारण अधिक मात्रा में और गरिष्ट-पौष्टिक पदार्थों के सेवन से शरीर दिन प्रतिदिन रुग्ण होता गया यद्यपि रोग के लक्षण काफी दिनों बाद ही प्रकट हो सके। इस समय जब उन दिनों की याद आती है, तो केवल उनके स्मरण मात्र से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। १ अप्रैल, १९५८ के पूर्व मेरी शारीरिक स्थिति इस प्रकार थी —

एलोपैथी चिकित्सा शास्त्र के मापदण्ड के अनुसार लम्बाई के अनुपात में शरीरका वजन था। देखने म शरीर काफी हृष्ट पुष्ट मालूम होता था, किन्तु भीतर से खोखला और बीमारियों से भरपूर था। गठिया के प्रकोप क कारण शरीर का अंग प्रत्यंग दर्द करता रहता था। बाद में चलना फिरना उठना बैठना भी कठिन हो गया। यहाँ तक कि कमीज और बनियाइन आदि भी पहनने और उतारने के लिये दूसरों का मुहताज हो गया। रोग के प्रारम्भ से ही इलाज चालू कर दिया था और हर प्रकार के इलाज (जिनमें अंग्रेजी, होमियोपैथी, वैद्यकी आदि शामिल हैं) करता रहा पर बीमारी बढ़ती ही गयी। कोई दवा शुरू मे कुछ दिन लाभ करती पर बाद म हालत उससे भी बुरी हो जाती और दवा काम नहीं करती थी। शरीर के कष्टों से इतना ऊब गया था कि जीवन एक बोझ-सा लगता था और पूज्य योगी जी के दर्शनों के पूर्व आत्महत्या कर इस दुख मय जीवन का अन्त करने के विचार दिन प्रति दिन जोर पकड़ते जा रहे थे। इसका कारण यह था कि मेरा विश्वास हो चला था कि अब शारीरिक स्थिति सुधर न सकेगी और जब तक में जिऊँगा इसी तरह कष्ट उठाता रहूँगा।

पूज्य योगी जी ने १ अप्रैल, ५८ को अजमल खॉ पार्क म मेरी संक्षिप्त बातचीत के बाद कहा कि आपका शरीर जकड़ गया प्रतीत [illegible]

स्नान ले लीजिये और साथ ही यह भी कहा कि रोहतक रोड पर डाक्टर सत्यपाल का चिकित्सा केन्द्र है, अगर आपको मेरे साथ चलना पसन्द हो तो मैं आपको वहाँ तक पहुँचा सकता हूँ। अपने शरीर की हालत को देखते हुए इस प्रेमपूर्ण सहायता से मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी ? उन्होंने मुझे अपनी साइकिल के पीछे कैरियर पर बैठाया और चल पड़े। रास्ते में इस सम्बन्ध में और भी बातें हुईं और इसी सिलसिले मे उन्होंने उपवास का महत्व भी बतलाया। हम लोग अब चिकित्सा केन्द्र पहुँच चुके थे। पूज्य योगी जी ने चिकित्सक से मेरा परिचय कराया और चले गये। चिकित्सक महोदय जिस समय वाष्प स्नान के लिये स्टीम तैयार कर रहे थे, मेरे दिमाग में उपवास करने का विचार आया और मैंने डाक्टर साहब से एनिमा देने की बात कही। एनिमा के बाद वाष्प स्नान लेकर मैं वहाँ से चला आया और उसी दिन से केवल जल पर उपवास प्रारम्भ कर दिया। दूसरे दिन २ अप्रैल को प्रातः मैं अजमल खाँ पार्क पहुँचा। पूज्य योगी जी का प्रवचन सुना और उसके बाद उनके साथ उनके निवास स्थान पर पहुँचा जिससे अपने सम्बन्ध मे विस्तार से बातें कर. सकूँ। उनके घर पर विस्तार से बातें हुईं। पूज्य योगी जी ने रामायण की विचारधारा समझायी और कहा कि मानव के समन्वित विकास के लिये उसके शरीर, मन और बुद्धि—प्रत्येक स्तर के विकारों को निकालना आवश्यक है और इसके लिये समय, शक्ति, भोजन और धन सम्बन्धी आय व्यय के चार्ट रखकर निश्चित प्रविधि (टेक्नीक) के अनुसार साधना अपनाने की बात कही। चार्ट लिखने के लिये उन्होने एक कापी भी दी और उपवास जारी रखने के मेरे निश्चय को सुनकर 'उपवास चिकित्सा' नामक एक पुस्तक भी पढ़ने को दी। उनसे विदा लेकर मैं फिर चिकित्सा केन्द्र पहुँचा। एनिमा तथा वाष्प स्नान लिया। केवल जल पर उपवास भी जारी रहा। ३ अप्रैल से मैं स्वयं एनिमा लेने लगा। एनिमा का पात्र तो १-४-५८ को ही खरीद चुका था और अब एनिमा लेने की विधि भी मालूम हो गयी थी।

यहाँ यह कहना अप्रासांगिक न होगा कि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में एनिमा के सम्बन्ध में जो पद्धति अपनायी जाती है उससे पूज्य योगी जी द्वारा बताया गया तरीका बिल्कुल भिन्न है। इस एनिमा में साधारण रूप से शौच जाने के लगभग एक घंटे बाद, लगभग एक पाव ठंडे (बिना गरम) पानी का एनिमा लिया जाता है। इस पानी में साबुन आदि कोई चीज नहीं मिलायी जाती। वास्तव में अन्य तरीकों से एनिमा लेने का उद्देश्य जहाँ आँतों से मल निकालना होता है वहाँ पूज्य योगी जी के तरीके से एनिमा लेने का उद्देश्य आँतों से मल निकालना नहीं बल्कि आँतों को इतना शक्तिशाली बना देना है कि अपना काम वे स्वयं कर सकें। इसीलिये इस प्रकार सालों और लगातार एनिमा लेने पर भी इसकी आदत नहीं पड़ती। मैं ३ ४ ५८ को फिर प्रवचन सुनने गया और चूँकि मेरी छुट्टियाँ समाप्त हो रही थीं, इसलिये प्रवचन के बाद पूज्य योगी जी से कुछ और निर्देश प्राप्त कर उनसे विदा ली। वहाँ से गाँव पहुँचने में मुझे लगभग २० मील रेल से और साढ़े चार मील पैदल यात्रा करनी पड़ी। केवल जल पर उपवास करने का तीसरा दिन था फिर भी घर वालों को बिना बताये मेरे इस उपवास का ज्ञान न हो सका। माता जी ने भोजन करने के लिये बहुत आग्रह किया परन्तु मैंने उन्हें समझा बुझाकर क्षमा माँग ली। उपवास के चौथे दिन मैं घर से दिल्ली वापस आया। इस दिन मुझे सात मील की पैदल यात्रा करनी पड़ी। पाँचवें दिन दिल्ली से सिरसा की १५० मील की यात्रा बस द्वारा की। बस से उतरते ही मुझे चक्कर आ गया और पैर लड़खड़ाने लगे। आधा घण्टा चारपाई पर लेटा रहा तब तबियत ठीक हुई। उपवास के छठवें दिन ६-४ ५८ को सिरसा से हिसार (प्रधान-कार्यालय) की यात्रा बिना किसी कष्ट के सम्पन्न हुई। हिसार से टोहना तक की ४४ मील की यात्रा बस द्वारा की। इस यात्रा में भी पिछले दिन की भाँति कुछ कष्ट हुआ परन्तु टोहना पहुँचने के थोड़ी देर बाद कष्ट जाता

केवल जल पर रहते हुए ७-४-६६ को जब मैं स्थानीय क्लब में शाम को जाकर बैडमिंटन खेलने लगा तो दो साथी, जो सरकारी डाक्टर थे, और जो १-४-४८ के पूर्व की मेरी शारीरिक स्थिति को भली प्रकार जानते ही नहीं थे बल्कि मेरा इलाज भी कर चुके थे, इस बात से हैरान थे कि जो व्यक्ति अभी दस दिन पहले तक अच्छी तरह चल फिर भी नहीं सकता था वह केवल जल पर उपवास करते हुए आज सातवें दिन बैडमिंटन कैसे खेल रहा है। इस आश्चर्यजनक घटना को वर्तमान चिकित्सा पद्धति समझने में असमर्थ थी और डाक्टरों ने अन्य साथियों से यह कहा भी कि 'यह आत्म-हत्या कर रहा है' :

उपवास के आठवें दिन भी मैं बैडमिंटन खेलने गया और बिना किसी कमज़ोरी अथवा कष्ट से आनन्दपूर्वक खेलता रहा।

इस प्रकार ६ दिन तक केवल हवा और जल पर रहा। केवल एक समय प्रात:काल एनिमा लेता रहा। इस बीच 'उपवास चिकित्सा' को देखता रहा उससे आत्मबल बना रहा। पूज्य योगी जी ने रामायण की साधना में दो बातों—संवाद और सम्पर्क पर बल दिया था। संवाद तो मैं दिल्ली में तीन दिन तक करता रहा पर साधन-काल में सम्पर्क न रख सका इसलिये ७-४-४८ को उन्हें पत्र लिखकर सब स्थिति बतायी। इस पत्र के उत्तर में पूज्य योगी जी का जो पत्र आया उसका आशय निम्न प्रकार था :—

'मेरा विचार है कि तुम्हें एक बार १० से अधिक दिनों का उपवास नहीं करना चाहिए। इस उपवास को तुम्हें अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। अच्छा हो कि तुम उपवास अभी तोड़ दो और कुछ दिनों तक केवल फल और सब्ज़ी पर रह कर उसकी प्रतिक्रिया का अध्ययन करो। कुछ दिन बाद तुम दूसरा उपवास कर सकते हो परंतु अभी इधर तो अधिक से अधिक दस दिनों के बाद तोड़ देना जरूरी है। उपवास तोड़ने के बाद कुछ दिनों तक अन्न मत ग्रहण करो [illegible] सब्ज़ी पर [illegible] फिर मुझे लिखना।"

पूज्य योगी जी के आदेशानुसार १०-४-५८ की दोपहर के बारह बजे एक गिलास संतरे के रस से उपवास तोड़ दिया। दस दिन केवल जल पर उपवास करने के कारण शरीर की स्थिति में जो क्रान्तिकारी लाभप्रद परिवर्तन आया था, लगभग दस दिन बाद ही वह लाभ लुप्त हो गया और मेरी दशा पुनः पहले जैसी हो गयी। बाद में जब मैंने पूज्य योगी जी से इसका कारण पूछा तो उन्होंने इसके दो मुख्य कारण बताये। पहला यह कि रामायण के सिद्धांत गूढ़ हैं उन्हें भली प्रकार से समझना आवश्यक है, एक तो यह कमी रह गयी थी। मल संचय के मूल कारण को मैं नहीं समझ पाया था अतः फिर विकार एकत्रित हो गया। दूसरा कारण उनका वह सिद्धांत है जिसमें उन्होंने कहा है कि 'जो घटे सो बटे' अर्थात् उपवास-काल में जो भोजन बचे उसे भगवान के नाते बांट देना चाहिए। मैं इस प्रविधि का भी पालन नहीं कर पाया था।

अस्तु, शरीर की वही दुखदायी स्थिति आ जाने पर मैं पुनः पूज्य योगी जी से मिलने के लिये व्याकुल हो उठा और बिना इस बात का ध्यान दिये कि वे हर माह लगभग ढाई तीन हज़ार मील की यात्रा करते रहते हैं, वे दिल्ली में होंगे भी या नहीं, २५-४-५८ की रात को दिल्ली के लिये रवाना हो गया। २६-४-५८ को दिल्ली उनके निवास स्थान पर पहुँचने पर मालूम हुआ कि वे दिल्ली से बाहर हैं तो बड़ी निराशा हुई। फिर भी मैं वाष्प स्नान के लिये डा० सत्य-पाल के चिकित्सा केन्द्र में चला गया। जिस समय स्टीम तैयार हो रही थी, बैठे-बैठे वहीं पर एक पुस्तक उठा कर देखने लगा। सौभाग्य से पुस्तक जिस पृष्ठ पर खुली, उस पर मेरे मतलब की बात लिखी मिली। उस पृष्ठ पर लिखा था कि गठिया की पुरानी बीमारी से छुटकारा पाने के लिये लम्बे समय तक अन्न का बिलकुल त्याग आवश्यक है। २७-४-५८ को एपसम साथ लेकर रात की गाड़ी से हेडक्वार्टर वापस आ गया। २८-४-५८ को अपनी सारी स्थिति

पत्र में लिखकर पूज्य योगी जी से मार्ग दर्शन माँगा। उसका जो उत्तर आया उसका आशय निम्न प्रकार है :

"तुम्हें प्रातः मुनक्के का रस, दिन मे मौसम के स्थानीय फल और रात को पकी हुई सब्जी लेनी चाहिए। सोते समय थोड़ा दूध भी ले सकते हो। जब बीमारी पुरानी हो तो उसके उन्मूलन के लिए केवल एक उपवास ही पर्याप्त नहीं होता। तुम्हें कुछ दिनों अपने भोजन से हर प्रकार के अन्न निकाल कर केवल फल और सब्जी ही ग्रहण करना चाहिए। नारंगी महँगी होगी अतः कुछ दिनों तक खीरा, ककड़ी, टमाटर आदि लो। पालक कच्ची खाने के स्थान पर पका कर खाओ। यदि फल उपलब्ध न हों तो सब्जी कच्ची (जो खाई जा सके) या पक्की लिया करो। कुछ दिनों के बाद एक सप्ताह का उपवास करना उचित होगा। उसके बाद कुछ अन्न ले सकते हो। पत्र द्वारा सम्पर्क रखो।"

यह पत्र मुझे २-५-५८ को मिला। इसने कुछ दिनों तक अन्न न खाने की उस बात की भी पुष्टि कर दी, जो मुझे दिल्ली के प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र में एक पुस्तक के खोलते ही पढने को मिली थी। पूज्य योगी जी के निर्देशानुसार मैंने अपने भोजन से अन्न निकाल दिया और पूरा मई का महीना अन्न रहित भोजन पर ही बीता। इससे हालत काफी सुधर गई।

३०-५-५८ को मैं पूज्य योगी से परामर्श करने पुनः दिल्ली पहुँचा और ३१ मई से ३ जून तक प्रतिदिन उनका प्रवचन सुनता तथा उनसे सम्वाद द्वारा मार्ग दर्शन प्राप्त करता रहा। फिर छुट्टी की समाप्ति पर अपने हेडक्वार्टर आ गया। इस बार के सम्वाद के पश्चात् ६-६-५८ को वेतन-प्राप्त होते ही उसका दसवाँ भाग भगवान के नाम पर निकाल कर अलग रख दिया। इस प्रकार १-४-५८ से शारीरिक तप की जो साधना शुरू हुई थी उसमें ६-६-५८ से सेवा की साधना भी जुड़ गई और उसका परिणाम यह हुआ कि इसके बाद जीवन में जो भी और जितना भी परिवर्तन आया, स्थायी रूप धारण करने लगा

यद्यपि मुझे अपनी साधना की प्रगति एवं परिणामों से संतोष नहीं था फिर भी पूज्य योगी जी ने, जो आगे, पीछे और वर्तमान सभी स्थितियों के पूर्ण द्रष्टा हैं, १४-६-५८ को इलाहाबाद से मुझे जो पत्र लिखा उस का आशय निम्न प्रकार है :

"मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि भगवान के नाते तुम्हें अपनी आमदनी का दसांश निकालने का बल प्राप्त हुआ है। इस धन को तुम्हें मेरे पास भेजने की अपेक्षा अपने विवेक के अनुसार स्वयं ही खर्च करना चाहिए था परन्तु चूँकि उसे तुमने मेरे पास भेज दिया है इसलिए मैं उसे, उस विचारधारा के प्रचार में लगाऊँगा, जिससे तुम्हारा कल्याण हुआ है। उपवास और दान में जिन लोगों की आस्था नहीं थी, उन्हें तुम्हारे इस प्रयोग से प्रेरणा और उत्साह मिला है। अब अगर तुम्हारा मन चिन्तामुक्त हो जाता है तो दूसरे भी तुम्हारा अनुकरण कर लाभ उठावेंगे।"

आय का दसवाँ भाग भगवान के नाम पर निकालने तथा उसके उचित उपयोग के परिणाम स्वरूप जो अनुभव हुए उनका विस्तृत विवरण तो मुझे स्मरण नहीं है परन्तु इस सम्बन्ध में मैंने पूज्य योगी जी को १८-६-५८ को जो पत्र लिखा था और उसके उत्तर में उनका दिल्ली से २७-६-५८ का जो पत्र आया उससे उसका कुछ संकेत मिल सकता है, जिसका आशय निम्न प्रकार है :

"तुम्हारे १८-६-५८ के प्रेमपूर्ण पत्र के लिए, जो मुझे यात्रा से वापस आने पर मिला, धन्यवाद। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुम क्रमशः चितामुक्त हो रहे हो। यह एक ऐसी उपलब्धि है, जिसकी प्राप्ति का दावा प्रायः धनी से धनी व्यक्ति भी नहीं कर सकते। वास्तव में इस साधना के अनुसार शरीर भोजन से और मन परिस्थिति से स्वतंत्र हो जाना चाहिए। ये दोनों अवस्थायें उपवास और दान द्वारा सम्भव हैं। अतः तुम्हारी उपलब्धियाँ ठीक प्रविधि द्वारा की गई साधना का स्वाभाविक परिणाम हैं। दसांश का धन किस ... व्यय करना चाहिए इस सम्बन्ध में मिलने पर विस्तार से बातें

होगी। सम्प्रति मैंने कुछ किताबें, पत्रिकाएं आदि खरीद ली हैं और कुछ अन्य पत्रिकाएं मँगाना चाहता हूँ।"

पूज्य योगी जी के लखनऊ से २८-७-५८ को लिखे गये पत्र को पढ़ कर यद्यपि कुछ मित्रों ने मेरे प्रति कुछ प्रशंसात्मक भावनायें व्यक्त की हैं परन्तु उससे मैं संकुचित ही हुआ हूँ फिर भी उसका आशय इस लिए उद्धृत कर रहा हूँ कि उसे मैंने अपने आदर्श के रूप में अपना लिया है और उस स्थिति पर पहुचने के लिए सतत् प्रयत्नशील हूँ।

जुलाई के मध्य में अपनी स्थिति का विवरण प्रस्तुत करते हुए मैंने पूज्य योगी जी को लिखा था कि यद्यपि मेरे पिता जी ने मेरा नाम सूरज भान रखा था परन्तु सच पूछिए तो अब तक मैं स्वयं अंधकार में ही विचर रहा था परन्तु रामायण की साधना और आपकी कृपा से अब मुझे प्रकाश की किरण मिली है। इसके उत्तर में पूज्य योगी जी ने लिखा था :

"प्रिय प्रकाश,

चूँकि तुम अँधेरे से प्रकाश में आ गये हो, इसलिए भविष्य में मैं तुम्हें 'प्रकाश' कहकर सम्बोधित करूँगा और हमारे निकटवर्ती सभी मित्र अब तुम्हें इसी नाम से पुकारेंगे। तुम्हारे अन्तिम पत्र से, जो दिल्ली से चलते समय प्राप्त हुआ था, मुझे काफी प्रोत्साहन मिला है और जिन-जिन लोगों को उसे सुनाया गया, उनके लिए भी वह प्रकाश स्तम्भ के समान मार्ग दर्शक साबित हुआ है। कुछ लोगों का विचार है कि इसे प्रकाशित करना चाहिए।"

तप और सेवा की साधना को मैं जिस अंश में अपनाता जा रहा हूँ, उसी अनुपात में शरीर रोग रहित और मन चिंता रहित होता जा रहा है। फिर भी रामायण की साधना के तीसरे अंग "सुमिरन" के विषय में अपनी बातें प्रस्तुत करना शेष है और इसी कारण 'सुमिरन' से होने वाली बुद्धि की निर्मलता और अहंकार के विनाश की प्रक्रिया ... भी ... नहीं हो पाई थी।

मुझे अपनी ईमानदारी और प्रखर बुद्धि का बड़ा अभिमान था और इस विकार को निकालने की जो प्रक्रिया भगवान ने अपनायी उसमें भगवान के निम्न आश्वासन प्रत्यक्ष प्रतिफलित होते दिखायी दिये :

"करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उपारी। पन हमार सेवक हितकारी॥"
"मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥"

और तदनुसार एक बार जब पंजाब प्रान्त के सिंचाई तथा विद्युत मंत्री जी ने एक सार्वजनिक सभा में मेरे प्रति 'चरित्र भ्रष्ट और बेईमान' शब्दों का प्रयोग किया, तब मैं इसे बर्दाश्त न कर सका और उद्दण्ड व्यवहार कर बैठा। उसका परिणाम हुआ मुअत्तली और नौकरी से निकाल दिये जाने की धमकी। मुअत्तली-काल पूरे दस महीने तक रहा और इस अवधि में मुझे जो भत्ता मिलता रहा वह मेरे खर्च के लिए अपर्याप्त होने के कारण मुझे अपनी पूर्व संचित धन-राशि में से धन निकालकर आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ी। यहाँ यह निवेदन कर दूँ कि सेवा के साधन में मैं अभी तक केवल मासिक आय का ही दसवाँ भाग भगवान के नाम पर निकाल रहा था, पूर्व संचित कोष से दसवाँ भाग नहीं निकाल सका था। इस प्रकार भगवान ने हमें उस संचित धन के दसवें भाग को भी निकालने पर विवश कर मेरी इस साधना की कमी की पूर्ति तो की ही मेरे अहंकार को दूर कर मेरी एक बहुत कठिन साधना को बहुत ही सरल कर दिया। इस मुअत्तली का मेरे या मेरी पत्नी के ऊपर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा और पूज्य योगी जी की कृपा से मुझे अकारण मुअत्तल करने वाले मंत्री के प्रति भी किसी प्रकार के विद्वेष की भावना नहीं आने पायी, यद्यपि बाद में मुझे एक छोटी-सी घटना से यह पता चला कि विद्वेष की भावना चेतना के स्तर पर भले ही न रही हो पर वह अन्तर्मन में अवश्य थी। वह घटना इस प्रकार है: मुअत्तली से ...ल होने के कुछ ही दिनों बाद तत्कालीन मुख्य मंत्री सरदार

प्रताप सिंह कैरों ने जब उक्त मंत्री महोदय को बरखास्त कर दिया तो मैंने थोड़ी सी प्रसन्नता का अनुभव किया कि उनको मेरे प्रति किये गये अन्याय का प्रतिफल मिला। परन्तु मुझे अपनी यह कमी तुरत ही महसूस हुई और इसके लिए मुझे पश्चाताप भी हुआ।

इस मुअत्तली का एक और लाभ मिला। इस बीच पूज्य योगी जी का अधिकाधिक सम्पर्क प्राप्त हुआ जिससे रामायण के सिद्धांत और उनके प्रयोग की बारीकियों को समझने का यथेष्ठ सुयोग मिला।

मुअत्तली से बहाली के बाद तप और सेवा के साथ-साथ सुमिरन की साधना भी प्रारम्भ हो गयी और इसका परिणाम यह हुआ कि जीवन परिवर्तन की गति कुछ तेज हुई। अब मेरी समझ मे आया कि क्यों पूज्य योगी जी तप, सेवा और सुमिरन तीनों साधनाओं को साथ-साथ अपनाने पर विशेष बल देते हैं और शरीर या मन या बुद्धि के अलग-अलग विकास की बात न कर मनुष्य के समन्वित विकास पर बल देते हैं। अब शरीर, मन और बुद्धि के मामूली दोष भी दिखायी देने लगे और दुखदायी भी प्रतीत होने लगे तथा उनके निवारण का यत्न भी तेजी से होने लगा। एक छोटी-सी घटना द्वारा इसे और स्पष्ट करना चाहूँगा :

मैं २-१२-६३ को दिल्ली मे पूज्य योगी जी का प्रवचन सुनने गया था। उस दिन शाम को खारी बावली से मेवा लाने का काम, पूज्य योगी जी से प्रार्थना कर मैंने अपने ऊपर ले लिया था। इस कार्य तथा अन्य कई कार्यों को करने के बाद पूज्य योगी जी के यहाँ से मैं अपने घर रात को ११।२० बजे पहुँचा और घर वालो से थोड़ी देर बात करने के बाद लगभग १२/३० बजे सोने गया। ३-१२-६३ को प्रातः शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर जब पूज्य योगी जी के निवास पर गया तो वे नित्यकर्म तथा दैनिक पूजा आदि से निवृत्त होकर बेचैनी से मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे पहुँचते ही उन्होंने कहा : 'यह तुम्हारे [illegible] नाम है। रात मेरे देर से [illegible] और देर से उनके घर

पहुँचने को लक्ष्य कर कही गयी थी यद्यपि भाषा और स्वर बहुत ही मृदु और स्नेह सिक्त थे। यह बात मुझे उसी वक्त खटक गयी और मैंने अनुभव किया कि अभी शरीर की स्थिति में सुधार की आवश्यकता है और मैंने उसी दिन एक लम्बे उपवास का निश्चय कर लिया। य. उपवास एक महीने तक चला जिसमें मैंने सादे जल के सिवा कुछ भी ग्रहण नहीं किया। यद्यपि सिद्धान्ततः मैं यह जानता था कि 'यदि उपवास-काल में जल में थोड़ी-सी शहद और नींबू का रस मिला कर लिया जाय तो शरीर के विकार निकालने का काम अधिक सुचारु रूप से होता है फिर भी चूँ कि पूज्य योगी जी के प्रवचन में मैं यह कई बार सुन चुका था कि जब भोजन से जीवनी शक्ति का सम्बन्ध टूट जाता है तभी भगवान की शक्ति का जागरण होता है इसलिये शरीर से विकार निकालने की बात गौण पड़ गयी और भगवान् की शक्ति के जागरण की बात प्रमुखता प्राप्त कर गयी और यह उपवास केवल सादे जल पर ही किया गया। इस उपवास-काल में मुझे एक दिन की भी छुट्टी नहीं लेनी पड़ी विपरीत इसके शक्ति का जो अखंड प्रवाह हुआ उसका वर्णन करना असम्भव है। थोड़े मे यही कह सकता हूँ कि मैं अपने सभी काम,जिसमें कार्यालय का तथा बाहर की ड्यूटी का कार्य है सफलता और सरलतापूर्वक करता रहा जिसमें प्रायः प्रतिदिन ८।१० मील साईकिल चलाना तथा २/४ मील पैदल चलना भी था। इस काल में मेरी कार्यक्षमता मे जो आशातीत वृद्धि हुई थी उसके प्रमाण मेरे वे अधिकारी एवं कर्मचारी हैं, जिनके साथ इस अवधि में मैंने काम किया।

इस प्रयोग के बाद से मेरी परिवर्तित धारणा और मान्यता में अटूट विश्वास पैदा हो गया और यह धारणा और मान्यता जन साधारण की धारणा एवं मान्यता के शत प्रति शत उलटी है। जहाँ जन साधारण यह समझता है कि भोजन से जीवनी शक्ति प्राप्त होती है, पैसा और सामान सुख प्रदान करता है और पुस्तकें पढ़ने से ज्ञान की प्राप्ति होती है वहाँ मेरी यह केवल बद्धमूल धारणा और मान्यता

ही नहीं है वल्कि बहुत कुछ अनुभव मे भी आ चुका है कि भोजन शरीर का निर्माण करने वाला तत्त्व है वह जीवनी शक्ति नहीं देता। क्योंकि अपने उपवास में मैंने देखा कि भोजन न देने से शरीर की टूट-फूट की पूर्ति न होने से मेरा वजन २ मन १० सेर के वजाय केवल १ मन २० सेर ही रह गया किन्तु जीवनी शक्ति मे, विकार के निकल जाने से काफी वृद्धि हो गई। मैं साधना प्रारम्भ होने के दिन से ही केवल एक समय ही अन्न का भोजन करता हूँ और वह भी दिन भर के कामों से मुक्त हो जाने के वाद, सायंकाल मे। धन और उससे खरीदा जाने वाला सामान सुख नहीं दे सकता क्योंकि ससार मे ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो आर्थिक दृष्टि से काफी समर्थ होते हुए भी सुखी नहीं हैं, चिताग्रस्त रहते हैं और मैं अपनी आय का दसवाँ भाग भगवान की सेवा मे अर्पित कर देने के वाद भी भगवत् एवं पूज्य योगी जी की कृपा से सब प्रकार से सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मेरे जीवन मे किसी प्रकार की चिंता का लेश नहीं है। इसी प्रकार यद्यपि सुमिरन की साधना मे यथेष्ट प्रगति नहीं हो पाई है फिर भी मेरा किंचित अनुभव यह वताता है और इसमे मेरा अटूट विश्वास भी है कि भय मुक्ति का अथवा ज्ञान का साधन भगवान का सुमिरन ही है। सुमिरन की साधना में पिछड़ा होने के कारण अभी मान अपमान के दश से मुक्ति तो नहीं मिल पाई है पर इतना दृढ़ विश्वास है कि जिस अकारण करुण की कृपा से शरीर और मन के स्तरों पर विकास हुआ है उन्हीं सद्गुरु की कृपा से इस साधना मे भी आगे वढ़ने और सफलता प्राप्त करने का वल प्राप्त होगा और सफलता मिलेगी ही।

इस विवरण को प्रस्तुत कर अपनी साधना के पुनरावलोकन का तथा अपनी गलतियों को छानवीन कर उन्हें दूर करने के लिये अधिक सचेष्ट होने का जो यह सुअवसर दिया गया है उसके मानस साधना मडल का मैं कृतज्ञ हूँ और साधना में प्रगति कारण सद्गुरु कृपा और कमियों का कारण अपने

यानी 'गुन तुम्हार समुझहिं निज दोषा' की भावना से अन्तरतम ओतप्रोत मैं इस विवरण को समाप्त करता हूँ।

—पं० सूरज भान शाकल्य
बी० एस-सी०

(१) मकान नं० ४४२, वार्ड नं० ७
कैथल जिला करनाल (पंजाब)

(२) मकान नं० १६/५८०६
ब्लाक नं० ४, देव नगर, करोल बाग, नई दिल्ली-५

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मंडल, १-१२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित तथा भारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

—:(०):—

उद्देश्य :—

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञान-युक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियो एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट है।

—[०]—

अध्यक्ष

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम. बी० बी० एस०

प्रधान कार्यालय
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

दमा से मुक्ति

रामचरित मानसके वैज्ञानिक अध्ययन एव मेरे तथा मेरे मित्रोंके प्रयोगोंसे मेरी इस मान्यताकी पुष्टि हुई है कि इस ग्रन्थमें प्रतिपादित दर्शन कोरी कल्पनाकी वस्तु नहीं वल्कि पूर्ण तया व्यावहारिक है। यह अपने उन पाठकों और श्रोताओंके जीवनमे आमूल परिवर्तन लाने मे सक्षम है, जो इसका सिद्धात समभकर उसका सही प्रयोग करेंगे। मेरे वहुतसे मित्रों और सत्-साधकोंने रामचरित मानसमे निर्दिष्ट पचसूत्री साधन प्रणाली के अनुसार जो वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं, उनसे पता चलता है कि साम्प्रतिक मापदडके अनुसार इस साधनासे उन्हें आश्चर्य-जनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। उनके शरीर विना औषधोपचारके ही सभी प्रकारके रोगोंसे, जिनमें डायवटीज, अथराईटीस, दमा, गठिया, टी० वी० आदि असाध्य कहे जाने वाले रोग भी हैं, मुक्त हो गये हैं। इस पुस्तिकामे दमाके ऊपर मानसके सिद्धान्तोंका प्रयोग एव उनके परिणाम प्रस्तुत किये गये हैं। परन्तु व्यक्ति विशेषकी स्थितियोंमें भिन्नता होने के कारण इन-का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए।

इन प्रयोगोंसे जिनके परिणाम रामचरित मानसके त्रिताप नाशके दावोंकी पुष्टि करते हैं, जो वैदिक सिद्धान्तोंकी पुष्ट-

भूमि पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगोंकी प्रविधि (टेक्नीक) की मोटी-मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं तथा जन साधारणकी अनुभूतियोंके मुकाबले आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत करते हैं. 'मानस-साधना मंडल' समाजके सामने इस दृष्टिसे प्रस्तुत कर रहा है जिससे इस प्रकार के परिणामोंकी अभिलाषा रखनेवाले ग्रहणशील व्यक्ति इस ओर उन्मुख हों, रामचरित मानस के सिद्धान्तोंको समझने और उनकी प्रविधिके अनुसार प्रयोग करने के लिये सचेष्ट हों और वाह्य अभाव एवं आन्तरिक अशांति मिटा कर आनन्दमय जीवनका उपभोग कर सकें।

(१)

(डा० सीताराम गुप्त, ग्राम-पोस्ट इहौं,विहरा, बलिया)

२३ सितम्बर सन् १९६२ ई० का वह दिन मुझे भूला नहीं है, जब दमाके प्रचण्ड प्रकोपने वस्तुतः मेरे जीवनको अवसानके समीप ला दिया था। सारी औषधियाँ उसका दमन करनेमें विफल हो चुकी थीं। मेरे सगे संबंधी, मित्र, पड़ोसी तथा गाँवके सभी शुभचिंतक मुझे घेरे खड़े थे। संभवतः वे मुझे मृत्युशय्या पर ही देख रहे थे और मेरे जीवनकी अन्तिम घड़ियोंको बड़े व्यथित हृदयसे गिन रहे थे। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो सबके सब बड़ी निराशा भरी नजरोंसे मेरी ओर निहार रहे थे। दमाके वेगने मुझे बोलनेसे भी मजबूर कर रखा था। इतनेमें किसीने मुझे सुझाव दिया कि नवानगर सरकारी अस्पतालमें कोई नये डाक्टर आए हैं। उन्हें भी दिखा दिया जाय। मौसम इतना खराब था कि घरसे बाहर निकलना मुश्किल था। उस पर हमारा गाँव बाढ़के पानीसे चारों ओरसे घिर गया था। गाँवमें आने-जानेके लिए केवल एक छोटी-सी नाव थी। जो हवाके हल्के झोंके पर भी डगमगा जाती थी। ऐसे खराब मौसममें रात्रिके समय नव.नगर अस्पतालसे इतने बीहड़ रास्तेको पैदल तय करके बिना किसी

सवारीके नवागन्तुक डाक्टर साहब मुझे देखने आ सकेंगे, ऐसी आशा किसीको नहीं थी। परन्तु सब लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा जब मुझ गरीब दुखियाकी करुण पुकार पर डा० चन्द्रदीप सिंह मेरी प्राण-रक्षा हेतु दौड़ पड़े। भयकर तूफान, पानी और कीचड़को पार करते हुए उस रात आदरणीय डाक्टर साहब मेरे यहाँ पधारे। अपने फुलपैन्टको जघों तक चढाए, जिस अजनबी किन्तु महान आत्माको मेरी सजल आँखोंने पहले पहल देखा और जो सुख मुझे प्राप्त हुआ वह अनिर्वचनीय है। इस कर्मठ समाज-सेवीके कठिन परिश्रमका अनुमान लगाकर मेरी आँखें क्षण भरके लिए छलछला आयीं किन्तु उसी क्षण मुझे रोगने बेसुध कर दिया। बलगमके कारण मेरी श्वास-क्रिया बन्द होने लगी थी—पानी तक अन्दर नहीं जाने पाता था।

उन्होंने आते ही मुझे एक इजेक्शन दिया और मुझे पाँच मिनटमें ही रोगसे अवकाश-सा मिल गया और मैं उनसे कुछ बात करने की स्थितिमें हो गया। डाक्टर साहबने मुझसे कहा कि आप घबडायें नहीं। जब तक आप नहीं कहेंगे, तब तक मैं आपको छोड़कर नही जाऊँगा। इन शब्दोंसे मुझे काफी साहस और सतोष मिला। इजेक्शनके लगते ही मुझे बहुत आराम मिला—मेरी सास ठीक चलने लगी और मैं आसानीसे बोलने भी लगा। अतः मैंने उनसे कहा कि अब मैं ठीक हालतमे हूँ आप जा सकते हैं। रात काफी हो चुकी थी, पर डाक्टर साहब उसी समय अपने अस्पताल पर लौट गए।

उसके बाद करीब छै माह तक विधिवत् अग्रेजी दवा होती रही, पर मेरा रोग समूल नष्ट नहीं हुआ। कुछ दिनोंके लिए दब जाता था, पर फिर उभड आता था। एक दिन डाक्टर साहबने कहा कि यदि आप मेरे यहाँ ठहर कर इलाज करा सकें तो बडा अच्छा हो। ऐसा करनेसे मुझे आपके रोगका अध्ययन

करने तथा उचित उपचार करनेका पूरा अवसर प्राप्त हो सकेगा। अत मैं डाक्टर साहबके यहाँ टिक गया।

अपने सरकारी निवासके पास ही डाक्टर साहबकी फूसकी भोपड़ी थी। यह पर्ण कुटीर इस इलाकेमें आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। आश्रममें ही डाक्टर साहबने अपने आसनके बगलमें मेरी चारपाई लगवा दी और अपने ही घरमें मेरे भोजन आदि की व्यवस्था कर दी। एक सप्ताह तक उन्होंने मेरे रोग-का भाँति-भाँति परीक्षण किया और फिर कहा—'आपका यह दमा औषधिसे केवल दब ही सकेगा, समूल नष्ट नहीं होगा, और वह भी कितने दिनोंके लिए दबा रहेगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। परन्तु आप निराश न हों। भगवानकी दयासे शरीरका रोग मुक्त करने तथा मानव जीवनको हर तरह सुखमय बनाने का साधन भी श्रद्धेय योगाजीके सत्सग द्वारा मुझे मालूम है। डाक्टर होनेके साथ मैं रामायणका एक विद्यार्थी भी हूँ। तुलसीदासके श्री रामचरित मानसको मैं जीवनका सार्वभौम-ग्रन्थ मानता हूँ और श्रद्धेय योगीजी (श्री हृदय नारायण जी) के सरक्षणमें उसके जीवनोपयोगी पक्षका अध्ययन करता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि मानसके मूल सिद्धान्तोंको भली-भाँति समझकर तथा उनके अनुसार अपने जीवनमें आचरण करके मनुष्य केवल रोगसे ही छुटकारा नहीं पा सकता वरन् वह चिन्ता-मुक्त और भयमुक्त भी हो सकता है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि मनुष्यके अन्दर अटल विश्वास हो, अदम्य साहस हो और अपूर्व धैर्य हो।

इन बातोंको सुनकर मैं कुछ देरके लिए चेतना शून्य हो गया। मेरा रोग औषधिसे समूल नष्ट नहीं हो सकेगा, यह सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मैं सोचने लगा कि क्या मैं आजीवन रोगी ही रहूँगा। ऐसी हालतमें मेरे बच्चोंका क्या होगा ? परिवारका भरण

पोषण कैसे होगा ? फिर ऐसे दुखी जीवनसे लाभ ही क्या ? मुझे चारो ओर अंधेरा ही अंधेरा दीखने लगा। लगातार छः महीनेसे रोग-शैय्या पर पड़े रहनेके कारण मेरी आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ चुकी थी और हमारे मित्रों और शुभचिन्तकोंकी संख्या अब नगण्य हो चली थी। ऐसी अवस्थामें केवल भगवानका ही सहारा शेष रह गया था।

जीवनकी रक्षाका कोई दूसरा उपाय न देखकर मैंने संत डाक्टर साहबसे कहा कि मैं अब आपकी शरण आया हूँ। आप जिस तरह चाहें मेरे प्राणोंकी रक्षा करें। मैं सब कुछ करनेको तैयार हूँ। डाक्टर साहबने कहा कि करने की बात तो बाद में है। सबसे पहले तो आपको जानना है कि आप रोगी क्यों हैं और फिर यह समझना है कि नीरोग होने का साधन क्या है। यह समझ लेनेके बाद ही कुछ करनेका प्रश्न उठता है। अतः मेरे अनुरोध पर उन्होंने मानसके मूल सिद्धान्तोंको मुझे समझाना शुरू किया। मैंने उसी दिनसे औषधियोंका सेवन बन्द कर दिया और जीवनमे फिर कभी किसी प्रकारकी औषधि न खाने की प्रतीज्ञा अपने मनमें कर ली। संत जी (डाक्टर साहब) नित्य मुझे तरह-तरहसे मानसके वैज्ञानिक विवेचनको समझाने लगे। बीच-बीचमें श्रद्धेय योगीजी तथा उनके जीवनोपयोगी सूत्रों "कसो और ढीला करो", "घटाओ और बदलो", "भूलो और बांटो" की भी बड़ी जोरदार चर्चा करते रहे। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि श्रमके बाद भोजन और भोजनके बाद विश्राम करना चाहिए तथा उत्पादनके बाद वितरण और वितरणके पश्चात् उपयोगकी बात सोचनी चाहिए। वे मुझे बराबर यही उपदेश देते थे कि मानवके लिए चिन्तन, सेवा औरउपवास आवश्यक है। साथ ही मुझे उन्होंने यह भी बताया कि किस तरह उन्हें श्रद्धेय योगीजीके दर्शन हुए और फिर उनके सत्संगसे

उनका जीवन किस तरह बदल गया। इन सब बातोंको सुनकर मेरे हृदयमें श्रद्धेय योगीजीके दर्शनकी उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई और मैंने डाक्टर साहबसे आग्रह किया कि वे मुझे भी श्रद्धेय योगीजीके दर्शन करानेका कष्ट करें।

मेरे इस निवेदन पर उन्होंने ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप १६ अप्रैल सन् १९६३ ई० को नवानगर आश्रम पर ही परमपूज्य योगीजीने आकर मुझे दर्शन देने की कृपा की। डाक्टर साहबके उपयोगी उपदेश तथा श्रद्धेय योगीजीके प्रभावशाली प्रवचनने मेरे शरीरमें नई जान डाल दी और मेरे जीवनकी धारा ही मोड़ दी। उसी समयसे मैंने दिनके भोजनका परित्याग कर दिया। दिनमें प्रायः गाजर, टमाटर, पालक या लौकीका रस ले लेता था। थोड़ा सा साग और फल खा लेता था और रातमें ही एक बार सादा किन्तु सात्विक आहारका नियम बना लिया था। प्रातः उठते ही एक कम्बल पर बैठकर भगवानका चिंतन किया करता और सूर्योदयसे पहले एक मील टहलने जाता था। भोजनमें घटे अन्नको भगवानके नाते निस्वार्थ भावसे वितरित किया करता था। रातके भोजनका चतुर्थांश निकाल कर किसी प्राणीको, जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं होता, खिला देता था।

अब यही हमारी दिनचर्या हो गयी है। इसी उपचारसे मेरा रोग नष्ट हो गया है और मैंने किसी प्रकारकी औषधि या तंत्र-मंत्रका सहारा नहीं लिया। मैं अब केवल जिन्दा ही नहीं हूँ बल्कि मेरे जीवनमें पुनः बसंतागमन हो गया है। मैं अपनेमें नया जीवन, नई चेतना और नई शक्तिका अनुभव कर रहा हूँ। अब मेरे शरीरसे रोग, मनसे चिंता, बुद्धिसे भय भगवानकी दयासे मिटते चले जा रहे हैं और मुझे किसी प्रकारकी कोई तकलीफ महसूस नहीं होती। साथ ही मेरी आमदनी भी पहलेसे अधिक होने लगी है। परमपूज्य योगीजीकी दया तथा श्रद्धेय डाक्टर

चन्द्रदीप सिंहके सत्संगसे ही मैं मानसकी जीवन उपयोगी साधनाको कुछ समझ पाया हूँ और उन्हें हृदयंगम करके अपने जीवनमें सफल प्रयोग करने का ही परिणाम है कि दमा जैसे असाधारण रोगसे मुझे मुक्ति मिली है और मुझमें नये जीवनका संचार हुआ है।

(२)

(श्रीमती श्यामा रानी ८।१० बे० ए० एरिया, करोलबाग, नई दिल्ली—५)

जब मेरा विवाह हुआ था तो मेरा शरीर देखनेमें बहुत स्वस्थ था परन्तु भीतर मलभार था, जिसे मैं जान ही न पाती थी। पतिदेव (पूज्य योगीजी) की बात सुनकर कि शरीरको उपवास द्वारा मल-रहित करो, हैरानी होती थी। कुछ दिनों बाद मैं जुकाम-खाँसीसे पीड़ित हुई। उसके निवारणार्थ मैंने जो औषधि सेवन की, उससे मुझे भयंकर दमा हो गया। चौदह वर्ष तक इस भयानक रोगसे पीड़ित रही। जाड़ा, गर्मी, वर्षा किसी ऋतुमें भी चैन नहीं था। जीवनसे मृत्यु अधिक सुखद प्रतीत होने लगी, क्योंकि किसी समय जब दौरा हो जाता था, साँस रुकने लगती थी। उस समय मैं लखनऊमें थी। वहाँके एक प्रतिष्ठित चिकित्सकने कहा "दमा दमके साथ जाता है औषधिसे थोड़ी देरके लिए भले ही कुछ आराम हो जाय।"

मैंने पतिदेवके जीवनमें विवाहके दिनसे ही कठोर तपकी रूप-रेखा देख रक्खी थी। अतः वही मार्ग अपनाने का निश्चय किया। ६ महीनेके लिए अनाज, नमक, चीनी, दूध आदि सब छोड़ दिया। दिनमें पालक, गाजर, टमाटर आदि कच्ची सब्जियाँ और संध्याको बिना नमककी पकी सब्जी खाना आरम्भ किया। ६ महीने यही नियम चलाया। फल यह हुआ कि जो दमा दमके साथ जाने वाला था, वह सदाके लिये विदा हो गया और आज २० सालसे भी अधिक हो गये, मुझे एक भी दौरा नहीं

मे तो भूल ही गई हूँ कि कभी मुझे दमा था और अब रात्रिमें भी दही, मूली, अमरूद खीरा आदि खानेमे डर नहीं लगता। कोई परहेज करने की आवश्यकता नहीं रही।

(३)

(श्री गणेशदत्त मिश्र, ग्राम-गणेशपुर, पो०-नरायनपुर, जिला-नैनीताल)

जब मैं लगभग दस वर्षका था तभीसे मुझे दमेकी शिकायत हो गयी थी। प्रारम्भमें ओझा-सोखा द्वारा झाड़ फूंकके रूपमें उपचार हुआ। जैसे-जैसे उम्र बढने लगी, वैसे-वैसे बीमारी भी जोर पकड़ने लगी। बादमें देहाती दवा भी होने लगी। पर कोई फायदा नहीं हुआ। जब मैं लगभग १५ वर्षका हुआ तबसे (बलिया) शहरमे रहने लगा। वहा पर टेलरिंगका काम करने लगा। साथमें होटल भी खोल रखा था। एक होटलका नाम गणेश राष्ट्रीय भोजनालय तथा दूसरेका प्रेम भोजनालय था। इन सब कामोंसे जो आमदनी होती थी, उसका व्यय तीन प्रकार से होता था। पहला सार्वजनिक सेवामे यानी बच्चोंकी शिक्षा, गरीबोंके इलाज तथा राजनीतिक पार्टियोंको चन्दा देने, परिवारके सदस्यो पर तथा तीसरा अपनी इस दुष्ट दमे की बीमारीमे।

ओझा-सोखाकी झाड-फूक और देहाती दवासे लाभ होता न देखकर शहरमे एलोपैथी इलाज कराना प्रारम्भ किया। बलियामें डा० राम दयाल सिंहजी मेरा इलाज करते रहे। हम इनके व्यवहार व उपकारको नहीं भूल सकते। इन्होंने अपने परिवारके एक सदस्य की भाँति मेरा इलाज और देखभाल की। परन्तु शायद एलोपैथीके पास इस बीमारीका इलाज न था और वे भी इस दुष्ट दमाको मुझसे अलग न कर सके। दौरा पड़ते पर मैं कष्टसे रोता था और डाक्टर साहब देखते रहते थे।

सन् १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रहमें मैं जेल गया। जेलमें बनारसमें रहा। वहाँके डाक्टरोंने भी इस बीमारीसे शक्ति भर युद्ध किया परन्तु उन्हें भी हार माननी पड़ी। बीमारी पर उनकी दवाका कोई लाभकर प्रभाव नहीं पडा।

सन् १९५१ से ग्राम गणेशपुर पो० नरायनपुर जिला नैनीतालमें रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद बीमारी धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करने लगी। उन दिनों डा० शिव शंकर मिश्र, फैजाबादमें थे। मैं सन् १९५७ में उनके पास फैजाबाद गया और उनकी देखरेख में दवा होने लगी। इन दिनों मेरी शारीरिक दशा ठीक नहीं थी। दिल का धड़कना, बेहोशी और दमेका दौरा पड़ता रहता था। मैं फैजाबादमें भी डेढ़ माह इलाज कराकर और निराश होकर वापस आ गया। सन् ५८ में दमाके कारण शक्तिहीन और जीविका कमानेमें असमर्थ होनेके कारण पेन्शनके लिये सरकारको लिखा था। सरकारने दमेकी स्थिति देखकर मेरे लिये अस्थायी पेन्शन मंजूर कर दी।

सन् ६२ तक आते-आते इस दमेके कारण मैं पंगु हो गया। चलना, फिरना मुश्किल हो गया। मेरे लिये यह आवश्यक हो गया कि जहाँ भी रहूँ किसी न किसी डाक्टरसे मित्रता बनाये रक्खूँ। जीवनकी रक्षाका एक यही सहारा दिखायी पड़ता था। गनेशपुर रहते समय रुद्रपुरके डा० सतीशचन्द्र रस्तोगीसे मित्रता हो गयी थी और वे लगनसे प्रेमपूर्वक मेरी चिकित्सा व देखभाल करते थे। वे एक अनुभवी और मिलनसार डाक्टर हैं।

जुलाई १९६३ में दमेका दौरा बड़े जोरोंसे पड़ा। डाक्टर बुलाये गये। हालत बड़ी नाजुक थी। सुइयां दी गयीं और डाक्टर साहब मुझे अपने साथ रुद्रपुर ले गये। वे अपने पास रखकर ही दवा करने लगे। धीरे-धीरे हालत बिगड़ती गयी

और मजबूर होकर रुद्रपुर अस्पताल ले जाया गया। वहाँ डाक्टरने मुझे लखनऊ भेजने की राय दी। पर मेरी हालत इतनी खराब थी कि मुझे लखनऊ कैसे पहुँचाया जाय, यह समस्या खड़ी हो गयी। खैर किसी तरह नवम्बरमें लखनऊ आया। लखनऊमें बलियाके एम० एल० ए० पं० राम अनन्त जी पांडेयने मुझे अस्पतालमें भरती करा दिया। वहां दवा होने लगी। कभी बीमारी कुछ कम हो जाती कभी कुछ अधिक। यह क्रम काफी दिनों तक चलता रहा। इस दमेकी बीमारीमे कितनी तकलीफ होती है यह तो केवल भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है। कुछ दिनों बाद मैं लखनऊसे वापस आ गया।

अक्तूबर ६४ में मेरी हालत एक बार फिर बहुत खराब हो गयी। डाक्टर साहब आये और मुझे अपने साथ रुद्रपुर ले गये। कुछ दिनोंके बाद एक दिन ऐसा हुआ कि मैं दुनियासे चल बसा। मेरे साथ रहने वाला नौकर डाक्टर साहब को बुला लाया। डाक्टर साहब मेरी हालत देख कर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। आखिरी सुई जो दी जाती है, वह मेरे सीने पर दी गयी और मालिश होने लगी। नौकरसे घर पर भी सूचना भिजवाने के लिये कह दिया गया कि "अब वे नहीं रहे।" एक आदमी दौड़ा हुआ गणेशपुर गया। वहाँ रोना-पीटना शुरू हो गया। जो जहाँ था वहींसे रुद्रपुरके लिये चल पड़ा। उधर आक्सीजन वगैरह न होने के कारण डाक्टर साहब अपनी कारसे मुझे अस्पताल ले गये। वहाँ पर सैकड़ों आदमी पहुँच गये थे। कई दिनोंके बाद होश हुआ। उसके बाद अपने किसी आदमीको देखते ही रुलाई आती थी और बेहोश हो जाता था। इस कारण कोई आदमी मुझसे भेंट भी नहीं करता था। दिसम्बर मासमें अस्पतालसे घर वापस आगया।

इलाजके लिये मैं पुन १ फरवरी, ६५ को लखनऊ आया। यहाँ पर मेरे ठहरने के तीन स्थान हैं। पहला दारूलशफामें प० रामअनन्त पाडेयजीका निवास स्थान, दूसरा बलरामपुर अस्पताल तथा तीसरा सिविल अस्पताल हजरतगंज। श्री पाडेयजीकी सेवा सराहनीय है। वे मेरे पहुँचते ही मुझे अस्पताल ले जाते थे और भरती करा देते थे। मेरी सुख-सुविधाकी भी देख-भाल किया करते थे। शारीरिक अवस्था इतनी खराब थी कि भरती होने मे तनिक भी विलम्ब नहीं होता था। इस बार अस्पतालसे लौटकर आने पर पाडेयजीके यहाँ श्री कुबेर प्रसाद गुप्तसे मुलाकात हुइ। यहीं से मेरे जीवन मे परिवर्तन प्रारम्भ होता है।

श्री कुबेर प्रसाद गुप्तने मुझे 'साधक' पत्रिकाकी कुछ प्रतियाँ दीं और उन्हें पढने को कहा। मेरा हालचाल पूछने वे अक्सर वहाँ आ जाया करते थे और हर बार 'साधक' पढने के लिए आग्रह करते थे। और कहते थे आप इसे जरूर पढे और उसके बाद उचित समझें तो मुझसे बात करें। मैं चाहता था कि ये यहाँ से शीघ्र चले जाँय। इनसे बातें करने को भी जी नहीं चाहता था। क्योंकि मैं जीवनसे निराश हो चुका था। एक दिन जैसे ही श्री कुबेर प्रसाद जी मिलकर बाहर गये कि मुझे हमेशा दौरा पडा और मुझे अस्पतालमें भरती करा दिया गया। अस्पतालमें मौतकी शय्या पर पड़े-पडे जीवनका एक-एक दिन काटना दूभर हो गया। इसी समय अचानक साधक' पत्रिकाकी याद आइ। सौभाग्यसे 'साधक' की कुछ प्रतियाँ मेरी तकियाकी गिलाफमें थीं। मैं बिस्तर पर पड़े-पड़े उन्हें पढने लगा। बार-बार पढने पर भी जी नहीं उबता था। दिनाक २३ सितम्बर, ६४ की घटनासे, जो डा० सीताराम गुप्तके अनुभवोंमे वर्णित है और जिसमे डा० चन्द्रदीप सिंह जी का उनसे उस स्थितिमें कष्ट उठा कर भी मिलना लिखा है,

काफी प्रभावित हुआ। अब अस्पतालसे निकलकर दारुलशफा आया और श्री कुबेर प्रसादजीसे मिलने को आकुल हो गया। उसी दिन उनके कार्यालयमें जाकर उनसे मिला और केवल इतना ही कहा कि आपसे कब और कहाँ पर मुलाकात होगी? उन्होंने कार्यालय समाप्त होने पर सवा पाँच बजेका समय बताया और मेरे ठहरनेके स्थान पर ही आने का भी आश्वासन दिया। वे मेरे यहाँ ठीक सवा पाँच बजे आ गये। अब मैं उनसे आग्रह करने लगा कि योगीजीसे मेरी भेंट करा दें। मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। हमारी उत्सुकताको देखकर उन्होंने कहा कि १४ मार्च, को सिटी मान्टेसरी स्कूलमें और १८ मार्चको होली के दिन मेरे यहाँ उनसे मुलाकात हो सकती है। मैं १४ मार्चके पूर्व ही एक दिन जाकर सिटी मान्टेसरी स्कूल देख आया और १८ मार्चके पूर्व श्री कुबेर प्रसाद गुप्तका मकान नं० डी-१२१४, राजेन्द्र नगर भी देख आया, जिससे निश्चित तारीखको भटकना न पड़े। क्योंकि अब मैं इस स्वर्ण अवसरको खोना या उसमें तनिक भी विलम्ब करना नहीं चाहता था।

सिटी मान्टेसरी स्कूलमें जब प्रवचन प्रारम्भ हुआ तो मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ और कुछ अविश्वास भी कि सफेद खादीके कुर्ते धोतीमें एक दुबले-पतले व्यक्ति प्रवचन कर रहे हैं। मुझे आशा थी कि मैं एक गेरुआ वस्त्र पहने, किसी मोटे-ताजे संन्यासीको देखूँगा। इस निराशासे प्रथम तो मेरे मनमें अविश्वासकी भावना पैदा हुई परन्तु प्रवचनमें जो कुछ सुना वह तो कल्पनातीत था। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि इस संतके मार्ग-दर्शनमें चलने पर मेरा रोग समाप्त हो जायगा।

दिनांक १८ मार्चको मैं श्री कुबेर प्रसादजीके यहाँ गया। उस दिन होली थी। रास्ते में रंग पानीसे सारा शरीर भीग गया। मुझे डर लगा कि कहीं फिर बीमार न पड़ जाऊँ क्योंकि

मैं दो सालसे स्नान नहीं कर पाया था। सवेरेका समय और भीगनेके कारण ठंडसे काँप रहा था। वहाँ पहुँचते ही पूज्य योगीजीने पहले मुझे कपड़ा बदलने को कहा। श्री कुबेर प्रसाद जीका कपड़ा पहन कर अपना कपड़ा सूखनेको डाल दिया और पूज्य योगीजीसे बातें होने लगीं।

पूज्य योगीजीने सर्वप्रथम भगवान पर भरोसा करने तथा दवाका प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा करने को कहा। यह सुन कर मैं बहुत असमंजसमें पड़ गया। दबती हुई धीमी आवाजमें कहा कि मेरे जैसा दमाका मरीज आपने न देखा होगा। जिस समय इस दुष्ट दमेका दौरा पड़ता है, उस समय मेरी सारी सुधि-बुधि खो जाती है। मुझे पता ही नहीं चलता कि कब और क्या हो गया। साथमें रहने वाले ही समयानुसार डाक्टर बुलाने की व्यवस्था करते हैं। ऐसी स्थितिमें मैं कैसे प्रतिज्ञा करूँ कि मैं दवाका प्रयोग नहीं करूँगा इस पर उन्होंने पूछा कि क्या दमाका दौरा पड़ने से दो चार मिनट पहले मालूम हो जाता है कि दौरा पड़ेगा ? इस बातसे तो मैं चकित हो गया। मैंने कहा कि हाँ, कुछ मिनट पूर्व मुझे आभास मिल जाता है कि दौरा पड़ने वाला है। इस पर उन्होंने कहा कि ऐसा मालूम पड़ते ही गुनगुने पानीका एनिमा लो और गुनगुने पानीमें दोनों पैर डाल देना और घुटनेसे नीचे धुलवाना। इससे मुझमें एक अजीब शक्तिका संचार हुआ और मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मेरी बीमारीकी आधी शक्ति तो अभी नष्ट हो गयी।

इसके बाद कुछ नोट करने के लिये कहा। मैंने कुबेर प्रसाद जीसे नोट करने के लिए कहा क्योंकि उस समय मैं कुछ भी लिख सकनेमें असमर्थ था। कमजोरीके कारण [illegible] हाथ और दाहिना पैर खराब हो गया था यानी

होती थी। पूज्य योगीजीने जो नोट करवाया वह निम्न प्रकार है:—(१) प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सुन्दरकाण्डका समूचा पाठ करना। यह पाठ लगातार ५१ दिन तक होगा। (२) प्रति दिन एनिमा लेना। (एनिमा लेने की विधि भी अपना विशेष महत्व रखती है।) (३) १०-१२ तुलसीका पत्ता शामको तांबेके बर्तनमें भिगो देना और सुबह ७॥ बजे तुलसीका पत्ता खाकर वह पानी पी लेना। (४) सवेरे ९॥ बजे किसी हरी सब्जीको पानीमें पकाकर उसका रस पीना। (५) १२॥ बजे दिनमें उबली हुई हरी सब्जी खाना। (६) रातमें चिराग जलनेके बाद लगभग ७ बजे सब्जी और रोटी खाना। (७) भोजनके पहले भोजनका चतुर्थांश निकाल कर भगवानके नाते किसी जीवको खिला देना (अपने किसी जानवर, कुत्ता, बिल्ली, गाय आदि को नहीं)। (८) मंगलवारको व्रत रहना। (९) जो भी आमदनी हो उसका दसांश अलग कर भगवानके नाते बच्चों, किसी सार्वजनिक हितके काम या साधु-सन्तोंकी सेवामें व्यय करना। (१०) कम से कम महीनेमें एक बार सम्पर्क स्थापित करना अपने कार्यक्रम तथा अवस्थाका विवरण रखना और पत्र द्वारा सूचित करते रहना।

बस इतनी ही बातें हुईं। उसके बाद वहाँसे विदा लेकर अपने निवास स्थान पर आया। दूसरे दिन पूजाका आवश्यक सामान खरीद लाया और उसी दिन अपने घर गणेशपुरके लिये प्रस्थान किया। २० मार्चको प्रातः अपने घर पहुँचते ही पूज्य योगीजीके निर्देशके अनुसार कार्यक्रम बनाकर उसका पालन करने लगा। अपने भाईसे बता भी दिया कि जब इशारा करूँ तुरन्त एक बाल्टी पानी गरम करा दीजियेगा और उसके पहले एक लोटा गरम पानी एनिमा के लिये भिजवा दीजियेगा। और उसी दिन रातमें दौरा आ ही तो गया। गुनगुने पानीका एनिमा लिया। तब तक एक बाल्टी गरम पानी भी आ गया। बाल्टीमें दोनों

पैर डाल दिया और नौकरसे घुटनेसे नीचे धोनेको कहा और मैं स्वयं भगवान एवं उन्हींके रूप पूज्य योगीजीकी आराधना करने लगा। थोड़ी देर बाद यानी कुल १०, १५ मिनटमें दौरा बन्द हो गया और मैं सो गया। सच मानिये ऐसी सुखकी नींद जीवनमें कभी नहीं आयी थी। अब पूज्य योगीजीके प्रति मेरी आस्था चढ़ गयी। अब उनके दर्शनों हेतु हलद्वानी, रामपुर, बरेली जाया करता हूँ तथा दर्शन करता, प्रवचन सुनता और अपनी साधनाकी बातें बता कर आगेके लिए आदेश प्राप्त करता हूँ। दमेका दौरा पड़नेकी अवधि बढ़ने लगी और उसका जोर भी कम होने लगा। करीब एक सप्ताहमें दौरा समाप्त हो गया और सुन्दरकाण्डके पाठकी समाप्ति यानी ५१वें दिन तो मैं अपनेको पूर्ण रूपसे स्वस्थ अनुभव करने लगा। दो माह बाद जब मैं पूज्य योगीजीसे बरेलीमें मिला तो मैंने उनसे कहा कि जाड़ेमें दौरा काफी होता है आप मुझे जाड़ा प्रारम्भ होनेके पहले ही निर्भीक बना दें। उन्होंने सप्ताहमें तीन दिन उपवास करने को कहा। मैंने उनकी आज्ञानुसार व्रत प्रारम्भ कर दिया। सप्ताहमें तीन दिन रविवार, सोमवार और मंगलवारको व्रत रहता हूँ। शेष चार दिन सुबह ७॥ बजे तुलसीका पत्ता और उसका पानी पीता हूँ। ९॥ बजे हरी सब्जीका रस, १२॥ बजे हरी सब्जीकी तरकारी और रातमें रोटी तरकारी या खिचड़ी खाता हूँ।

इस बार बरेलीसे आनेके बाद पहले रविवारसे ही व्रत प्रारम्भ कर दिया। तीसरे दिन यानी मंगलवारको मेरा हाथ, पैर और मुंह काफी सूज गया। मुझे काफी चिन्ता हुई। उसी दिन पूज्य योगीजीको पत्र द्वारा अपनी अवस्थाका ज्ञान कराया और उनके सह-साधक डा० चन्द्रदीप सिंह जी व श्री कुबेर प्रसादको भी उसकी सूचना दी। अपनेको मिलने वालोंसे छिपाये रोनेके सिवाय कोई दूसरा मार्ग दिखायी नहीं देता था।

रखा था कि उम्र ढल जाने पर जब हाथ, पैर, मुंह सूज जाते हैं तो यह मनुष्यकी मृत्युका द्योतक होता है। अब मुझे विश्वास हो गया कि मेरा अन्त निकट है। मेरे पत्रके उत्तरमें तीनों महानुभावोंके आश्वासन और उचित सलाह-भरे पत्र आये और मुझे काफी आत्मबल प्राप्त हुआ।

इस कष्टकी अवस्थामें अन्य तरफसे सहारा छोड़ कर भगवान और पूज्य योगीजीका स्मरण करने लगा। इसी स्थितिमें एक दिन रातमें अचानक नींद खुल गयी तो देखता क्या हूँ कि हाथ, पैर और मुंहकी सूजन समाप्त हो गयी है। विश्वास नहीं हुआ। ऐसा आभास हुआ जैसे स्वप्न देख रहा होऊँ। तुरन्त लालटेन जलवाया। सूजन समाप्त देखकर खुशीका ठिकाना नहीं रहा। व्रतके दूसरे सप्ताहमें कुछ इसी प्रकार का हुआ परन्तु इस बार सूजन कम थी और कष्ट भी कम हुआ। तीसरे सप्ताहके व्रतसे यह बिल्कुल समाप्त हो गया।

२० मार्च, ६४के पूर्व लगभग दो वर्षसे मैंने स्नान नहीं किया था परन्तु पूज्य योगीजीकी शरणमें आ जानेके बाद उसी दिनसे नित्य स्नान करता हूँ। नैनीताल जिलेकी ठंडकमें भी एक दिनका नागा नहीं हुआ।

१० वर्षसे दूध, दही, मट्ठा खानेको तरस रहा था। पर अब बारह बजे रातमें भी दूध, दही और मट्ठा खाकर आजमा लिया है। इनसे कोई नुकसान नहीं होता।

१० वर्षकी अवस्थासे ही दमा था। अब मेरी उम्र लगभग ५० वर्षके हैं। अब मैं अपनेको पूर्ण रूपसे स्वस्थ अनुभव करता हूँ, यद्यपि शरीरसे अभी पूरा विकार नहीं निकल पाया है जैसा पूज्य योगीजी बताते हैं कि विकारका एक-एक स्तर क्रमशः निकलता जायगा। अब जीवनमें सुख ही सुख है। यह सब पूज्य योगीजीकी शरणमें जाने एवं उनके बताये मार्ग पर चलनेसे ही सम्भव हो सका है।

ानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-११

असाध्य रोगों से छुटकारा

संकलनकर्ता :-
श्री कुवेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३०००

मूल्य २५ पैसे

मानव का मौलिक भाग : १. शरीर मे रोग की सम्भावना रहित अखण्ड स्वास्थ्य ।
२. इन्द्रियो मे थकावट विहीन अखड शक्ति ।
३. मन मे चिन्ता रहित अखंड आनन्द ।
४. बुद्धि मे भय रहित अखड ज्ञान ।
५ अह मे द्वैत रहित अखड प्रेम ।

पचस्तरीय विकार : १ शरीर मे रोग
२. इन्द्रियो मे कमजोरी
३. मन मे शोक
४. बुद्धि मे भय
५. अह मे वियोग

पंचविकारो के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५ जो वास्तव मे अपने नही हे उनमे ममत्व

विकारो का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभाविन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला—पुष्प—११

असाध्य रोगों से छुटकारा

—◌:◦◌—

सकलनकर्ताः
श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्राक्कथन

कवि कुलभूषण गोस्वामी तुलसीदास जी का अमरकाव्य श्रीरामचरि
मानस अनेकानेक शिक्षाओ का आगार है । उन्हे यदि मानव समझकर अप
जीवन मे अपनाय तो उसकी समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याए ह
हो सकती है । और उसका जीवन सब प्रकार से सुखी हो सकता है ।

गावो और शहरो म अखड पाठ के आयोजन होते ही रहते है और ब
बडी सभाओ म मानस कथा की अमृत वर्षा होती रहती है, परन्तु कटु स
तो यह है कि इन ३९० वर्षो के पठन पाठन के बाद भी आज मानस प्रेमि
(श्रोता और वक्ता दानो) के जीवन मे त्रिताप के नाश का आश्वासन च
तार्थ होता नही दीखता ।

मेरा विश्वास है कि मानव को त्रिताप से मुक्ति दिलाने का मानस क
दावा सच्चा है और मानस म ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित है, जिन्हें अपना क
मानव रोग, दुख और भय से मुक्त हो सकता है ।

रामचरित मानस के वैज्ञानिक अध्ययन एव मेरे मित्रो के प्रयोगो से मे
इस मान्यता की पुष्टि हुई है कि इस ग्रन्थ मे प्रतिपादित दर्शन कोरी कल्प
की वस्तु नही बल्कि पूर्णतया व्यवहारिक है। यह अपने उन पाठको औ
श्रोताओ के जीवन म आमूल परिवर्तन लाने मे सक्षम है जो इसका सिद्धा
समझ कर उसका सही प्रयोग करेंगे । मेरे बहुत से मित्रो और सह-साधको
रामचरित मानस मे निर्दिष्ट पचसूची साधन प्रणाली के अनुसार जो वैज्ञानि
प्रयोग किये है उनसे पता चलता है कि साम्प्रतिक मापदड के अनुसार इ
साधना से उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम प्रप्त हुए है जैसे

१ उनके शरीर बिना औषधोपचार के ही सभी प्रकार के रोगो से, यह
तक कि असाध्य रोगो से भी, मुक्त हो गये हैं । २ शक्ति प्राप्त करने
लिये उन्हें भोजन की अपेक्षा घटती जा रही है, उनमे से कुछ तो, जिन
महिलायें भी हैं, अपने सभी कार्य कई दिनो तक केवल हवा के सहा
और कई सप्ताह तक केवल जल पीकर ही, करते रहने मे समर्थ हैं
३ वे लगातार १८ घटे तक बिना बीच मे जलपान की आवश्यकता अनुभ

किये ही काम कर सकते है, फिर भी उन्हें थकावट नही महसूस होती । ४. उनका मन क्रमश चिन्ता मुक्त और हर प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से स्वतन्त्र होता जा रहा है। ५ वे बुद्धि मे एक अलौकिक प्रकाश का अनुभव करते है जिससे वे अब प्रातीतिक सत्य और यथार्थ सत्य का विवेचन करने मे समर्थ होते जा रहे है अर्थात् वे अनुभव करते हैं कि क भोजन शरीर निर्माता तत्व है, शक्ति दाता नही । ख धन वस्तुओ को खरीदने का साधन मात्र है, आनन्द दायक नही । ग पुस्तकें सूचना दे सकती है, ज्ञान नही ६ वे स्पष्ट अनुभव करते है, कि एक अलौकिक शक्ति है जो हमारे भाग्य का निर्माण करती है और सभी कुछ प्रभु की इच्छा से ही होता है । ७ वे धीरे धीरे यह अनुभव करने लग है कि उनमे मानव मात्र के प्रति स्वत सहज प्रेम का जागरण हो रहा है, जिसमे जाति, मत-मतान्तर, राष्ट्रीयता एव व्यक्तिगत प्रवृत्तियो के प्रभेदो का कोई स्थान नही है । अविश्वासी व्यक्ति इन अनुभवो को कोरी कल्पना कह सकते है परन्तु मैं बलपूर्वक दुहराता हू कि रामचरित मानस अपने सभी गभीर अध्येताओं को समन्वित विकास का विशिष्ट वरदान प्रदान करता है । आवश्यक होने तथा समुचित साधन, सुविधा की व्यवस्था होने पर इन्हें समाज के सामने भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जा सकता है ।

इन प्रयोगो को, जिनके परिणाम रामचरित मानस के त्रिताप नाश के दावो की पुष्टि करते है, जो वैदिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगो की प्रविधि (टेक्नीक) की मोटी मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते है तथा जन साधारण की अनुभूतियो के मुकाबले आश्चर्य जनक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, 'मानस साधना मडल' समाज के सामने इस दृष्टि से प्रस्तुत कर रहा है जिससे इस प्रकार के परिणामों की अभिलाषा रखने वाले ग्रहणशील व्यक्ति इस ओर उन्मुख हों, रामचरित मानस के सिद्धान्तों को समझने और उनकी प्रविधि के अनुसार प्रयोग करने के लिये सचेष्ट हो और वाह्य अभाव एव आन्तरिक अशान्ति मिटाकर आनन्दमय जीवन का उपभोग कर सकें ।

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०

भगवान की महती कृपा

(लेखक—श्री बांकेलाल जी शर्मा, हवलदार, देहली पुलिस, थाना करोलबाग, वायरलेस स्टाफ, नयी दिल्ली–५)

महानुभावो।

सेवा में हाथ जोड़कर नम्र निवेदन है कि मुझ अधम व तुच्छ प्राणी को भगवान की महती कृपा की एक झलक मिली है —

मोहि बिलोकि धरहु उर धीरा। राम कृपा कस भयउ सरीरा॥

दयनीय स्थिति

मैं लगभग ५ बरसों से बड़ी बुरी तरह नजला, जुकाम, खाँसी से पीड़ित था। नाक से हर समय पानी बहता रहता था तथा छींके आती रहती थीं। प्राय. ४० से ५० छींकें एक समय आती थीं। कमजोरी हद से ज्यादा बढ़ गई थी। सारे शरीर में दर्द रहता था। दमा की शिकायत पैदा हो गई थी। चलना तो दर किनार खड़े होने में भी चक्कर आता था। आंख, कान, नाक, गला, फेफड़े सब खराब हो चुके थे। दिन रात में किसी दीवार आदि के सहारे बैठने पर आंखो में झपकी सी लग जाती थी, नींद तो तकलीफ की वजह से आती ही नहीं थी। सर और आंखो तथा कानो में बड़ी खुजली रहती थी। नाखून से सर को खुजाते नहीं छकता था। सर के बाल झड़-झड़ कर जमीन पर गिरते रहते थे। आंखो को हथेलियों से मलता ही रहता था। गले में खराश थी। कानो में राध पड़ गई थी जो बाहर निकलती थी। नाक अन्दर से बिल्कुल पक गयी थी, छुई तक नहीं जाती थी। भूख बिल्कुल नहीं लगती थी और बुरी तरह कब्ज रहता था। कहने का तात्पर्य यह है कि इस जीवन

से बिल्कुल तंग आ गया था। कुछ भी दुनियादारी की बात अच्छी नहीं लगती थी।

असफल उपचार

इलाज करने मे भी कोई कसर नही उठा रखी थी। पहले तो कई महीने अपने पुलिस के सरकारी अस्पताल में काफी इलाज कराया। ममूली सा फायदा मालूम हुआ पर कोई विशेष अन्तर नही आया। इसके पश्चात दिल्ली के अन्दर ही बडे अनुभवी वैद्यो, यूनानी हकीमो आदि से खूब डट कर इलाज कराया पर अन्त में सभी से यही जवाब मिला कि इस नजले का इलाज दुनिया भर में कही नहीं है। हाँ, कुछ कम भले ही हो सकता है, पर जड से यह बीमारी नही जा सकती। यह तो जीवन के साथ लगी ही रहेगी। ऐसी बातों को सुनकर और ज्यादा रोग बढता ही गया क्योंकि यह चिन्ता लग गयी कि अब बीमारी से छूटने का कोई उपाय शेष नही हैं। जानबूझ कर यह जिन्दगी खोई भी न जा सकी। दुख पाने के लिये जिन्दा बना रहा और तड़-पता रहा। अन्त में जब बिल्कुल मरणासन्न हो गया तो घर वाले यह सोच कर कि मरे तो घर ही मरे, मुझ अधम को अपने गाँव (जिला अलीगढ, उत्तर प्रदेश मे) ले गये वहा पर भी इलाज कराने में कोई कसर नही उठा रखी। सोना, मोती आदि की भस्म वाली दवाओ में पैसा ताकत से अधिक ही खर्च हो गया। सन् १९५९ मे गाव में डट कर इलाज कराया पर आराम मामूली मालूम हुआ और फिर दुबारा वैसी ही दशा बन गई। नौकरी की तरफ से डाक्टरी छुट्टिया लेता रहा। अब सभी मेरे जीवन की ओर से निराश हो चुके थे। थोडा सा फायदा होने पर मैं फिर दिल्ली आ गया और यहाँ आकर फिर अनुभवी वैद्यो हकीमो से इलाज कराना शुरु कर दिया, फिर भी वही बात रही। चारपाई पर या किसी दूसरे आदमी या दीवार के सहारे बैठा रहता था। लेट तो सकता ही नही था। लेटा नही और खाँसी का दौरा पडा नही। सन १९६० ई० मे दिल्ली में खूब इलाज कराता रहा। पर फायदे का नाम

भी नहीं हुआ। घर वालों तथा सम्बन्धियों की बडी जिद थी कि मैं नौकरी छोड कर गाव में जाकर ही दु:ख पाता रहूँ। यहा तो हम कुछ मदद करने में असमर्थ है। इस बात पर अब मैं नौकरी छोडने की धारणा को दिल में अच्छी तरह जमाये बैठा था।

मान्यताओं में परिवर्तन

इसी अवस्था में परम पिता परमात्मा की परम अनुकम्पा हुई और अजमल खा पार्क, करोल बाग, नई दिल्ली में ता० २-६-६१ की सुबह के वक्त एक महान आत्मा का, जो ससार के प्रत्येक प्राणी का हर समय भला चाहने वाले हैं, लाइलाज का इलाज करने वाले हैं, बल्कि असम्भव को सम्भव कर दिखलाने वाले है, और जो ईश्वर के आधार पर ही जन साधारण की सेवा करते है, उनका भाषण सुनने का मुझ पापी और दुरात्मा को सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनको श्री हृदय नारायण (योगी जी) के नाम से पुकारते हैं। उनके भाषण के श्रवण मात्र से ज्ञात होने लगा कि अब मुझ असहाय और निरुत्साह को पुनः जीवन प्रदान होने लगा है। उनकी अमृतमय वाणी से ऐसी प्रसन्नता हुई मानो कोई बडी पुरानी वस्तु खोई जावे और जिसके मिलने की आशा स्मृति पटल पर भी न रह गयी हो, वह पुन प्राप्त हो गयी। मुझे ज्ञात होने लगा कि मानो मेरी जान बचाने वाले स्वय ईश्वर ही साक्षात प्रकट हो गये हो। उनकी बडी साधारण सी बातो और आदेशो पर चलकर ईश्वर की अपार कृपा से एक दो महीने के अन्दर ही जीवन से दु:ख और निराशा का नाम मिट गया है। आनन्द और सरसता तथा प्रसन्नता का स्रोत बहने लगा है। चिन्ता नाम को भी नहीं रह गयी है। जन समुदाय की सेवा में बडी रुचि बढ गयी है। वे आदर्श बातें यह है जो कि उनके कथनानुसार अपने अनुभव में ईश्वर के नाम पर मैंने प्रयोग की हैं और कर रहा हूँ।

प्रयोग

१. सर्व प्रथम अपनी आय (पे) का दसवा भाग तनख्वाह मिलते ही

गरीबो और दीन दुखियो के लिये अलग निकाल कर रख लेता हूँ और ऐसे पैसे को ऐसी जगह पर खर्च करता हूँ जहा उसकी वास्तव में आवश्यकता होती है। ऐसे पैसे को किंचित भी अपने या अपने किसी सम्बन्धी के कार्य में प्रयोग नही करता हूँ क्योंकि ऐसा अटूट विश्वास हो गया है कि यदि ऐसा करूँगा तो ईश्वर अवश्य देखेगा चाहे और कोई देखे या न देखे। भगवान जो कुछ कर रहा है, ठीक कर रहा है, ऐसा मान कर सच्चे और नेक हृदय से प्रत्येक कार्य को करने लगा हूँ।

२ सुबह शाम ईश्वर का ध्यान १०, १५ मिनट करने लगा हूँ। ऐसा विश्वास हो रहा है कि सब प्राणीमात्र के घट-घट के अन्दर उसी का वास है तथा सबको बनाने वाला, मारने वाला, सबका पालनकर्ता और जीवन का आधार भी वही है। वह हर समय हर जगह सबके पास है।

३ खाना एक टाइम (शाम को ही) खाता हूँ। दोपहर को १२ बजे के बाद पालक आदि खा लेता हूँ जिसमें भुना जीरा आदि मिला हुआ नमक इस्तेमाल करता हूँ। जो कुछ पैसा खुराक कम करने से बचता है उसे रोजाना मिठाई आदि खाने की वस्तु के रूप में बच्चो इत्यादि को बाट देता हूँ। जन समुदाय की सेवा के कार्य में निष्काम भाव से कार्य करता हूँ। अब जीवन में दुख और कलेशो का लेश मात्र भी नाम नही रहा है। आनन्दमय जीवन व्यतीत होने लगा है।

इसलिये सभी जन समुदाय के चरणो में प्रार्थना है कि आप सभी ऐसे महानुभाव तथा महान आत्मा की विचारधारा को अपना कर अपने जीवन को मेरी तरह सफल बनावें क्योकि प्राणीमात्र की सेवा के हेतु ही वे इस सदेश को घर-घर पहुँचा रहे हैं और उनका अपना कोई स्वार्थ नही है।

-○-

मेरा पुनर्जन्म हुआ

(लेखक–सूरजभान शाकल्य बी एससी , जिलेदार, ४४२/७, कैथल, जिला-करनाल)

पुन्य पुज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति ससृति कर अता ॥

बिना विशेष पुण्यों के उदय हुए और भगवान की कृपा के सत-मिलन नहीं होता । सत-मिलन से सासारिक दुखो का नाश होता है । भगवान की ऐसी ही अहेतुकी कृपा होने का समय मेरे जीवन मे भी आया और मुझे इस युग के महान सत के शुभ दर्शन का सौभाग्य पहली अप्रैल सन् १९५८ को अजमल खा पार्क, नई दिल्ली मे प्राप्त हुआ । दर्शन होते ही मेरा दु.ख तो भाग गया और मोह के समूल विनाश के लिए साधना आरम्भ हुई, जो कि चल रही है। भगवान की कृपा और सदगुरु के प्रताप से दोषो का विनाश होता जा रहा है। संत-मिलन से पहले सारे शरीर के जोड हर समय गठिये के दर्द से जकड़े रहते थे । मैं हर तरह की चिकित्सा करा के जीवन से निराश हो चुका था। कोई रास्ता नजर नही आता था और इस जीवन का अन्त करने की सोचता रहता था । मुझे हर समय यही भय रहता था कि जब नौकरी के योग्य ही नहीं रहूँगा तो मेरी बूढी माँ, विधवा बहन, पत्नी तथा बच्चो का क्या होगा? लेकिन योगी जी के सम्पर्क मे आने के बाद स बीमारी नाम की कोई चीज मैंने जानी ही नही है । काम करने की शक्ति का सबध भोजन से टूट गया है । आज ३१ दिसम्बर को मेरे उपवास का २९ वा दिन है जिसमे २६ दिन केवल जल और वायु पर तथा शेष ३ दिन बिना जल के बिताये हैं । प्रतिदिन अठारह घटे दफ्तर तथा फील्ड का काम पहले से अधिक सुगमता और योग्यता से करता रहा हूँ।

मन में ऐसी आतरिक शाति आ गई है कि परिस्थिति का सम्बन्ध मन से टूटा हुआ मालूम होता है। छोटी छोटी बातो का तो कहना ही क्या, मुअत्तली जैसे महान सकट से, जो मेरी जिन्दगी मे ११ मई सन् १९६० को आया, और उसके साथ ही सर्वोच्च पदाधिकारी के रुख से भी, मेरा मन विचलित नही हुआ बल्कि वही मुअत्तली मेरे लिए वरदान प्रमाणित हुई। यह सब सत-शिरोमणि के प्रताप से है जिन्होने मुझे बताया कि रामचरित-मानस मे तीनो ताप मिटने की बात भगवान मे अनुराग से सम्बन्धित मानी गई हैं और भगवान के चरणो का निरादर ही रोग, वियोग, दीनता, मलीनता आदि का कारण बताया गया है।

> वहुरोग वियोगन्हि लोग हये।
> भवदघ्रि निरादर के फल ये॥
> अति दीन मलीन दुखी नित ही।
> जिनके पद-पकज प्रेम नही॥

शक्ति का केन्द्र भगवान को न मान कर भोजन को मानना भगवान का सबसे बडा निरादर है। इससे आन्तरिक शक्ति का जागरण नही हो पाता जिसके बिना न रोग मिटते है और न अथक शक्ति का अनुभव होता है। इसी प्रकार दुख का कारण आसक्ति को न मान कर परिस्थिति को मानना सबसे बडा भ्रम है। आसक्ति मिटाने का साघन वितरण के सिवाय और कुछ नही है। आसक्ति मिटने पर मन मे अदभुत आनन्द भर जाता है जिससे भारी से भारी दुख मे भी भक्त विचलित नही होता।

इसी प्रकार अहकार का विनाश होने पर द्वैत भावना मिट जाती है और सर्वत्र एक ही सत्ता का अनुभव होता है। भय नाम की वस्तु रह ही नही जाती। कर्तृत्व के विनाश से आवागमन भी मिट जाता है। अहकार का विलय या तो सुमिरन की साधना से हो सकता है जैसे नारद और मनु सतरूपा का या सहज प्रेम से जैसे माता शबरी का।

मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि भोजन से शक्ति का, धन तथा परिस्थिति से सुख का और पुस्तक से ज्ञान का सम्बन्ध नही है और चिन्तन सेवा तथा उपवास के साधन–त्रिक् द्वारा शरीर रोग-रहित, मन चिन्ता रहित और बुद्धि भय-रहित हो सकती है।

मेरी वर्तमान साधना का क्रम यह है —

बारह बजे दिन से पहले कभी कुछ नही खाता। केवल एक बार, प्राय रात्रि मे ही, अन्न ग्रहण करता हूँ। दूसरे समय फल या तरकारी और सोते समय एक पाव से आध सेर तक दूध लेता हूँ। आमदनी का दशाँश भगवान की सेवा के लिए निकाल देता हूँ। प्रात तीन और पाच के बीच उठता हू और आधा घटा ध्यान करने का प्रयास करता हू। अब मुझे विभीषण के शब्दो मे पूर्ण विश्वास हो गया है —

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सता॥

और सत के दरस परस से सारे पाप नष्ट हो जाते है, सुख दुख मे मन समान रहने लगता है, मान मिटता है, बोध का जागरण होता है जिसके फल स्वरूप सारे विकार आप ही चले जाते है जैसा गोस्वामी तुलसीदास ने विनय पत्रिका मे लिखा —

जब द्रवै दीनदयाल राघव, साधुसगति पाइये।
जेहि दरस-परस-समागमादिक पापरासि नसाइये॥
जिनके मिले दुख सुख समान अमानतादिक गुन भये।
मदमोह लोभ विषाद-क्रोध सुबोध तें सहजहि गये॥

स्वास्थ्य, आनन्द और ज्ञान प्राप्त करने के उपाय

(लेखक—अहिताग्नि प० यमुनाप्रसाद त्रिपाठी सामवेदी, रिटायर्ड आई०पी०एस०
स्पेशल मजिस्ट्रेट, लखनऊ
अवैतनिक सलाहकार, उत्तर प्रदेश सरकार,
मुख्य कार्याधिकारी, श्री बद्रीनाथ केदारनाथ मंदिर समिति, बद्रीनाथ
१०, ए० पी० सेन रोड, लखनऊ

भोजन मे शक्ति नही है, शक्ति ईश्वर मे है।
विषयो मे सुख नही है, सुख ईश्वर मे है।
पुस्तको मे ज्ञान नही है, ज्ञान ईश्वर में है।

यह तीन सिद्धान्त 'रामचरित मानस' में प्रतिपादित है और इन सिद्धान्तों पर विश्वास करके अमल करने से शक्ति, आनन्द और ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यदि किसी को इन पर विश्वास नही है तो इन सिद्धान्तो को तर्कपूर्ण खोज के द्वारा भली प्रकार समझ कर उन पर अमल करना चाहिए।

भोजन से शरीर के मास और पुट्ठो की वृद्धि होती है, लेकिन जीवनी शक्ति तो ईश्वर से ही मिल सकती है। मनुष्य इस भोजन को जीवन मे बहुत महत्व देकर अज्ञान और स्वाद-इन्द्रियवश दिन मे कई बार बहुत ज्यादा खाता है और अपने शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ लेता है। अगर शरीर को थोडा सा, सात्विक भोजन, दिन रात मे केवल एक बार दिया जावे और आकाश, वायु, अग्नि और जल के तत्वो का शरीर मे समावेश खुली और साफ हवा मे रहकर, सूर्य की धूप व रोशनी लेकर तथा साफ पानी पीकर किया जावे, तो स्वास्थ्य अच्छा रहेगा और शरीर रोग-व्याधि से मुक्त रहेगा।

प्रात काल से दोपहर तक कुछ न खाना चाहिए क्योंकि उस समय सूर्य की उठती हुई किरणो की शक्ति, शारीरिक मल को भस्म करती हैं और अगर कुछ खा लिया गया तो यह शक्ति शारीरिक मल को भस्म करने के बजाय जो कुछ खाया गया है उसके पचाने मे लग जाती है और मल शरीर मे ज्यो का त्यो बना रह जाता है। यह मल जमा होते होते स्वास्थ्य बिगाड़ कर रोग पैदा कर देता है। रोग हो जाने पर उपवास किया जावे अथवा कम खाया जावे तो सूर्य की उठती हुई किरणो की शक्ति को अपना काम करने का मौका मिलता है और सचित मल भस्म होकर शरीर स्वस्थ हो जाता है। इसके प्रमाण मे दो अनुभव नीचे दिये जाते है

मुझे बहुत दिनो से डायबटीज और अथाराइटीज की बीमारी थी, जिसे वर्तमान चिकित्सा पद्धतिया, जिनमे एलोपैथी भी शामिल है, लाइलाज बताती हैं। परन्तु रामचरित मानस के सिद्धान्तो के अनुसार सचित मल से शरीर को शुद्ध करने पर मुझे उक्त दोनो बीमारियो से मुक्ति मिल गयी। इसी प्रकार लगभग ५ वर्ष हुए एक दिन मै अधेरे मे दरवाजे से टकरा गया और सीने मे सख्त चोट लगी। मेरे लडके ने, जो एक एम० बी०, बी० एस० डाक्टर है, एक्स रे कराके देखा तो पता चला कि मेरी पसली मे फ्रैक्चर हो गया है। यह फ्रैक्चर केवल दो दिन के उपवास से ठीक हो गया। इस समय मेरी आयु लगभग ६० वर्ष की है। इस अवस्था मे भी हड्डी का फ्रेक्चर दो दिन के उपवास से ठीक हो जाय, यह अन्य चिकित्सा-पद्धतियो के लिये शायद आश्चर्य की बात हो, परन्तु रामचरित मानस के सिद्धान्तो के अनुसार सर्वथा युक्तियुक्त है।

भोजन शरीर निर्माण के लिये जरूरी है लेकिन वह मनुष्य को शक्ति नहीं देता। दैनिक जीवन मे जो काम काज किया जाता है उससे शरीर मे टूट फूट होती हैं। भोजन शरीर की इस क्षति की पूर्ति करता है परन्तु इसके लिये बहुत थोडी मात्रा मे सात्विक भोजन की जरूरत है। मनुष्य के शरीर की तुलना मोटर बैटरी से की जा सकती है। जिस तरह से मोटर की बैटरी काम

करने से अपनी शक्ति खोती रहती है उसी तरह शरीर काम करने से शक्ति खोता रहता है । मोटर की बैटरी जब शक्ति खोकर डिस्चार्ज हो जाती है, तो उसकी एसिड और प्लेट की कमी को पूरा कर दिया जाता है। इसी तरह श्रम करने से हुई टूट फूट की क्षति को भोजन द्वारा पूरा किया जा सकता है परन्तु जिस तरह बैटरी मे एसिड और प्लेट की कमी पूरी करने पर भी बैटरी काम नही कर सकती जब तक कि डायनमो मे लगा कर उसे चार्ज न किया जाय, उसी तरह भोजन द्वारा टूट फूट की पूर्ति कर देने पर भी शरीर काम नही कर सकता जब तक कि निद्रा या समाधि द्वारा ईश्वर से सम्बन्ध स्थापित न किया जाय। इसको कोई भी आजमा सकता है अगर भोजन तो बराबर किया जावे और सोया न जावे तो मनुष्य बेचैन हो जावेगा, परेशान हो जावेगा।

मनुष्य अगर स्वस्थ, सुखी और निर्भय रहना चाहता है तो उसको अपने समय, शक्ति और धन का थोडा हिस्सा दूसरो की सेवा मे लगाना चाहिए। यह ऐसा सिद्धान्त है जैसा कि नीले और पीले रग मिलाने से हरा रग बनता है। हम अपने शरीर के तत्वो की कमी पूरी करने के लिये रोज ईश्वर के दिये हुए आकाश, वायु, अग्नि और जल के तत्वों को मुफ्त मे बिना कुछ दिये लेते हैं। इसके बदले मे हमको अपने थोडे समय, शक्ति, धन और भोजन को दूसरों की सेवा मे लगाना चाहिए। वरना आकाश, वायु, अग्नि और जल तथा इसी प्रकार के अन्य कर्ज इतने बढ जायगे कि हम उन्हे चुका न सकेंगे और नतीजा यह होगा कि शरीर मे रोग, मन मे चिन्ता और बुद्धि मे भय बना रहेगा।

अगर आपके शरीर मे रोग है तो आप भोजन की मात्रा कम करे या छोटे छोटे उपवास करें और इस तरह जो भोजन बचे उसे दूसरो की सेवा मे उपयोग करें। ईश्वर की कृपा से आपका रोग निश्चित रूप से चला जायगा। अगर आपके मन मे चिन्ता है तो भगवान के नाते अपने समय, शक्ति, धन और भोजन का एक अश दूसरो की सेवा मे उपयोग करें आपकी चिन्तायें

समाप्त हो जायगी। यदि आप को किसी स किसी प्रकार का भय है तो प्रात काल शान्त वातावरण में थोडी देर शरीर मन और बुद्धि की गति को रोक कर निष्क्रिय होने का अभ्यास कीजिये। ईश्वर कृपा से आप शनैं शनैं भय-मुक्त होन लगेंगे। भोजन का चतुर्थांश, आय का दशमांश तथा समय और शक्ति का थोडा सा हिस्सा सेवार्थ उपयोग करना है।

मैं श्री हृदय नारायण जी द्वारा प्रस्तुत श्री रामचरित मानस के सिद्धान्तो और उसके प्रयाग की प्रविधि (टेक्नीक) म मनसा वाचा कर्मणा विश्वास करता हू। मैंने उन्हें अपने जीवन मे अपनाया और ऐसे परिणाम प्राप्त किये है जो उन सिद्धान्तो की पुष्टि करते है।

राजयक्ष्मा के दो असाध्य रोगी

बात सन् १९४६ की है। मेरे* एक साथी को, जो गुप्तचर विभाग मे नौकर थे, मधुमेह हो गया था जिसकी चिकित्सा के लिये उन्हे सरकारी पुलिस अस्पताल मे भेजा गया। परीक्षा के बाद वहाँ के चिकित्सक ने २२-१०-४६ को यह रिपोट कार्यालय मे भेजी कि कर्मचारी "मधुमेह से आक्रान्त है, पेशाब मे चीनी है। दाहिने फेफडे मे राजयक्ष्मा के प्रारम्भिक चिन्ह पाये जा रहे हैं। दो महीने की छुट्टी दवा करने के लिए दी जानी चाहिये।"

३०-१०-४६ ई० को फिर अस्पताल से रिपोर्ट भेजी गई कि रोगी शक्ति-हीन और क्षीणकाय होता जा रहा है और २०-१२-४६ को डाक्टर महोदय ने लिखा 'फेफडे राजयक्ष्मा से आक्रान्त है और मरीज काम करने के अयोग्य है।' अन्तिम रिपोर्ट १४-२-४७ को अस्पताल से मिली, जिसमे डाक्टर ने लिखा था "राजयक्ष्मा के रोग मे कोई सुधार नही है। यदि इनकी सेवाए अस्थायी हो तो

* यह शब्द यहाँ और आगे परमपूज्य श्री हृदयनारायण योगी जी की ओर सकेत करता है।

न्हें नौकरी से छुड़ा दिया जाये और इनकी जगह स्थायी व्यक्ति नियुक्त कर लिया जाय, क्योंकि यह काम करने के योग्य कभी भी नहीं होंगे।"

इस रिपोर्ट के आने पर रोगी नौकरी से निकाल दिया गया और उसे इलाज के लिये पुन पुलिस अस्पताल में २४-३-४७ को भेजा गया जहा लगभग दो महीने की चिकित्सा के उपरान्त वह असाध्य रोगी करार देकर अस्पताल से हटा दिया गया।

सकट की इस भयानक स्थिति मे रोगी ने मेरी सलाह पर मानस के सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा प्रारम्भ की। पहिले दिन प्रात मैंने उसे हनूमान जी के मन्दिर मे बुलाकर एक घण्टे भगवान के नाम का जप कराया और उससे कहा—जितना ही अधिक नाम जप कर सकोगे, उतने ही शीघ्र अच्छे हो जाओगे। "आई मीच टरत रटत राम राम के" इस वाक्य का विश्वास कराया। निकाल स्नान की सलाह दी, क्योंकि मानस मे "पावन पय तिहुँ काल नहाही" एव "मन्दाकिनि मज्जन तिहुँ काला" का निर्देश है और मानस प्रतिपादित भोजन-सिद्धान्त के अनुसार उसे प्रात काल पन्द्रह-बीस विल्वपत्र का रस एक गिलास पानी मे दिया और दोपहर मे कच्चा पालक, टमाटर और अमरूद आदि ऋतु-फल खाने को बताया और रात्रि मे केवल दो रोटी और कुछ पकी सब्जी तथा एकादशी का उपवास। एक माह सोलह दिन यह इलाज हुआ जिसके परिणाम स्वरूप रोगी बिल्कुल चगा हो गया। २७-६-४७ को दफ्तर की ओर से पुलिस अस्पताल में यह पत्र भेजा गया कि "कृपया रोगी की फिर से जाच करें और बतायें कि क्या वह अब स्वस्थ हो गया है। उसका कहना है कि अब वह चगा है और काम करने योग्य है।"

बडे डाक्टर ने पत्र पर अपनी यह सम्मति लिखी "रोगी राजयक्ष्मा से आक्रान्त था उसको अस्पताल मे भर्ती करके जाच की जाय। विशेष कर मुख का तापमान देखा जाये।" चौदह दिन के परीक्षण के बाद अस्पताल से १२-७-४७ को अन्तिम रिपोर्ट आई जिसमें लिखा था "एक्सरे-परीक्षण से ज्ञात होता है कि उसे अब राजयक्ष्मा रोग नहीं है। रोगी अब नौकरी के योग्य है।"

ऐसा ही उदाहरण ठाकुर हरदेव सिंह तहसीलदार का है जो लखनऊ मेडिकल कालेज के टी० बी० वार्ड में १६ महीने तक भर्ती रहे और जब वे असाध्य रोगी करार देकर अस्पताल से हटा दिये गए तो मेरे पास आये। मैंने उन्हें प्रात मुनक्के का रस, दिन मे फल और रात्रि मे बिना नमक की सब्जी का सेवन कराया। भगवत् चिन्तन और दो वार स्नान से दो महीने के भीतर ही वे सर्वथा रोग-मुक्त हो गये और तब से आज तक उन्होंने एक दिन की भी बीमारी की छुट्टी नहीं ली है।

मानस शिक्षा के आधार पर दैहिक ताप निवारण के ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं।

"—उस समय मैं लखनऊ मे थी। वहा के एक प्रतिष्ठित चिकित्सक ने कहा—"दमा दम के साथ जाता है, औषध से थोड़े दिन के लिए भले ही कुछ आराम हो जाय।"" "" ""६ महीने (रामचरित मानस की साधना का) नियम चलाया। फल यह हुआ कि जो दमा दम के साथ जाने वाला था वह (स्वय) सदा के लिए विदा हो गया और आज २० साल से भी अधिक हो गये, मुझे एक भी दौरा नहीं हुआ।'

—श्यामा रानी, नई दिल्ली ५-

"१० वर्ष की अवस्था से ही दमा था। अब मेरी उम्र लगभग ५० वर्ष के है। अब (पूज्य योगी जी के निर्देशन मे साधना करने से) मैं अपने को पूर्ण रूप से स्वस्थ अनुभव करता हूँ। बारह बजे रात मे भी दूध, दही और मट्ठा खाकर आजमा लिया है। इनसे कोई नुकसान नहीं होता।"

—गणेशदत्त मिश्र, गणेशपुर,
नरायनपुर, नैनीताल।

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मण्डल डी-४१२।४,राजेन्द्र नगर, लखनऊ--४ द्वारा प्रकाशित तथा अवध प्रिंटिंग वर्क्स, ९० गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ मे मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तो की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियो एवं संस्थाओ से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष
परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष
कुवेर प्रसाद गुप्त

मन्त्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी, बी एस

प्रधान कार्यालय
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-१२

साधन त्रिक् के प्रयोग

सङ्कलनकर्ता –
श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३०००   मूल्य २५ पसे

मानव की मौलिक मांगें : १. शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य ।
२. इन्द्रियो में थकावट विहीन अखंड शक्ति ।
३. मन में चिन्ता रहित अखंड आनन्द ।
४. बुद्धि में भय रहित अखंड ज्ञान ।
५. अहं में द्वैत रहित अखंड प्रेम ।

पचस्तरीय विकार : १. शरीर में रोग
२. इन्द्रियो में कमजोरी
३. मन में शोक
४. बुद्धि में भय
५. अहं में वियोग

पचविकारो के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नही हैं उनमे ममत्व

विकारों का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति ।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति ।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति ।
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखंड ज्ञान की प्राप्ति ।
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति ।

मानस साधना ग्रन्थमाला पुष्प–१२

साधन त्रिक् के प्रयोग

संकलनकर्ता :—

कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्राक्कथन

कवि कुलभूषण गोस्वामी तुलसीदास जी का अमरकाव्य श्री रामचरित मानस अनेकानेक शिक्षाओं का आगार है। उन्हें यदि मानव समझकर अपने जीवन में अपनाये तो उसकी समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएँ हल हो सकती हैं और उसका जीवन सब प्रकार से सुखी हो सकता है।

गाँवों और शहरों में अखंड पाठ के आयोजन होते ही रहते हैं और बड़ी-बड़ी सभाओं में मानस-कथा की अमृत वर्षा होती रहती है, परन्तु कटु सत्य तो यह है कि इन ३६० वर्षों के पठन-पाठन के बाद भी आज मानस प्रेमियों (श्रोता और वक्ता दोनों) के जीवन में त्रिताप के नाश का आश्वासन चरितार्थ होता नहीं दीखता।

मेरा विश्वास है कि मानव को त्रिताप से मुक्ति दिलाने का मानस का दावा सच्चा है और मानस में ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, जिन्हें अपनाकर मानव रोग, दुःख और भय से मुक्त हो सकता है।

रामचरित मानस के वैज्ञानिक अध्ययन एवं मेरे तथा मेरे मित्रों के प्रयोगों से मेरी इस मान्यता की पुष्टि हुई है कि इस ग्रन्थ में प्रतिपादित दर्शन कोरी कल्पना की वस्तु नहीं बल्कि पूर्णतया व्यावहारिक है। यह अपने उन पाठकों और श्रोताओं के जीवन में आमूल परिवर्तन लाने में सक्षम है, जो इसका सिद्धान्त समझकर उसका सही प्रयोग करेंगे। मेरे बहुत से मित्रों और सह-साधकों ने रामचरित मानस में निर्दिष्ट पंचसूत्री

साधन-प्रणाली के अनुसार जो वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं, उनसे पता चलता है कि साम्प्रतिक मापदंड के अनुसार इस साधना से उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। जैसे :—

१. उनके शरीर बिना औषधोपचार के ही सभी प्रकार के रोगों से, यहाँ तक कि असाध्य रोगों से भी, मुक्त हो गये हैं। २. शक्ति प्राप्त करने के लिए उन्हें भोजन की अपेक्षा घटती जा रही है। उनमें से कुछ तो, जिनमें महिलायें भी हैं, ऐसी शारीरिक स्थिति प्राप्त कर चुके हैं कि वे अपने सारे दैनिक कार्य बिना किसी शारीरिक व्यवधान के कई दिनों तक केवल हवा के सहारे और कई सप्ताह तक केवल जल पीकर ही, करते रहने में समर्थ हैं। ३. वे लगातार १८ घंटे तक बिना बीच में जलपान की आवश्यकता अनुभव किये ही काम कर सकते हैं, फिर भी उन्हें थकावट नहीं महसूस होती। ४. उनका मन क्रमशः चिन्तामुक्त और हर प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रभाव से स्वतन्त्र होता जा रहा है। ५. वे बुद्धि में एक अलौकिक प्रकाश का अनुभव करते हैं जिससे वे अब प्रातीतिक सत्य और यथार्थ सत्य का विवेचन करने में समर्थ होते जा रहे हैं अर्थात् वे अनुभव करते हैं कि-क. भोजन शरीर-निर्माता तत्त्व है, शक्ति-दाता नहीं। ख. धन वस्तुओं को खरीदने का साधन मात्र है, आनन्ददायक नहीं। ग. पुस्तकें सूचना दे सकती हैं, ज्ञान नहीं। ६. वे स्पष्ट अनुभव करते हैं कि एक अलौकिक शक्ति है जो हमारे भाग्य का निर्माण करती है और सभी कुछ प्रभु की इच्छा से ही होता है। ७. वे धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगे हैं कि उनमें मानव मात्र के प्रति स्वतः सहज-प्रेम का जागरण हो रहा है, जिसमें जाति, मत-मतान्तर, राष्ट्रीयता एवं व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के प्रभेदों का कोई स्थान नहीं है। अविश्वासी व्यक्ति इन अनुभवों को कोरी कल्पना कह सकते हैं, परन्तु मैं बलपूर्वक दुहराता हूँ कि रामचरित मानस अपने सभी गंभीर अध्येताओं

को समन्वित विकास का विशिष्ट वरदान प्रदान करता है। आवश्यक होने तथा समुचित साधन-सुविधा की व्यवस्था होने पर इन्हें समाज के सामने भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

इन प्रयोगों को, जिनके परिणाम रामचरित मानस के त्रिताप नाश के दावों की पुष्टि करते हैं, जो वैदिक सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगों की प्रविधि 'टैक्नीक' की मोटी मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं तथा जनसाधारण की अनुभूतियों के मुकाबले आश्चर्यजनक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, 'मानस साधना मंडल' समाज के सामने इस दृष्टि से प्रस्तुत कर रहा है जिससे इस प्रकार के परिणामों की अभिलाषा रखने वाले ग्रहणशील व्यक्ति इस ओर उन्मुख हों, रामचरित मानस के सिद्धान्तों को समझने और उनकी प्रविधि के अनुसार प्रयोग करने के लिए सचेष्ट हों और बाह्य अभाव एवं आन्तरिक अशान्ति मिटा कर आनन्दमय जीवन का उपभोग कर सकें।

—हृदय नारायण

सोमवार, १४ मार्च, १९६६ ई०

मेरा साधन-त्रिक् का अनुभव

[लेखक—श्री रामेश्वर प्रसाद, रिटायर्ड पी० ई० एस०]

(सुभाष नगर, बलिया)

श्रद्धेय योगी जी के प्रवचन सुनने का सौभाग्य तो मुझे कई सालों से प्राप्त था परन्तु दो ढाई वर्षों से उस त्रिपाद साधन के अनुसार चलने का प्रयास कर रहा हूँ और अब मैं यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि उससे मुझे पर्याप्त लाभ हुआ है और इससे अधिक सफल व्यावहारिक साधन का मुझे अभी तक पता नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि भोजन से शक्ति का, धन तथा परिस्थिति से सुख का और पुस्तकों से ज्ञान का सबंध नहीं है और इस साधन-त्रिक्—सुमिरन, अभोग और उपवास के द्वारा शरीर रोग रहित, मन चिन्ता-रहित और बुद्धि भय-रहित हो सकती है। भोजन शारीरिक संगठन के लिए, धन अभाव-पूर्ति के लिए और पुस्तकों का अध्ययन जानकारी के लिए होना ही चाहिए।

साधन त्रिक् का मैं जिस प्रकार निज जीवन मे व्यवहार कर रहा हूँ उसका रूप यह है.—

१. मैं सुबह नाश्ते मे रात का भिगोया हुआ मुनक्का और एक गिलास जल मे नीबू का रस थोड़ा शहद मिला कर लेता हूँ अथवा गुड़ सौंफ का शरबत लेता हूँ। दोपहर को रोटी, सब्जी थोड़ा चावल, कभी-कभी मूँग या चने की दाल और मट्ठा लेता हूँ। भोजनोपरान्त घन्टे, डेढ़ घन्टे आराम करता हूँ। सन्ध्या समय ५-६ बजे ऋ— के अनुसार बेल का शरबत या कुछ हलका

नाश्ता और रात को थोडा फल, सब्जी और दूध लेकर १० ब
के करीब सो जाता हूँ।

२. पेंशन पाते ही उसका दशांश निकाल देता हूँ और उ
परमार्थ और सेवा-कार्य में लगाता हूँ। आय के दशांश के अति
रिक्त कुछ समय भी मुहल्ले के लडकों को पढ़ाने में तथा औ
समाज सेवा के कार्यों में लगाता हूँ।

३. सुबह ४ बजे उठता हूँ और आध घन्टे तक ध्यान कर
का प्रयास करता हूँ। एक घन्टे के करीब रामायण, गीता तथ
अध्यात्म सम्बन्धी अन्य पुस्तकों का पाठ और अध्ययन भ
करता हूँ।

यह कहने में मुझे संकोच नहीं है कि इन साधनों के फलस्व
रूप शरीर में पहले से अधिक शक्ति और स्फूर्ति मालूम होत
है। पैसे का महत्व बहुत कम हो गया है और सेवा कार्य में धन
व्यय करने में हिचक नहीं होती। ध्यान के समय मन की चच-
लता तो अभी दूर नहीं हुई है परन्तु इतना अनुभव हो रहा है
कि उसमें कुछ कमी अवश्य है और ऐसा लगता है कि साधना
सही मार्ग पर चल रही है।

बलिया १-६-६२ —रामेश्वर प्रसाद

मेरे जीवन परिवर्तन की कहानी

[लेखिका—श्रीमती अम्बेश्वरी श्रीवास्तव, क्राफ्ट टीचर]

(केन्द्रीय कारागार, नैनी—इलाहाबाद)

आदरणीय भाइयो तथा बहनो,

मैं एक सम्पन्न घराने की महिला हूँ। परन्तु भाग्य के चक्र
1 विवाह के थोड़े दिनों के ही भीतर विधवा हो गई। सारा

संसार अंधकारमय प्रतीत होने लगा। मेरे पिता जी कुछ पुराने विचार के व्यक्ति थे। अतः परदे की प्रथा का घर में काफी कड़ाई से पालन किया जाता था। यहाँ तक कि मैं स्कूल में भी शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकी। जब तक पिताजी जीवित रहे, मुझे अपना जीवन दुखी होने पर भी अपने जीवन-निर्वाह का भार-वहन करने की चिन्ता नहीं हुई। परन्तु पिता जी की मृत्यु के बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि अब अपने जीवन-निर्वाह का भार भाइयों पर न छोड़ूँ प्रत्युत अपने पैरों पर ही खड़ी हो जाऊँ। यद्यपि घर में किसी प्रकार का अभाव नहीं था, फिर भी मुझे चौबीस घंटे यही लगन लगी रहती थी और मैं चिन्ता में डूबी रहती थी।

घनघोर अंधकार के बाद ही प्रकाश की किरणें मिलती हैं। मुझे अशान्त देखकर एक दिन मेरे ममेरे भाई श्री शिव प्रसन्न नाथ जी मुझे पूज्य योगी जी के सत्संग में ले गये। वहाँ मैंने रामायण की कथा सुनी और इस ओर मेरी रुचि बढ़ी। मैं प्रायः उनके हर सत्संग में, जो प्रति रविवार को होता था, जाने लगी। उन्होंने अपने भाषणों में बताया कि भगवान ने गीता और रामायण में बार-बार आश्वासन दिया है कि जो मेरी शरण में आयेगा उसके योग और क्षेम का भार वहन करूँगा और उसके सारे पाप-ताप मिटा कर सभी प्रकार उसके काम में आऊँगा—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब बिधि घटब काज मैं तोरे॥

इन प्रवचनों का गहरा प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा, क्योंकि मैं अत्यन्त दुःखी थी। मेरा दिल और दिमाग बिल्कुल बदल गया और फिर क्रिया के स्तर पर धीरे-धीरे परिवर्तन आया। योगी जी के सम्पर्क से मेरा जितना विकास हुआ है, उसे मैं ही जानती हूँ।

इस साधना के पहले मैं हर समय दुःख और शोक में डूबी रहती थी लेकिन आज मेरे जीवन में कोई दुःख नहीं है। मैं हर प्रकार से सुखी हूँ।

शरीर के स्तर पर मुझे आये दिन नजले की शिकायत रहती थी। छींक आती थीं। खांसी और श्वास की भी तकलीफ हो जाती थी। मन में कुछ काम-काज मिलने की चिन्ता थी और बुद्धि में भविष्य के लिए सदा ही भय रहता था कि क्या होगा। मैंने अपने दुःखी जीवन तथा हृदय की लगन के बारे में श्री योगी जी से निवेदन किया और उनके बतलाये हुए मार्ग को मैंने अपनाया। भगवान् की दया से आई० टी० आई० में महिलाओं को सिलाई सिखाने की व्यवस्था, जो पहले देहरादून में ही थी, लखनऊ में भी उसी वर्ष हो गई और मुझे उसमें प्रवेश भी मिल गया। एक वर्ष की शिक्षा लेकर मैं सेकेन्ड डिवीजन में पास हो गई। ट्रेनिंग के दिनों में मुझे पचीस रुपया महीना स्टाइपेंड (Stipend) मिलता रहा परन्तु परीक्षा पास करने के बाद नौकरी की कठिनाइयों को देखते हुए मुझे ऐसा लगता था कि २५) रु० की भी नौकरी नहीं मिल पायेगी। परन्तु योगी जी के बतलाये मार्ग पर चलने से भगवान् की कृपा हुई और मुझे ६५) रू० की नौकरी मिल गई जिसमें ४) रू० सालाना तरक्की है। इस समय मुझे १०४) रू० मिल रहे हैं।

मैं सब प्रकार से सुखी हूँ। शरीर में कोई रोग नहीं रह गया है। जरा और व्याधि दोनों से मुक्ति प्रतीत होती है। मन में पूरी शान्ति आ गई है और भविष्य के लिए कोई चिन्ता नहीं है, प्रभु कृपा करेंगे, ऐसा दृढ़ विश्वास है।

साधना

जैसा ऊपर बता चुकी हूँ, मेरी शिक्षा बहुत ही थोड़ी हुई है और मुझमें किसी प्रकार की कोई योग्यता नहीं है। मैं तो केवल

योगी जी की बातों को हृदय में रखकर जो साधना कर रही हूँ वह इस प्रकार है :—

१. २४ घन्टे में प्राय: एक ही बार प्रधान भोजन (अन्न ग्रहण) करती हूँ। दूसरे समय फल या सब्जी लेती हूँ। सोते समय कभी कभी एक पाव दूध लेती हूँ।

२ अपने वेतन का पाँचवा भाग वेतन पाते ही, भगवान् के नाम पर निकाल देती हूँ और उसमें से कुछ वृन्दावन की एक संस्था में और कुछ दीन दुखियों की सेवा में तथा अन्य सेवा कार्यों में लगाती हूँ। यद्यपि योगी जी ने दसवाँ भाग ही निकालने का आदेश दिया था पर मेरे खर्च को इतना कम देखकर उन्होंने २० प्रतिशत निकालने की अनुमति मुझे दे दी है। अपने समय-शक्ति को भी यथासंभव दूसरों की सेवा में लगाती रहती हूँ।

३. लगभग आधा घंटा भगवान के नाम, रूप का सहारा लेकर शान्त होकर बैठती हूँ, और अपने को भूलने की चेष्टा करती हूँ, यद्यपि इस साधन में पूरी सफलता अभी नहीं मिली है। प्रात.काल ३ से ४ बजे के बीच उठती हूँ और यह चिंतन की साधना सूर्योदय से काफी पूर्व ही, ४ बजे तक कर लेती हूँ।

यही मेरे जीवन की साधना की कहानी है। जहाँ तक मैं समझ पाई हूँ मेरे सुखमय जीवन का यही रहस्य है कि मैं भगवान् के नाम पर अपने भोजन और धन में से निकाल कर दूसरों को बाट देती हूँ और समय निकाल कर भगवान् के नाते दूसरों की कुछ नि.स्वार्थ सेवा करती हूँ।

मैं अब सब प्रकार सुखी हूँ

(लेखक—बाबा सियाराम दास, रहवाँ, जिला रायबरेली)

सुखी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरि सरन न एकौ बाधा ॥

भगवान की कृपा से सत मिलन होता है और सत्सग द्वारा सुमिरन भजन का वास्तविक रूप ज्ञात होता है। सुमिरन भजन से सारे कष्ट मिट जाते हैं और विशेष आनन्द मिलता है।

पहले मैं बड़ा दुखी रहता था और मन में यह सोचा करता था कि भगवान इस जीवन से छुटकारा दे देता तो ठीक था। मैंने न मालूम कितना पूजा पाठ किया लेकिन शरीर और मन का कष्ट न मिटा। ६. ७ साल से उदर रोग से व्याकुल था। घी दूध खूब खाता था, लेकिन शरीर दिनों दिन पीला होता जाता था। सिर घूमा करता था, जोर से चलने पर धड़कन हो जाती थी। धीरे-धीरे पूजा पाठ भी बन्द हो गया। मैंने कई डाक्टर और वैद्यों का इलाज कराया लेकिन सफलता न मिली। एक दिन रहवाँ कुटिया के पास स्कूल में मुझे श्री योगी जी का प्रवचन सुनने का सौभाग्य हुआ। जब मैं पहुँचा, योगी जी कह रहे थे कि रामायण केवल कथा का ग्रंथ ही नहीं बल्कि मनुष्य जीवन को सर्वथा सुखी बनाने का सर्वोत्तम ग्रंथ है। उन्होंने बताया कि आमदनी का दशमांश और भोजन का चतुर्थांश निकाल कर भगवान के नाते गरीब व दुखियों को बाँट देना चाहिए। भगवान का अंश निकाले बिना जो मनुष्य भोजन और धन केवल अपने काम में लाते रहते हैं, उनके रोग, चिन्ता और भय नहीं मिटते। मन वचन और कर्म के दोषों को मिटाकर भजन करने से शीघ्र ही ईश्वर की दया होती है—

मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई।
भजत कृपा करिहहिं रघुराई ॥

ईश्वर ने हमारे सुख के लिए अनन्त उपकार किये हैं। सूर्य से प्रकाश, चन्द्रमा से शीतलता, हवा से प्राण तथा भोजन के लिए फल दूध और अनेकों प्रकार के साग सब्जी पैदा किये हैं। हमें चाहिए कि ईश्वर के नाम पर समय, शक्ति, धन और भोजन का दान करें। यह रामायण मे प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्त है। मेरा अनुभव है कि जो लोग इस प्रकार भगवान के व्यापकत्व का आदर करते हैं उनके दु:खों का नाश हो जाता है।

उन्होंने यह भी कहा कि रामायण मे सुमिरन का अर्थ प्रभु की याद में अपने को भूलना है और अपने समय, शक्ति, धन, तथा भोजन का प्रभु के नाते वितरण भजन है। अनेक चौपाइयों और श्लोकों द्वारा उन्होने इस कथन की पुष्टि की। प्रवचन सुनने से शरीर और मन मे एक प्रकार की शक्ति आई। दिन के प्रकाश से जैसे अन्धकार का नाश हो जाता है उसी प्रकार श्री योगी जी की शरण मे जाने से मेरे दुख मिट गये। मेंने उसी दिन से भोजन का चतुर्थांश और आमदनी का दशमांश निकालना और वितरण करना शुरू कर दिया।

कुछ प्रसाद बच्चो को बांटने लगा और कुछ धन गरीबों के हित मे लगाने लगा। दरिद्र मे नारायण, बाल में गोपाल, संत मे भगवंत और जनता मे जर्नादन हैं—इसी श्रद्धा और विश्वास से भगवान के नाते इन्हीं में वितरण करता हूँ। थाली का निकाला हुआ भोजन किसी गाय या कुत्ते को दे देता हूँ। दोपहर तक कुछ नहीं खाता, उसके बाद फल और थोड़ा साग खाता हूँ। शाम के भोजन के साथ कुछ कच्ची चीजें जैसे गाजर, टमाटर, मूली आदि का सलाद बनाकर खाता हूँ। भोजन घटाने से जो बचता है उसे बांट देता हूँ। सप्ताह मे एक दिन केवल जल पीकर उपवास करता हूँ। मैंने प्रात:काल ध्यान का अभ्यास भी आरंभ किया और योगी जी से पुन: भेंट होने पर मैंने उन्हें आमदनी,- भोजन और दशांश आदि का ब्यौरा लिख कर दिया। श्री योगी-

-जी के बताये ज्ञान के प्रबल तेज में इन्द्रियों का वेग भस्म हो गया और ध्यान में मेरा मन रुकने लग गया और मेरे सभी दुख मिट गये।

प्रात: जब ध्यान में बैठता हूँ तो बिना रसना चलाये मन्द-मन्द राम नाम की आवाज ध्वनि मंडल में गूँजती रहती है। कुछ दिन से ध्यान के समय जब नाम की अटूट डोरी बन जाती है और मन एकाग्र हो जाता है, तब मन और पवन की गति रुकने के कारण कुंडलिनी शक्ति का जागरण होने लग जाता है। पवन बड़े वेग से ऊपर उठता है और नेत्रों के सामने से जैसा परदा हट जाता है। सभी पेड़, जंगल, नदी, मकान दूर-दूर की चीजें नजर आने लगती हैं। बन्द नेत्रों के सामने बदली ऐसा दिन प्रतीत होता है। आँखें बन्द करने पर भी प्रकाश मालूम पड़ता है और जितनी देर मन रुकता है, प्रकाश बढ़ता जाता है। एक दिन एकाएक बहुत तेज प्रकाश हुआ जो चन्द्रमा की तरह था। ऐसे अनेक प्रकार के अनुभव ध्यान करते समय होते रहते हैं।

संक्षेप में मेरा जीवन सर्वथा बदल गया है। एक दिन था जब मेरा लिवर (जिगर) बहुत बढ़ जाने के कारण भूख ही न लगती थी, फिर भी स्वाद के वश तीन बार खाता था। डाक्टरी के इन्जेक्शन बेकार सिद्ध हो गये थे, जीवन भार रूप था, मन में असह्य दुःख था और मृत्यु द्वारा ही दुखों का अंत होगा ऐसा समझता था। भजन करने बैठता था तो मन मारा-मारा फिरता था। जब विचार आता था कि जिस काम के लिए बैठा हूँ उसको भूल कर कहाँ भटक गया तो पश्चाताप होता था। यहाँ तक कि मन से हार मान गया था। सब उपाय करके थक गया था।

पर संत-कृपा का यह प्रताप है कि आज भोजन बहुत सूक्ष्म, निर्वाह मात्र के लिए करता हूँ। मन सर्वथा शांत है। ध्यान में

आत्म-विस्मरण हो जाता है। भगवान की कृपा में अटूट विश्वास है। एक दिन कुटिया पर अखंड रामायण का आयोजन था। खर्चे में कुछ कमी हो गयी पर भगवान को छोड़कर आदमी से आशा करना गुनाह मानता हूँ। प्रातःकाल समय से पहले ही एक व्यक्ति आवश्यक धन जन-सेवार्थ दे गया। इसी तरह सदा ही मदद होती रहती है। अब सब प्रकार से सुखी हूँ।

तपस्या का फल

(लेखिका—श्रीमती श्यामा रानी, ८/१० वे० ए० एरिया, करोलबाग, नई दिल्ली—५)

तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥

वैसे तो इस जीवन में बहुत बड़ी-बड़ी बातें हो चुकी हैं और भगवत् लीला का जो साक्षात्कार हुआ है वह बहुत अंशों में व्यक्तिगत-सा है, पर कुछ छोटी-मोटी बातें समाज के समक्ष भी प्रस्तुत की जाती हैं जिनसे कदाचित् कोई भाई-बहन लाभ उठा सकें।

जब मेरा विवाह हुआ था तो मेरा शरीर देखने में बहुत स्वस्थ्य था परन्तु भीतर मलभार था, जिसे मैं जान ही न पाती थी। पतिदेव (पूज्य योगीजी) की बात सुनकर कि शरीर को उपवास द्वारा मल-रहित करो, हैरानी होती थी। कुछ दिनों बाद मैं जुकाम खाँसी से पीड़ित हुई। उसके निवारणार्थ मैंने जो औषधि सेवन की, उससे मुझे भयंकर दमा हो गया। चौदह वर्ष तक इस भयानक रोग से पीड़ित रही। जाड़ा, गर्मी, वर्षा किसी ऋतु में भी चैन नहीं था। जीवन से मृत्यु अधिक सुखद प्रतीत होने लगी, क्योंकि किसी समय दौरा हो जाता और तब सांस

रुकने लगती, थी। उस समय मैं लखनऊ थी। वहां के एक प्रतिष्ठित चिकित्सक ने कहा "दमा दम के साथ जाता है औषधि से थोड़ी देर के लिये भले ही कुछ आराम हो जाय।"

मैंने पतिदेव के जीवन मे विवाह के दिन से ही कठोर तप की रूप-रेखा देख रक्खी थी। अत: वही मार्ग अपनाने का निश्चय किया। ६ महीने के लिये अनाज, नमक, चीनी, दूध आदि सब छोड़ दिया। दिन मे पालक, गाजर, टमाटर आदि कच्ची सब्जियां और संध्या को बिना नमक की पकी सब्जी खाना आरम्भ किया। ६ महीने यही नियम चलाया। फल यह हुआ कि जो दमा दम के साथ जाने वाला था वह सदा के लिये विदा हो गया और आज २० साल से भी अधिक हो गये, मुझे एक भी दौरा नहीं हुआ। मैं तो भूल ही गई हूँ कि कभी मुझे दमा था और अब रात्रि में भी दही, मूली, अमरूद, खीरा आदि खाने मे डर नहीं लगता। कोई परहेज करने की आवश्यकता नहीं रही।

अत: मेरा दृढ़ विश्वास है कि तप के आधार पर दमा सरीखा भयंकर रोग ही नहीं बल्कि समस्त असाध्य कहे जाने वाले रोग ठीक हो सकते हैं। एक छोटी बात इस सम्बन्ध मे विशेष जानने की है। भोजन के संयम से जिस मल का उभाड़ होता है उसे बाहर निकालना अत्यंत आवश्यक है और उपवास के साथ एनिमा का प्रयोग करना चाहिए। जिन भाई बहनों को यह भ्रम हो कि एनिमा की आदत पड़ जाती है, उन्हे मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकती हूँ कि यदि एनिमा सादे, ठंढे और थोड़े (पाव भर) पानी का लिया जाय तो कभी आदत नहीं पड़ सकती। मैंने तो नित्य एक वर्ष तक बिला नागा एनिमा लिया है फिर भी कभी आदत नहीं पड़ी, वरन् आंतें इतनी बलवान हो गई हैं कि आज ५७ वर्ष की अवस्था के बावजूद कभी कब्ज नहीं होता। नित्य

प्रात: ४ बजे ही साफ शौच होता है और हर समय काम करने की रुचि बनी रहती है। आलस्य का नाम नहीं है।

अब मेरे भोजन का क्रम प्राय: यह रहता है कि दो बजे तक कुछ नहीं खाती। चाय, नाश्ता आदि की प्रथा तो अपने कुटुम्ब में ही नहीं है। दोपहर में सब्जी खाई तो रात्रि में दूध अथवा यदि कभी अन्न लिया तो पाँच या सात तोले से अधिक नहीं। भोजन से शरीर स्वतन्त्र है। भोजन न करें तो पता ही नहीं चलता कि नहीं खाया है। विलक्षण अनुभूति है पर अक्षरश: सत्य है।

युवा अवस्था में शीत काल में प्राय: गरम पानी से नहाया करती थी, पर अब दिल्ली की ठंडक में भी तिमंजिले पर रहती हूँ और ठंडे जल से स्नान करती हूँ। सर्दी-गर्मी का प्रभाव बहुत कम हो गया है।

अन्तिम निवेदन यह है कि शरीर को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। यह तो यहीं पर रह जाने वाला है। इसकी बहुत सेवा अविवेक का प्रमाण है।

सेवहिं लषनु सीय रघुबीरहि।
जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि॥

अत: आध्यात्मिक विकास के लिये अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए। इस दिशा में सबसे अधिक सहायक नाम जप और ध्यान का अभ्यास है। मैं सतत नाम जप का अभ्यास कर रही हूँ और ध्यान में तो कभी-कभी दूर की घटनायें भी प्रत्यक्ष दीखती हैं। उदाहरण स्वरूप पाठकों के सूचनार्थ यहाँ एक घटना का उल्लेख करती हूँ :—

मेरा ऐसा नियम सदा ही से रहा है कि पतिदेव को खिलाये बिना कभी नहीं खाती। एक दिन रात्रि में मुझे कुछ भूख मालूम हुई। (यह कुछ वर्ष पूर्व की बात है अब तो भूख पर पूरा अधिकार हो गया है)। तो भूख लगने पर सोचने लगी कि पतिदेव

अभी नहीं आये, उन्हे खिलाये विना कैसे खाऊँ ? उसी समय आँख मूँदकर वैठी और ध्यान करने लगी। देखा कि पतिदेव एक मित्र के घर पूड़ी आदि खा रहे हैं। तब मैंने भी भोजन कर लिया। उनके आने पर मैंने सारी बात कही तो उन्होंने कहा "ध्यान द्वारा यह जान लेना तो साधारण बात है। ध्यान का मुख्य फल अहंकार का विलय है जिससे ज्ञान और प्रम की प्राप्ति होवे।"

ऐसे ही एक बार अपने एक परपौत्र की बीमारी का समाचार पाकर मैंने ध्यान द्वारा देखा—वह ३०० मील की दूरी पर था—कि वह आँगन में खड़ा है, बहुत दुबला हो गया है और अपनी माता से कुछ बात कर रहा है। ऐसी अनेक घटनायें मेरे जीवन मे हुई हैं परन्तु ध्यान तो आत्म-विस्मरण एव प्रभु प्रेम प्राप्ति के लिये ही होना चाहिये ऐसी छोटी बातो के लिये नहीं।

प्रार्थना में कितना वल है इसका भी मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है। कई बार सर्वथा अनहोनी बातें भी प्रभु प्रार्थना से मैंने घटित होते देखी हैं। कहाँ तक कहूँ, प्रभु तो कृपा करने मे अघाते ही नहीं।

"जासु कृपा नहिं कृपा अघाती"

श्री कुवेर प्रसाद गुप्त, सहायक मत्री, मानस साधना मडल, डी-१२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित तथा नव भारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

—:*:—

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तो की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशाति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने मे सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियो एवं संस्थाओ से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष
परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष
कुवेर प्रसाद गुप्त

मन्त्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी ,बी एस.

प्रधान कार्यालय .
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

[illegible] -१३

तीन साधकों के अनुभव

संकलनकर्ता :-
श्री कुवेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्रथमावृत्ति ३०००

मूल्य ३५ पैसे

मानव का मौलिक मांग : १. शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य।
२. इन्द्रियो मे थकावट विहीन अखड शक्ति।
३. मन मे चिन्ता रहित अखड आनन्द।
४. बुद्धि मे भय रहित अखंड ज्ञान।
५. अहं मे द्वैत रहित अखड प्रेम।

पंचस्तरीय विकार : १. शरीर मे रोग
२. इन्द्रियो मे कमजोरी
३. मन मे शोक
४. बुद्धि मे भय
५. अहं मे वियोग

पंचविकारो के कारण : १. औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२. भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३. धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५. जो वास्तव मे अपने नही हैं उनमे ममत्व

विकारों का निवारण : १. सतुलित आहार द्वारा अखड स्वास्थ्य की प्राप्ति।
२. युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखड शक्ति की प्राप्ति।
३. विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखड आनन्द की प्राप्ति
४. विधिवत् ध्यान द्वारा अखड ज्ञान की प्राप्ति
५. सर्वभावेन् आत्मसमर्पण द्वारा अखड प्रेम की प्राप्ति।

मानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प—१३

तीन साधकों के अनुभव

संकलनकर्ता —
श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तिका मे मेरे कुछ मित्रो एव सह साधकों ने अपनी साधना सम्बन्धी अनुभूतियों का उल्लेख किया है तथा अपनी धारणा और मान्यता के अनुरूप उन्होंने जैसी साधना की है, वैसी उपलब्धियाँ भी उन्हे प्राप्त हुई हैं।

इन लेखों मे मेरी व्यक्तिगत प्रशसा में जो वाक्य कहे गये हैं, उनके मूल मे उनकी अपनी श्रद्धा और उदारता ही है, मेरी योग्यता नहीं। वस्तुत: मेरे भीतर किसी प्रकार की योग्यता नहीं है, इसे मैं शपथपूर्वक कहता हूँ :—

"शंकर साखि जो राखि कहौं कछु, ता जरि जीह गरी।"

साधकों को, जो भी लाभ हुआ है अथवा हो रहा है उसका कारण, उनका उस श्रुति प्रतिपादित विकारवाद के सिद्धान्त के प्रति अटूट विश्वास अथवा अबाधित ज्ञान है, जिसकी मैं चर्चा करता हूँ।

यदि इस 'साधन-पथ' को मानव अपना सके तो उसके व्यक्तिगत जीवन में शक्ति, आनन्द और ज्ञान का संचार होकर उसके रोग, दुख और भय मिट जायगे। साथ ही उसका सामूहिक जीवन धन धान्य से ऐसा सम्पन्न होगा कि शेष शारदा भी उसका वर्णन करने में असमर्थ हो जाय।

अत: किसी व्यक्ति को केवल मेरा सहारा लेकर साधना करने की बात सोचना उचित नहीं।

लखनऊ।   —हृदयनारायण

२१ मार्च, १६६६,

मेरा अनुभव

(लेखिका—श्रीमती आशा देवी, द्वारा डा० चन्द्रदीप सिंह,
एम. बी , बी. एस, नवानगर, बलिया)

मेरे पतिदेव (डा० चन्द्रदीप सिंह) श्रद्धेय योगी जी के अनन्य भक्त हैं और उन्हें मानस में प्रतिपादित सिद्धान्तों को भली भाँति समझने तथा अपने जीवन में प्रयोग करने की लगन है। वे करीब आठ साल से साधना कर रहे हैं। शुरू में तो मुझे उनकी साधना में कोई दिलचस्पी नहीं थी, किन्तु उनके दिन में भोजन न करने से मुझे भी दिन का खाना अच्छा नहीं लगता था। मैं खाऊँ और मेरे देवता न खायें— इससे मुझे कुछ ग्लानि महसूस होती थी। यद्यपि वे दिन में कुछ फल, कुछ पत्तियाँ और कुछ उबली तरकारी भी कुछ दिनों तक लेते रहे, फिर भी अन्न के परित्याग से मुझे लगता था मानो वे कुछ नहीं खा रहे हैं और इसी कारण मुझे दिन में अन्न ग्रहण करना अच्छा नहीं लगता था।

इस बात के अतिरिक्त उनकी साधना से मुझे और किसी तरह की परेशानी नहीं हुई। मैं तो सदा भगवान् से यही मनाती रही कि उनकी साधना सफल हो और वे मानव मात्र के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकें। उन्होंने कभी भी मुझे साधना करने को बाध्य नहीं किया और न मैंने ही कभी उनसे मानस की जीवनोपयोगी साधना के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहा— मुझमें उस समय तक ऐसी जिज्ञासा ही नहीं उत्पन्न हुई जब तक

रे जीवन में स्वयं एक जटिल समस्या नहीं आ खड़ी हुई। फिर
ी, अपने देवता के नाते, मैंने उनकी साधना में किसी प्रकार
ी रुकावट नहीं आने दी, बल्कि मुझसे जहाँ तक बन पड़ा मैंने
नकी साधना मे सहयोग ही प्रदान किया।

इस तरह पूरे तीन वर्ष बीत गए। वे रामायण की साधना
े पथ पर अग्रसर होते गए और भगवान की दया से यह
अवस्था भी आई जब उन्होंने अपने ही शरीर के ऊपर यह
सफल प्रयोग करके मुझे दिखला दिया कि मानव शरीर के लिये
भोजन का उतना महत्व नहीं है, जितना आज का मनुष्य समझ
रहा है। वे दो नवरात्रों में केवल पानी पर जीवन निर्वाह करते
हुए अपना सारा काम करते रहे। मुझे आश्चर्य तो यह देखकर
होता रहा कि नवरात्रों में केवल सादे पानी पर रहकर वे और
दिनों की अपेक्षा अधिक शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक
काम करते रहे। इस विलक्षण बात से मैं मन ही मन बहुत
प्रभावित हुई। पर मैंने उनसे कभी यह जाहिर नहीं किया। अब
तो भगवान की दया से, वे साल के दोनों नवरात्रों में केवल जल
ही लेते हैं और अपना काम-धंधा पूर्ववत् करते रहते हैं। इसमें
उन्हें किसी प्रकार की कोई अड़चन नहीं होती।

एक दिन की बात है, मैं कब्ज से बहुत परेशान हो गई थी।
यह बतला देना जरूरी है कि बचपन से ही मुझे कब्ज की
शिकायत थी और इसके लिये मैंने अंग्रेजी और आयुर्वेदिक
औषधियों का काफी सेवन भी किया था। पर मेरा कब्ज दूर न
हो पाया। जिस दवा से कुछ लाभ होता था, वही दवा कुछ दिनों
बाद बेकार सिद्ध होती थी। वर्षों से यही क्रम चलता रहा।
यद्यपि मैं भोजन बराबर करती रही, फिर भी मुझे आठ-आठ
दस दस दिनों तक शौच नहीं होता था। उस दिन कब्ज से मैं
बहुत परेशान थी—कई दवाओं के सेवन करने पर भी जब मुझे

शौच नहीं हुआ, तो मैं रोने लगी। बहुत व्याकुल होकर अपने पतिदेव से मैंने यों कहा—"आप दुनिया की दवा करते हैं पर मेरे लिये कुछ नहीं सोचते—मालूम होता है कि मैं इसी तरह मर जाऊँगी।" इस पर उन्होंने मुझे काफी सान्त्वना दी और कहा कि कब्ज की सारी दवाओं को तो तुमने आजमा कर देख लिया और उनसे जो लाभ हुआ वह भी तुम भली भाँति जानती हो। इस समय विशेष कष्ट है तो सादे जल का एनीमा ले लो। पर यदि चाहती हो कि कब्ज सदा के लिये दूर हो जाय तो तुम अपने जीवन में मानस के साधन त्रिक—उपवास, सेवा और चिन्तन—अपनाओ, जिससे कब्ज ही नहीं, शरीर के हर रोगों से तुम्हें मुक्ति मिल जाय और तुम्हारा जीवन मंगलमय हो जाय।" ये बातें मेरे दिल में बैठ गई और मैंने उसी दिन से अपना भोजन घटाना प्रारम्भ कर दिया और धीरे धीरे कुछ दिनों में मैं केवल रात को ही मुख्य भोजन करने लगी। अभी भी मैं नियमित रूप से दिन में मौसम के थोड़े फल या सब्जी और अन्न रात को ही ग्रहण करती हूँ। इससे मुझे काफी लाभ हुआ है और श्रद्धेय योगीजी की रामायण की वैज्ञानिक व्याख्या में अब रुचि उत्पन्न हो गई है। इस तरह भगवान् की दया से अपने जीवन में उपवास, सेवा और चिंतन का सहारा पकड़ कर मैं भी अब मानस की साधना के पथ पर धीरे धीरे पैर रख रही हूँ।

ऊपर बतला चुकी हूँ कि मेरे पतिदेव नवरात्रों में केवल पानी पर ही रहकर अपना सब काम विधिवत् करते रहते हैं। वर्षों से उन्हें ऐसा करते देखकर मेरे मन में भी आया कि मैं भी पानी पर ही रहकर अपनी गृहस्थी का काम करके देखूँ। इस उत्सुकता की पूर्ति के लिये मैंने दृढ़ निश्चय करके भगवान् के सहारे १९६२ ई० के आश्विन के नवरात्र का व्रत केवल पानी पर प्रारम्भ कर दिया। व्रत तो मैंने शुरू कर दिया, परन्तु खाली

पानी मुझसे पीते ही नहीं बना। सादा पानी मेरे गले के नीचे उतरता ही नहीं था। कारण कि बचपन से ही मेरी आदत कुछ खाकर पानी पीने की थी या उसमें कुछ डालकर उसे ग्रहण करती थी। मैं बहुत परेशान हुई और मैंने अपने पतिदेव से पूछा कि अब क्या करूँ? उन्होंने कहा कि एक गिलास पानी में एक चम्मच शहद और थोड़ा सा कागजी नींबू का रस डालकर पिया करो। अतः इनके कहने पर मैंने पानी में एक चम्मच शहद और थोड़ा सा कागजी नींबू का रस निचोड़ कर लेना शुरू किया और दिन में दो बार सादे पानी का ऐनीमा लेती रही। इसी आधार पर पूरे नौ दिनों तक रही और अपनी गृहस्थी का सारा काम काज करती रही और अपने छोटे बच्चे को अपना दूध भी पिलाती रही। बच्चे के दूध में न तो कोई कमी हुई और न मुझे किसी प्रकार का कष्ट हुआ। इसी तरह पिछले दो नवरात्रों से व्रत करके मैंने अनुभव किया है कि इससे शरीर ठीक रहता है—किसी प्रकार की कमजोरी नहीं महसूस होती—मन काफी शान्त रहता है और काम करने में मन लगता है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इन दिनों भगवान् का ध्यान करते समय चित्त भली-भाँति एकाग्र हो पाता है।

अब भगवान् की दया से मेरी समझ में यह बात खूब अच्छी तरह आ गई है कि भोजन से काम करने की शक्ति नहीं मिलती। आज के मानव को यह बेकार का भ्रम है कि यदि नहीं खावेंगे तो काम नहीं कर सकेंगे। उसका यह भ्रम तो मेरे समझाने की अपेक्षा भगवान् की दया से इन बातों को स्वयं अपने जीवन में अनुभव करके देखने से दूर हो सकेगा। पर इसके लिए उसके जीवन में कोई गम्भीर समस्या का होना आवश्यक है, ऐसा मुझे लगता है। कारण यह है कि मैं तीन वर्षों से श्रद्धेय योगीजी की बातों को सुनती रही हूँ और अपने पतिदेव को उन सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणत करते हुए भी देखती रही हूँ, पर जब

(

तक मेरे सामने कब्ज के रूप में समस्या नहीं खड़ी हुई, तब तक इस दिशा में मेरी रुचि उत्पन्न नहीं हो पाई और जब तक मन इन बातों को नहीं ग्रहण करे, तब तक केवल देखा देखी करने में कोई लाभ नहीं होता।

मेरी साधना

(लेखक—डा० चन्द्रदीप सिंह, एम० बी०, बी० एस०, ।कित्सक, राजकीय चिकित्सालय नयानगर, बलिया प्रबन्धक, म दहिनसिंह विद्यालय, आमघाट, बलिया।

४ अक्तूबर सन् १९५८ ई० की बात है। उन दिनों मैं ल्मोड़े में था। अपने मित्र, पं० कीर्ति वल्लभ तिवारीजी, वकील पता चला कि उस दिन संध्या के ६ बजे श्री बद्रेश्वर जी के दिर में पूज्य योगीजी (श्री हृदय नारायणजी) का प्रवचन ।योजित है। वकील साहब के आग्रह पर ही मैं प्रवचन सुनने या क्योंकि योगीजी से मेरा पूर्व-परिचय नहीं था और न उनके म्बन्ध में मुझे कोई जानकारी ही थी। मैं तो नियमित रूप से ।ान के पश्चात् रामायण के कुछ दोहे पढ़ लिया करता था, स इतना ही। उनका प्रवचन सुनने का सौभाग्य और अवसर मुझे पहली बार प्राप्त हुआ था और जीवन में पहली र उनसे मुझे यह पता चला कि तुलसीकृत रामायण कोरी ।र्मिक या साहित्यिक पुस्तक ही नहीं है बल्कि एक सार्वभौम र्व सर्वोत्तम ग्रन्थ है, जिसमें पौराणिक आख्यायिकाओं के रूप जीवनोपयोगी दर्शन ही प्रतिपादित है। उन्होंने कहा कि ।नस में स्थान-स्थान पर यह दावा दुहराया गया है कि जो ।क्ति इस पुस्तक को प्रेमपूर्वक पढ़े, सुनेगा और भली प्रकार

समझ कर उसके अनुसार आचरण करेगा, उसके सब प्रकार के दुख मिट जायेंगे और उनका जीवन मंगलमय हो जायेगा :—

जे एहि कथहिं सनेह समेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी।
कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

परन्तु आज देखने में यह आ रहा है कि विक्रम संवत् १६३१ में लिखी गयी इस रामायण का भारतवर्ष में राजमहल से लेकर झोपड़ी तक पठन पाठन हो रहा है फिर भी इसके पढ़ने वालों की छाती पर दुःख लदा हुआ है, उनके जीवन से अशान्ति और अभाव, रोग और चिन्ता मिटती हुई नहीं दिखाई देती। इसका एक मात्र कारण श्रद्धेय योगीजी ने यह बताया कि मानस की मौलिक विचारधारा अब तक लोग नहीं समझ सके हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि तुलसीदास जी ने श्री रामचरित मानस के प्रारम्भिक श्लोकों में ही अपनी ओर से इस पुस्तक के सम्बन्ध में कहा है :—

नानापुराण निगमागमसम्मतम्

अर्थात् 'मानस' पुराण, निगम और आगम से सम्मत है। कहने का तात्पर्य यह है कि रामायण में कथानक के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन है और इन सिद्धान्तों को जीवन में अनुभव करने के लिए सुगम प्रणाली भी बतायी गयी है। उन्होंने यह भी बताया कि रामायण का पौराणिक अंश बहुत रोचक और आकर्षक है जिसके पढ़ने या सुनने से पाठक या श्रोता का उत्तम मनोरंजन होता है :—

श्रवण सुखद अरु मन अभिरामा।

परन्तु इसका सिद्धान्त अत्यन्त जटिल है और बहुत बार सुनने पर थोड़ा समझ मे आता है। यही गोस्वामीजी के निम्न शब्दों का भाव है :—

तदपि कही गुरु बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा।

परन्तु एक बार मानस का जीवनोपयोगी सिद्धान्त भली प्रकार समझ लेने पर उसकी साधना काफी सुगम मालूम देती है :—

सुगम उपाय पाइबे केरे।

पूज्य योगीजी ने बताया "श्री रामचरित मानस का मौलिक सिद्धान्त वेदों मे वर्णित विकारवाद का ही सिद्धान्त है जिसके अनुसार भोजन से शक्ति, धन से सुख और पुस्तकों से ज्ञान नहीं प्राप्त होता। सच तो यह है कि शरीर, मन और बुद्धि में जो विकार मल, विक्षेप और आवरण के रूप में संचित हैं, उनके ही कारण ऐसी प्रतीति होती है कि शक्ति, आनन्द और ज्ञान का सम्बन्ध भोजन, धन और अध्ययन से है। वस्तुतः शक्ति, ज्ञान और आनन्द के स्रोत तो सत् चित् आनन्द स्वरूप भगवान ही हैं और भगवत् प्रकाश प्राप्त होने पर यह भ्रम मिट जाता है कि शक्ति, आनन्द और ज्ञान का सम्बन्ध भोजन, धन और अध्ययन से है। मानस की इन पंक्तियों मे इसी तथ्य का उल्लेख है :

झूठउ सत्य जाहि बिनु जाने।
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण में पुराण, निगम और आगम का जो अंश है वह क्रमशः सुनने, समझने और करने से सम्बन्धित है और जो मनुष्य रामायण पढ़ेगा या

सुनेगा, इसका सिद्धान्त समझेगा और उसे अपने जीवन में उपलब्ध करने के लिए इस पुस्तक में वर्णित साधना को अपनायेगा, उसके सारे दुख मिट जायेंगे और जीवन बदल जायगा।"
इतना कहने के बाद श्रद्धेय योगीजी ने कहा, "आज रामायण के पढ़ने वाले यह आशा ही नहीं करते कि इसके अध्ययन से उनके सारे दु:ख मिटेंगे, इसी से उन्हें जीवन में परिवर्तन न होने से कोई असन्तोष नहीं होता :—

जब तवक्का ही उठ गई ग़ालिब।
क्या किसी का गिला करे कोई॥

यदि उन्हें विश्वास होता कि मानस की फलश्रुति सही है और उसे पढ़कर वे अवश्य सुखी हो सकते हैं, तो कुछ दिनों तक पढ़ने के पश्चात् वे निश्चय ही सिंहावलोकन करते और यह पता लगाने का प्रयत्न करते कि आखिर इतनी बार रामायण पढ़ने पर भी उनके जीवन से दुःख क्यों नहीं मिट रहा है। उनके रामायण पढ़ने में कहां पर क्या गलती हो रही है जिससे उसमें वर्णित फलश्रुति उनके अनुभव में नहीं आ रही है।

पूज्य योगीजी ने जोरदार शब्दों में स्पष्ट कहा "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानस के जीवनोपयोगी सिद्धान्तों को भली-भांति समझ कर और उसमें वर्णित साधना को अपने जीवन में अपना कर मनुष्य हर प्रकार के दु:खों से मुक्त हो सकता है और अपने भीतर अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनंद, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम का अनुभव कर सकता है।" उन्होंने कहा कि वे रामायण के एक साधारण विद्यार्थी मात्र ही हैं और अपने गुरु की कृपा से जो कुछ समझ पाये हैं उसे लोगों के सामने रख रहे हैं और यदि थोड़े व्यक्तियों को भी उनके गुरु की बताई हुई मानस की मौलिक विचारधारा समझ में आ गयी तो वे अपना जीवन सार्थक समझेंगे।

इतना सुनने के बाद मेरे दिल और दिमाग में खलबली

और श्रद्धेय योगीजी द्वारा बताए हुए रामायण की
चारधारा को समझने की प्रबल इच्छा जागृत हुई।
बात् उन्होंने क्या कहा, इसका मुझे पता नहीं। मुझे
व बेचैनी पैदा हुई और मैं उनके प्रवचन की समाप्ति
ा करने लगा ताकि मैं उनसे मिलकर अपनी समस्याओं
ान के लिये मानस के सिद्धान्त और उसका प्रयो-
ाधन भली-भाँति समझ सकूँ। जैसे ही उनका प्रवचन
ुआ, मैं लपक कर उनके पास गया और मैंने अपनी
वं समस्यायें स्पष्ट रूप से उनसे निवेदन की! उन्होंने
ं प्रातः ४ वजे मुझे अपने पास बुलाया। उस रात को
नहीं आई और बराबर यही चिन्ता बनी रही कि कब
ोर श्रद्धेय योगीजी के पास जाकर अपनी सारी
ों के समाधान के लिये मानस में प्रतिपादित सिद्धान्त
हूँ और उसके अनुसार अपने जीवन मे साधना अप-
किसी तरह वह लम्बी रात कटी और स्नान पूजन
४ वजे प्रातः अल्मोड़ा के तहसीलदार, ठाकुर हरदेव
निवास स्थान पर, जहाँ श्रद्धेय योगीजी ठहरे हुए थे,
उस समय वे भी पूजन आदि से निवृत्त होकर साधकों
का उत्तर लिख रहे थे। मेरे पहुँचते ही उन्होंने कहा,
ाक्टर साहब! आ गये? आओ, बैठो, कहो क्या
?" उनकी आज्ञा पा, आसन ग्रहण कर मैंने अपनी
मस्यायें उनके सामने रख दीं और उनका हल पूछा।
योगीजी ने रामायण का सिद्धान्त समझाते हुए उसमें
साधन-त्रिक् को मुझे अपने जीवन में प्रयोग करने की
दी। साधन-प्रणाली का विस्तृत विवेचन करते हुए
कहा कि अपने भोजन को धीरे धीरे घटाते हुए रात को
्ही प्रधान भोजन करना है, अपनी आमदनी का दशांश
र के नाम पर निकालकर उसे भगवान के ही नाते, निः-

स्वार्थ भाव से, उन पर खर्च करना है जिनका 'मैं, मेरा' मिट गया है। छोटे अबोध बालक, दीन दुःखी तथा साधुजन पर ही यह रकम खर्च करनी चाहिये क्योंकि बालकों में अवस्था के कारण, दुःखियों में परिस्थिति के कारण और साधुजनों में साधना द्वारा 'मैं, मेरा' नहीं रहता है। इन तीनों पर अथवा किसी सार्वजनिक हित के कार्य में उसका उपयोग हो सकता है। ४ बजे प्रातः उठकर किसी लकड़ी की चोकी (तख्त), कुशासन, कम्बल या मृगचर्म पर पूर्व या उत्तर मुख करके या भगवान के किसी विग्रह के सम्मुख बैठकर भगवान के किसी भी नाम या रूप का स्मरण करते हुए अपने शरीर, मन और बुद्धि की चंचलता को कम से कम ३० मिनट तक रोकने का अभ्यास करना चाहिये। इसमें अपने को सर्वथा निष्क्रिय बना देना है। यही उपवास, सेवा और चिन्तन की साधना है जिसे मानस में उपवास, अभोग और सुमिरन कहा गया है। इतना समझाने के बाद श्रद्धेय योगीजी ने मुझसे पूछा:—"कुछ समझ में आया ?" मैंने उत्तर दिया कि कुछ समझ में आया तो है पर कितना समझ सका हूँ, यह तो कुछ दिनों की साधना के बाद ही आप जान सकेंगे। इसके पश्चात् प्रस्थान करने के लिये वे अपना सामान ठीक करने लगे। पूछने पर पता चला कि उस दिन शाम को किसी दूसरे शहर में उनका प्रवचन निश्चित है। अपना सामान ठीक करके श्रद्धेय योगीजी ने एक 'डोटियाल' (कुली) के सिर पर सामान रख दिया और वे बस स्टेशन की ओर चल पड़े। मैं भी उनके साथ हो लिया और उन्हें मोटर में बिठा कर उनसे विदा ली।

घर लौटते समय रास्ते में ही मैंने यह निश्चय किया कि उसी समय से मैं रामायण की साधना को अपने जीवन में प्रयोग करूँगा। फलतः घर पहुँचते ही मैंने अपनी माता और धर्मपत्नी को श्रद्धेय योगीजी से हुई अपनी वार्ता

समझाया और अपना निश्चय भी उन्हें बतला दिया। मेरी धर्मपत्नी ने मेरी बातों का सहर्ष समर्थन किया और मेरी वृद्धा माताजी, मेरे जीवन को हर तरह से सुखमय बनाने की इस साधना को अपनाने पर कुछ खुश होती हुई दीख पड़ीं, परन्तु शक्ति और स्वास्थ्य के लिये भोजन घटाने की बात, भगवान के नाते अपनी आमदनी का दशांश निकाल कर सुख प्राप्त करने का सिद्धान्त तथा सर्वथा निष्क्रिय होकर ज्ञान हासिल करने की साधना उनकी समझ में नहीं आई। इकलौते पुत्र से काफी ममता होने के कारण उन्होंने कुछ कहा तो नहीं पर मन ही मन वे असन्तुष्ट हुई और श्रद्धेय योगीजी पर तो वे बहुत ही नाराज हुईं क्योंकि उन्हें यह भ्रम हुआ कि उन्होंने मुझे भी योगी बनने की शिक्षा दी है। "आपु सरिस सबहीं चह कीन्हा।" इन सब बातों में दिन के १ बज गये और उस दिन सवेरे का जलपान नहीं हो सका। मैंने उस दिन दोपहर में भोजन तो किया पर पहले की अपेक्षा काफी कम, क्योंकि सिद्धान्त रूप से मैं इस बात को समझ चुका था कि शक्ति का सम्बन्ध भोजन से नहीं है, वह तो केवल पोषण का तत्व है और दिन भर श्रम करने के बाद ही रात को प्रधान भोजन करना उचित है। उस दिन देर से खाने के कारण शाम का जलपान भी छूट गया और रात को ही मैंने भोजन किया। इस तरह २४ घन्टे में दो बार ही भोजन करने का मेरा अभ्यास प्रारम्भ हो गया। अब रही आमदनी का दशांश निकालने की बात, तो ५ अक्तूबर तक ही उस महीने के वेतन की काफी रकम खर्च हो चुकी थी फिर भी जो बचा था उसी का कुछ अंश भगवान के नाम पर निकाल कर उसी दिन इसका श्रीगणेश किया गया और मैंने यह तय किया कि अगले मास से नियमित रूप से दशांश निकाल दिया करूँगा। दूसरे दिन प्रातः ४ बजे उठ कर कुशासन पर भगवान के विग्रह के सामने बैठ कर उनके ध्यान में अपने

शरीर, मन और बुद्धि को रोकने का अभ्यास प्रारम्भ कर मैंने चिंतन की साधना भी शुरू कर दी। उस दिन ज्यों-ज्यों मैंने अपने को भूलने का प्रयत्न किया त्यों-त्यों मेरा मन दूर भागता रहा और मेरी बन्द आँखों के सामने कुछ ऐसे भी दृश्य उपस्थित हुए, जिन्हें कभी स्वप्न में भी मुझे देखने का सौभाग्य नहीं मिला था।

इस प्रकार ५ अक्तूबर १९५८ से रामायण के अनुसार मेरी साधना शुरू हुई और धीरे-धीरे मैं अपने भोजन को घटाने लगा जिससे कुछ ही हफ्तों में केवल रात को ही प्रधान भोजन लेने का मुझे अभ्यास हो गया। दिन में आवश्यकतानुसार मैं कुछ साग, सब्जी या मौसम के फल ले लिया करता और एक बार रात को ही भोजन करता था। प्रत्येक महीने में वेतन पाते ही नियमित रूप से अपनी आमदनी का दशांश भगवान के नाते निकाल कर अलग करता गया और उसे योग्य पात्र पर ही खर्च करता रहा तथा नित्य प्रातः उठकर भगवान की याद में अपने को भूलने का अभ्यास करने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा वजन कम होता गया और मेरा शरीर दुबला होने लगा पर आश्चर्य की बात तो यह हुई कि मेरी कार्यक्षमता पहले की अपेक्षा काफी बढ़ गयी। पहले थोड़ा काम करने के बाद ही मुझे थकान और सुस्ती महसूस होती थी, पर इस साधना से मेरी सुस्ती और थकावट जाती रही और दिन में मुझे भोजन की आवश्यकता ही नहीं मालूम होती थी। मेरा मन, जो पहले बहुत अशांत और चंचल रहता था, शनैः-शनैः शान्त और स्थिर होने लगा और मेरी बुद्धि से भय धीरे-धीरे मिटने लगा। कुछ ही महीनों में मेरी वे सभी समस्यायें समाप्त हो गयीं जो साधना के पहले मुझे काफी चिन्तित और परेशान किये हुई थीं। पर मेरी माता जी, जो इस साधना के प्रारम्भ से ही असन्तुष्ट रहीं, मुझे दिनों दिन दुबला होता देखकर काफी

चिन्तित हो उठीं और उन्हें यह भ्रम हो गया कि मुझे कोई रोग हो गया है जिससे मेरा शरीर क्षीण होता जा रहा है। मैंने उन्हें बहुत समझाया कि मुझे कोई रोग नहीं हुआ और मुझे किसी प्रकार की कोई परेशानी नहीं है फिर भी उनके दिमाग में मेरी एक भी बात नहीं बैठी। वे कहा करतीं, "सब कुछ ठीक है तो तुम्हारा शरीर इतना दुबला क्यों होता जा रहा है? तुम्हें जरूर कोई ऐसा रोग है, जिससे तुम्हारी भूख बंद हो गयी है और तुम खा नहीं पा रहे हो। पहले तुम दिन में ४-५ बार नित्य खाते थे, पर अब तो तुम एक बार ही खाना खा रहे हो और उसकी भी तुम्हें कोई विशेष चिन्ता नहीं रहती।" इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी स्त्री को छोड़ कर मेरे परिवार के सभी सदस्य तथा मेरे तमाम शुभचिंतक मुझ पर दबाव डालने लगे और नाना प्रकार के तर्क प्रस्तुत करके मुझे अपनी माँ की बात मान कर दोनों वक्त डट कर खाने को मजबूर करने लगे। उधर हमारी समस्यायें भी हल हो चुकी थीं और इधर मेरी माता तथा सभी शुभचिन्तकों के आग्रह ने मेरे निश्चय के लगाम को ढीला कर दिया। इसी बीच मेरा स्थानान्तरण अल्मोड़े से रामपुर को हो गया। इन परिस्थितियों में मेरी साधना स्थगित हो गयी। सयोगवश २८ फरवरी को श्रद्धेय योगीजी से रामपुर में मेरी फिर मुलाकात हुई और वे पूछ ही तो बैठे, "कहो डाक्टर! क्या हाल है" मैंने उनसे कहा कि मैंने आपकी बताई हुई साधना को अपनाया और उससे मेरी सारी समस्यायें हल हो गयी पर अपनी माता जी और हितैषियों के दबाव से मैंने अपनी साधना बन्द कर दी है। इस पर उन्होंने कहा, "अपने जीवन का काफी अंश तो तुम खो चुके हो, शेष को सम्हालने के लिये अब से भी तो कुछ चेतो।" मेरी आँखें खुल गयीं और मैंने रामायण की साधना को अपने जीवन में कार्यान्वित करने का पुन. दृढ़ निश्चय किया। १ मार्च, १६५६ से मैं नियमित रूप

से अपनी आमदनी का दशांश भगवान के नाते निकालने लगा और धीरे-धीरे अपना भोजन घटा कर एक बार रात में ही भोजन करने लगा और प्रातः उठकर ध्यान करने का फिर से अभ्यास शुरू कर दिया। भगवान की दया से उस दिन से हमारी साधना अनवरत चल रही है और अब स्थिति यह है कि मेरा वजन ६० पौंड कम हो गया है पर कार्यक्षमता बहुत बढ़ गयी है। सच तो यह है कि जितनी मेरी कार्य क्षमता बढ़ी है उसके अनुपात मे मेरे पास काम नहीं है। मेरा मन अब परिस्थिति से अतीत होता जा रहा है, बुद्धि से अंधकार मिटता जा रहा है और मानव मात्र की निःस्वार्थ सेवा की भावना दिनोंदिन प्रबल होती जा रही है।

प्रभु की प्रेरणा पर दशांश के जो पैसे मेरे पास जमा हो गये थे उन्हीं से मैंने भगवान के नाते अपने आदर्श शिक्षक और शुभचिन्तक की पुण्य स्मृति में एक ट्रस्ट की रजिस्ट्री कर दिया और उनकी जन्मभूमि, आमघाट जिला बलिया, में उनके सजीव स्मारक के रूप में, उनके नाम पर एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, "राम दहिन सिंह विद्यालय" की स्थापना कर दिया है, जिसका शिलान्यास पूज्य योगीजी ने गत २७ नवम्बर १९६१ ई० को अपने कर कमलों द्वारा करके हमे कृतार्थ किया है। यद्यपि राम दहिन सिंह विद्यालय की समुचित व्यवस्था एवं विकास के लिए अभी बहुत धन की आवश्यकता है फिर भी मुझे भगवान पर पूरा भरोसा है और यह दृढ़ विश्वास है कि पूज्य योगीजी के लगाये हुए इस पौधे की सारी आवश्यकताओं को भगवान समय-समय पर जरूर पूरा करेंगे। मेरे जीवन से प्रभावित होकर गत १ जनवरी, ६१ से मेरी स्त्री ने भी रामायण की इस साधना का अपने जीवन मे प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है और पाठकों को यह जानकर बहुत आश्चर्य होगा कि पिछली जनवरी १९६२ से मेरी माताजी ने भी, जिन्होंने मेरी

साधना का प्रबल विरोध किया था, अपनी समझ के अनुसार साधना प्रारम्भ कर दी है और जो पहले श्रद्धेय योगीजी के नाम से चिढ़ती थीं, वही अब उनके दर्शन और प्रवचन के लिए लालायित रहती हैं। इस बीच तीन नवरात्रों मे भगवान की दया से मैं केवल जल पर ही रहकर अपने सारे काम काज पूर्ववत ही करता रहा हूँ और मुझे किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई और इस बार तो मेरी स्त्री भी मेरे साथ पूरे नौ दिन पानी पर ही रहकर अपनी गृहस्थी का सारा काम पहले की ही तरह करती रही। इन प्रयोगों ने भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि भोजन का सम्बन्ध शक्ति से नहीं बल्कि शरीर के पोषण से ही है। रामायण के साधन-त्रिक मे मेरी और मेरे परिवार के सदस्यों की आस्था दिनों दिन बढ़ती जा रही है। मानव मात्र की सेवा में जो आनन्द मुझे अब अनुभव हो रहा है उसे मैं वर्णन नहीं कर सकता। यह सब भगवान की कृपा और श्रद्धेय योगीजी के प्रकाश का ही परिणाम है, मुझमें किसी प्रकार की कोई योग्यता नहीं है।

मेरी श्रम-रहित साधना

ले०—कुबेर प्रसाद गुप्त, डी—१२।४ राजेन्द्र नगर लखनऊ ४

यद्यपि मेरी यह मान्यता है कि साधन सम्बन्धी विवरणों को प्रकाश मे लाना घाटे का सौदा है, फिर भी कभी-कभी घाटे का सौदा भी करना ही पड़ता है। साथ ही यह भी सत्य है कि इस प्रकार के घाटे के सौदे को साधना-पथ मे सहायक के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

सासारिक एवं आध्यात्मिक जगत की मान्यताओं मे किस हद तक भिन्नता होती है, इसका अनुमान "या निशा सर्व-

भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी" से लगाया जा सकता है। इस प्रकार संसार में, जहाँ सामान्यत: शिष्य गुरु की तलाश करते हैं, वहाँ आध्यात्मिक जगत में यह नियम है कि जब शिष्य तैयार होता है, तब गुरु स्वयं उसके पास आ जाता है और उसे अपना कर कृतार्थ करता एवं साधन-पथ का निर्देश करता है। शिष्य में केवल मार्ग-दर्शन पाने के लिए उत्कट उत्कंठा का होना ही अलम् होता है।

मैं बचपन में बीमार पड़ने पर अभिभावकों के संरक्षण में रहते समय प्राय: अँग्रेजी दवाओं का प्रयोग करता रहा। कुछ समझदार होने पर तथा इन दवाओं का असफल और अक्सर बुरा परिणाम देखकर इन पर से विश्वास उठ गया और आयुर्वेदिक दवाओं पर आस्था जमी। इसी प्रकार इस चिकित्सा पद्धति पर से भी विश्वास उठता और अन्य पद्धतियों को अपनाता हुआ क्रमश: यूनानी, होमियोपैथी के बाद प्राकृतिक चिकित्सा पर आस्था टिकी। नवम्बर १६५३ में प्राकृतिक चिकित्सा की विधियों का अध्ययन करने के लिए बीमार न होते हुए भी एक रोगी के रूप में आरोग्य मंदिर, गोरखपुर में एक सप्ताह के लिए भरती हुआ। वहाँ डा० बुद्धि प्रकाश जी से मुलाकात हुई, जिन्होंने लखनऊ में परमपूज्य श्री योगीजी का एक प्राकृतिक चिकित्सक के रूप में परिचय दिया। मैंने पूज्य योगीजी का पता नोट कर लिया, पर मेरा दुर्भाग्य, वह पता मुझ से खो गया। मैंने आरोग्य मंदिर को पत्र लिखा परन्तु डा० बुद्धि प्रकाश जी वहाँ से जा चुके थे और उनका पता भी वहाँ पर उपलब्ध न था। अब तो मेरी आत्मग्लानि और व्याकुलता काफी बढ़ गयी और यत्र-तत्र अँधेरे में टटोलने की भाँति, पूज्य योगीजी का पता लगाने लगा। कुछ दिनों तक प्रयत्न करने के बाद, जब सफलता नहीं मिली, तो यह आकांक्षा चेतन से अचेतन मन के स्तर पर पहुँच गयी और मैं इस प्रसंग को भूल

गया। परन्तु जब कोई इच्छा या आकांक्षा अचेतन मन को स्वीकृत हो जाती है तब उसकी पूर्ति अवश्यम्भावी होती है, यह मनोविज्ञान का अटल सिद्धान्त है। शिष्य को ढूंढ़ निकालने के आध्यात्मिक सिद्धान्त तथा मनोविज्ञान के उक्त नियम के अनुसार परमपूज्य योगीजी ने, जिन्होंने मुझे अपना लिया है, स्वयं मुझे ढूंढ़ निकाला और अपने चरणों में बैठने देने का अनुग्रह किया।

प्राकृतिक चिकित्सा में आस्था होने के कारण मैं प्राय: दिन में अन्नमय तथा शाम को अन्न रहित मौसम के फल तथा सब्जियों का भोजन करता था। इसलिए शाम के लिए फल सब्जी या तो कार्यालय जाते समय अथवा कार्यालय से लौटते समय खरीदता था। एक दिन कार्यालय जाते समय कैसरबाग की सब्जी मंडी में, मुझे फल सब्जी खरीदते देखकर एक दुबले पतले लम्बे खद्दरधारी महानुभाव ने अप्रत्याशित रूप से पूछा:— "आप इतनी सारी फल और तरकारियों क्या करते हैं ?" मैंने उत्तर दिया कि मैं दिन में अन्नमय भोजन करता हूँ और शाम को अन्नरहित फल और तरकारियाँ। इस पर उन्होंने कहा "भोजन के सम्बन्ध में मेरे भी कुछ विचार हैं और उनके अनुसार इस क्रम को पलट देने अर्थात् दिन में फल और सब्जी तथा शाम को अन्नमय भोजन करने से अधिक लाभ होगा। अगर आप इस सम्बन्ध में बातचीत करना चाहें, तो मुझे अपना स्थान और समय बतावें, मैं आजाऊँगा।" एक अजनबी महोदय को अपने में इस प्रकार आत्मीयतापूर्ण रुचि लेते देखकर मेरा कुतूहल बढ़ा और शिष्टाचारवश मैंने कहा कि 'आप क्यों कष्ट करेंगे, आप ही समय एवं स्थान बतावें, मैं स्वयं उपस्थित हूँगा।' पर यह क्या ? जब उन्होंने अपना नाम बताया तो जैसे युगों के बन्द कपाट खुल गये, जैसे कोई खोई हुई बहुमूल्य निधि अनायास ही प्राप्त हो गयी। 'प्रभु पहिचानि परेउ

गहि चरना।" की भावना के साथ मैं उनके चरणों में झुक गया और करुण स्वर में बोला, महाराज! मैं तो आपके दर्शनों के लिये कई महीनो से लालायित था। परमपूज्य योगी से मेरी पहली मुलाकात इसी प्रकार हुई।

उसके बाद से पूज्य योगीजी के साप्ताहिक सत्संग में जाने लगा। लगभग चार वर्षों तक तो मुझे मानस के सिद्धान्तों के बारे में यह भी पता नहीं चला कि मानस के दावे जीवनोपयोगी हैं एवं उन्हें निश्चित प्रविधि (टेक्नीक) के द्वारा अनुभव में भी लाया जा सकता है। इसके बाद पहले केवल भोजन सम्बन्धी सिद्धान्त कुछ-कुछ समझ में आया। घर में उसको क्रियात्मक रूप देने पर बड़ा कड़ा विरोध हुआ, पर प्रेमपूर्वक धीरे-धीरे समझाने बुझाने से वह विरोध क्रमशः कम होता गया और अब तो मेरी पत्नी भी एकाहारी हो गयी हैं। बाद मे सेवा का स्वरूप भी समझ मे आया और मैं भगवान के नाते अपनी आय का निश्चित अंश भगवान के लिये निकालने लगा तथा समय शक्ति का भी उपयोग सेवा में करना प्रारम्भ कर दिया। ध्यान का अभ्यास नियमित नहीं हो पा रहा है, फिर भी प्रभु की कृपा पर पूर्ण भरोसा है और उसके प्रमाण एवं आश्वासन भी मिलते रहते हैं, इससे आशा का स्रोत सूखने नहीं पाया है:—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे।
सब विधि घटब काज मैं तोरे॥

पहले, भोजन से शक्ति का सम्बन्ध मानने के काल में, प्रति-दिन दो बार भर पेट नाश्ता और दो बार डट कर भोजन करता था। कालान्तर में कब्ज की शिकायत हो गयी और कब्ज भी इस प्रकार का कि बिना प्रति दिन रेचक औषधि के काम चलना मुश्किल हो गया, पर पूज्य योगीजी के सिद्धान्तों को समझ कर उनकी प्रविधि के अनुसार थोड़ा-सा ही चलने पर

कब्ज सदा के लिए दूर हो गया है। अब शरीर ऐसा हो गया है कि अस्वस्थता एवं थकावट मिट गयी है। यदा-कदा सांसारिक दृष्टि से भोजन में घोर कुपथ्य एवं असंयम होने पर भी दूसरे ही दिन साधारण स्थिति हो जाती है। भोजन न करने पर भी इसका मान नहीं रहता कि भोजन नहीं किया है। शक्ति का स्रोत कुछ इस प्रकार से प्रवाहित हो रहा है कि चाहे कितनी भी देर काम किया जाय थकावट नहीं होती। अनेकों बार दिन में कार्य करने के अतिरिक्त, रात भर लगात[illegible] करने पर भी शरीर सँभला रहता है और स्फूर्ति में [illegible]।

मन के स्तर पर मुझे अपने घर वालों [illegible]
अन्य व्यक्तियों पर बड़ा विश्वास और [illegible]
कारण था कि जब कोई मेरा कोई कार्य [illegible]
लापरवाही दिखलाता था, तो मुझे [illegible]
में उससे जिन्दगी भर के लिये सम्बन्ध[illegible]
लगता था। जीवन की दैनिक सम[illegible]
कठिन-साध्य प्रतीत होती थीं [illegible]
नकारात्मक एवं निराशाजनक वि[illegible]
रहते थे। पर अब गुरु-कृपा से स[illegible]
आते हैं। अजनबी व्यक्ति से भी [illegible]
में हिचक नहीं होती और चाहे [illegible]
व्यक्ति हो, उसकी अनुकूल[illegible]
तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता है।
भगवान का मंगल विधान मालूम [illegible]
विधान यथासमय स्पष्ट रूप से दि[illegible]

आय के निश्चित भाग को [illegible]
विवेक एवं सामर्थ्यानुसार समय[illegible]
रूपों के प्रति निवेदित करने का जो [illegible]

में मिल रहा है, वह वर्णनातीत है। प्रतिदिन और एक एक दिन में अनेक बार जिस प्रकार, कार्य-क्रम संजोये जाते हैं, उनकी पूर्ति की जैसी व्यवस्था की जाती है एवं कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव दीखने वाली समस्यायें भी उचित समय पर हल हो जाती हैं, इससे इस बात पर पूर्ण रूप से विश्वास हो गया है कि प्रभु अन्तरतम की भी इच्छाओं को जानता एवं उनकी पूर्ति की व्यवस्था करता रहता है। इच्छा का उदय मात्र दोषपूर्ण है, इस विचार से आत्म-ग्लानि होती है और मैंने अनेक बार एकान्त में रोते हुए प्रभु का यह आश्वासन स्मरण किया है:

"जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥"

भगवान के प्रेरकत्व का आदर करने से दूसरों के प्रतिकूल आचरण पर भी द्वेष नहीं होता, क्रोध नहीं आता और अगर कभी आता भी है, तो उसके तुरन्त बाद ही अपना यह दोष दिख जाता है और या तो उसी समय या बाद में अक्सर प्रकट रूप से और कभी-कभी मानसिक रूप से क्षमा याचना कर लेता हूँ। प्रभु-कृपा से यह दोष भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

भगवान के व्यापकत्व के आदर का, जो परिणाम मेरे जीवन में प्रतिफलित हो रहा है, उसके बारे में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि प्रभु-कृपा-वर्षण को देखकर नेत्रों से बरबस अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है कि मुझ जैसे अति अधम के ऊपर भी करुणा सागर पतित पावन प्रभु इतनी कृपा कर रहे हैं:—

"रहँति न प्रभु चित चूक किये की।
करत सुरति सय बार हिये की॥"

अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं जब सांसारिक व्यवहार में किसी से कुछ कहना आवश्यक होने पर भी, कहने में संकोच

मालूम पड़ा है, परन्तु दयालु प्रभु ने हर बार दूसरे पक्ष से ही हमारे अनुकूल बात कहला कर मेरी रक्षा की है। हमने देखा है कि कभी किसी से मिलना आवश्यक होने पर भी, यदि निश्चित समय पर जाने का समय नहीं निकाल पाया हूँ, तो वह व्यक्ति अप्रत्याशित रूप से स्वयं आ गया है। अन्य अनेकों के प्रति कठोर व्यवहार करने वाले व्यक्ति सदा उदारता एवं सहयोग-पूर्ण व्यवहार करने लगते हैं:—

गरल सुधा रिपु कर मिताई।
गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥

आर्थिक मामले में भी जब भी जितने धन की आवश्यकता पड़ती है, सदा समय से और आवश्यक धन की व्यवस्था प्रभु करता रहता है और स्वीकार करना पड़ता है कि —

"मुझ गुनहगार को जो कुछ भी खुदा देता है।
वक्त से पहले जरूरत से सिवा देता है॥"

यही नहीं, अनेक बार ऐसे भी अवसर आये हैं, जब किसी कार्य को, चाहे वे कितने भी साधारण क्यों न हों, करने में बार-बार बाधाएँ उपस्थित हुई हैं और उसे नहीं करने दिया गया है। बाद में ज्ञात हुआ है कि अगर वह काम हुआ होता, तो उससे बड़ी हानि होती। अब धीरे-धीरे ऐसा होने लगा है कि बाधा का संकेत मिलते ही, प्रभु-इच्छा स्पष्ट हो जाती है और उससे तुरंत हाथ खींच लेता हूँ। उनका भी, जो अवाञ्छनीय परिणाम होता, वह भी शीघ्र ही दिखायी पड़ जाता है। ऐसे भी अवसर आये हैं जब किसी काम को करने में मुझे अपने आदरणीय पिताजी के आदेश तथा पत्नी के आग्रह को बरबस ठुकराना पड़ा है और भीतर से इतनी कठोरता आ गयी है कि उस पर मुझे स्वयं

आश्चर्य हुआ है। परन्तु बाद में यह भी दिखायी पड़ा है कि अगर उस समय मुझमें उतनी कठोरता न आयी होती, तो बहुत बड़ी हानि हो जाती, यह बात पूज्य पिताजी और पत्नी ने भी बाद में स्वीकार किया है।

आज के समाज की जो स्थिति है, उसमें मुझ जैसे व्यवहार में अकुशल व्यक्ति का गृहस्थ तथा सामाजिक-धर्म ठीक से निवाहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता, परन्तु अब भी, जैसी भी समस्या या आवश्यकता हुई है, उद्विग्नता नहीं पैदा हुई है। समय से उनके भी निराकरण की सम्मानपूर्ण व्यवस्था होती रही है।

गुरु-कृपा के पूर्व बुद्धि के स्तर पर भविष्य के भय का स्वरूप यह था कि जिस दिन मेरे घर में बटवारा हुआ, उस दिन मैं रात भर यही सोचता रहा कि कल से परिवार के भरण पोषण का क्या प्रबन्ध होगा ? प्रतिकूल प्रतिक्रिया एवं उसके फलस्वरूप हानि की आशंका से भयभीत होने के कारण बहुत ही दब्बू और दीन स्वभाव का हो गया था। परन्तु प्रभु-कृपा और मानस के सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने से भय क्रमशः तिरोहित होने लगा है और अब किसी से किसी प्रकार का भय नहीं लगता, क्योंकि किसी से किसी भी अवस्था में किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं रह गयी है। यद्यपि इस निर्भयता में अभी सौम्यता एवं विनम्रता को वह स्थान नहीं दे पाया हूँ, जो उचित है। पर यह उसी समय खटक अवश्य जाती है और भविष्य में अधिक सतर्क रहने तथा प्रभु से क्षमा याचना के कारण, इसमें भी धीरे धीरे सुधार होता जा रहा है।

सबके प्रति प्रेम का जागरण तो नहीं हो पाया है, परन्तु किसी से द्वेष का कारण नहीं दीखता। काम, क्रोध, लोभ अब

भी हावी हो जाते हैं, पर उनका डंक उसी समय दिख जाता है और दिन प्रति दिन उनका बल क्षीण होता जा रहा है।

मुझे साधु मतों के सत्संग का सुअवसर बहुत ही कम मिला है। परन्तु उन थोड़े से सत्संगों में कभी कभी किसी जिज्ञासु एवं साधना करने के लिये उत्सुक महानुभावों के प्रति संत-महात्माओं को मैंने यह कहते सुना है कि अमुक प्रकार का साधन करो, तुम्हारा कल्याण होगा। किन्तु कुछ दिनों बाद जब साधक ने आकर अपना दुख व्यक्त किया है कि "महाराज! प्रयत्न करने पर भी मैं उक्त साधना भली प्रकार नहीं कर पाता हूँ" तो उसे यही समाधान मिला है कि प्रयत्न करते जाओ :— 'कबहुँक दीन दयाल के भनक पड़ैगी कान।" अथवा तुम अपने मन को पवित्र करो तभी साधना सफल हो सकेगी या प्रारब्ध भोग तो भोगना ही पड़ेगा। चाहे हँस कर काटो चाहे रो कर'। इस पर मुझे सदा यह बात खटकी है कि भगवान तो पतित पावन है, वह तो पतित को पावन करता है फिर अपने को पहले पावन बना लेना क्या अनिवार्य है? क्या रामायण में झूठ ही लिखा है—

"मेटत कठिन कुअंक भाल के।।"
"भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी।।"

परन्तु परमपूज्य योगी जी के साधन में इस प्रकार की कोई कठिनाई उपस्थित नहीं होती। पहले तो मानस के सिद्धान्त समझने पर ही बल दिया जाता है, उसमें करना तो कुछ है नहीं केवल बुद्धि लगाकर समझना और उसको हृदयंगम करना मात्र है। सिद्धान्त ठीक प्रकार से समझ लेने के बाद उसके प्रयोग करने के लिये आवश्यक साहस और आत्मबल तो प्राप्त होता ही है, प्रयोग की प्रविधि (टेक्नीक) बड़ी ही सरल एवं सहज साध्य हो जाती है। साधक की व्यक्तिगत स्थिति के अनुसार

प्रविधि के प्रयोग में थोड़ा अन्तर करना आवश्यक होता है इस लिये सम्पर्क पर अत्यधिक बल दिया जाता है। परमपूज्य योगी जी साधन उसी को कहते हैं जो साधक की सामर्थ्य के अनुरूप हो और क्रमशः प्रगति करते हुए साध्य की उपलब्धि करा दे। इसलिये उनके द्वारा प्रस्तुत श्री रामचरित मानस की साधना में सिद्धान्त समझ लेने के बाद, प्रयोग में अपनी कठिनाई या असमर्थता बता कर साधक साधना से विरत नहीं हो सकता। परमपूज्य योगी जी की कृपा प्राप्त करने के बाद मेरे लिए तो—

"अब न आँखि तर आवत कोऊ॥"

मेरे शरीर से रोग और थकावट मिट गयी है। मन में चिंता का लेश भी नहीं रह गया है। बुद्धि में अभी प्रकाश नहीं प्राप्त हो सका है, फिर भी जो थोड़ा बहुत प्राप्त हुआ है, वह बहुत ही उत्साहवर्द्धक और आशाप्रद है। जीवन हर प्रकार से स्पृहणीय एवं आनन्दमय हो गया है। सेवा में जो सुख है एवं उसकी प्रतिक्रिया के जो स्वरूप सामने आते हैं, वे प्रभु की अनन्त करुणा एवं कृपा के अजस्र स्रोत के प्रमाण हैं और उन्हें अनुभव कर नेत्रों में आँसू उमड़ पड़ते हैं और बरबस मुँह से निकल पड़ता है :—

"राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥"

अन्त में सच्चे हृदय से विनम्रतापूर्वक अपनी यह स्वीकृति स्पष्ट करना आवश्यक है कि मैंने ऐसा कोई साधन नहीं किया है, जिसमें मुझे प्रयास या श्रम मालूम पड़ा हो।

"कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा॥"

मुझमें अभी भी अनेक अवगुण विद्यमान हैं, जिनसे मैं परिचित हूँ, और प्रभु-कृपा से जिनके दूर होने की पूरी आशा

भी है। थोड़े-बहुत जो दोष निकल सके हे या दूसरों की दृष्टि में किंचित गुण दृष्टिगत होते हैं, उनका एक मात्र कारण उनकी गुण ग्राहकता और प्रभु कृपा ही है। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जिस पतित स्थिति मे मैं था, वहाँ से निश्चय ही ऊपर उठा लिया गया हूँ।

—०○—

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त, सहायक मंत्री, मानस साधना मंडल, बी १२/४, राजेन्द्रनगर, लखनऊ—४ द्वारा प्रकाशित तथा नवभारत प्रेस, लखनऊ द्वारा मुद्रित।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन से अशांति और अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द और ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट है।

अध्यक्ष
परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम बी . बी एस

प्रधान कार्यालय.
डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखंड स्वास्थ्य, अखंड शक्ति, अखंड आनन्द, अखंड ज्ञान और अखंड प्रेम

की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस में वर्णित पौराणिक कथानकों के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तों की साधन-प्रणाली अपनाइये

इसके लिये पढ़िये

पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	*परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'*	०.२५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	,, ,, ,,	०.२५
३. मानस में श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	,, ,, ,,	०.२५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	,, ,, ,,	०.२५
५. अखंड स्वास्थ्य का आधार— संतुलित आहार	,, ,, ,,	०.२५
६. मानस के आत्यंतिक दुख निवारण के आश्वासनों का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
७. खाद्य-समस्या : एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	,, ,, ,,	०.२५
८. पूज्य योगी जी के साथ दो घंटे	*श्री रवीन्द्र सनातन, एम. ए.*	०.२५
९. मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाकल्य बी. एस-सी.	०.२५
१०. दमा से मुक्ति	संकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
११. असाध्य रोगों से छुटकारा	,, ,, ,,	०.२५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	,, ,, ,,	०.२५
१३. तीन साधकों के अनुभव	,, ,, ,,	०.२५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	,, ,, ,,	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना मंडल, बी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें।

ानस साधना ग्रन्थमाला-पुष्प-१४

अन्न-त्याग के पथ पर

सकलनकर्ता :–
श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

मानस साधना मण्डल प्रकाशन

मावृत्ति ३०००

मूल्य २५ पैसे

मानव की मौलिक मांगें . १ शरीर में रोग की सम्भावना रहित अखंड स्वास्थ्य।
२ इन्द्रियों में थकावट विहीन अखंड शक्ति।
३ मन में चिन्ता रहित अखंड आनन्द।
४ बुद्धि में भय रहित अखंड ज्ञान।
५ अहं में द्वैत रहित अखंड प्रेम।

पंचस्तरीय विकार : १ शरीर में रोग
२ इन्द्रियों में कमजोरी
३ मन में शोक
४ बुद्धि में भय
५ अहं में वियोग

पंचविकारों के कारण : १ औषधि से स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा
२ भोजन से शक्ति प्राप्ति का भ्रम
३ धन से सुख प्राप्ति का भ्रम
४. पुस्तकीय सूचना से ज्ञान प्राप्ति का भ्रम
५ जो वास्तव में अपने नहीं हैं उनमें ममत्व

विकारों का निवारण : १ सन्तुलित आहार द्वारा अखंड स्वास्थ्य की प्राप्ति।
२ युक्तियुक्त उपवास द्वारा अखंड शक्ति की प्राप्ति।
३ विवेकपूर्ण सेवा द्वारा अखंड आनन्द की प्राप्ति।
४ विधिवत् ध्यान द्वारा अखंड ज्ञान की प्राप्ति।
५ सदभावन आत्मसमर्पण द्वारा अखंड प्रेम की प्राप्ति।

अन्न-त्याग के पथ पर

देश के वर्तमान खाद्य-संकट को दूर करने के लिए हम अपनी सेवाएँ देश को अर्पित करना चाहते है। अगर देशवासी दिन मे अन्न न खाकर केवल मौसम मे मिलने वाले स्थानीय सस्ते फल एव तरकारियो से काम चलावें और रात को साधारण रूप से अनाज, दाल, सब्जी का भोजन करें तो न केवल उनका स्वास्थ्य सुधरेगा, उनकी कार्यक्षमता बढ जायगी अपितु वे देश को खाद्यान्न म स्वावलम्बी बनाने के साथ-साथ काफी मात्रा मे विदेशो को भी गल्ला निर्यात करने की स्थिति मे ला देंगे।"

—हृदय नारायण 'योगीजी'

कवि कुलभूषण गोस्वामी तुलसीदास जी का अमरकाव्य श्रीरामचरित मानस अनेकानेक शिक्षाओं का आगार है। उन्हें यदि मानव समझकर अपने जीवन में अपनायें तो उसकी समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक समस्याएं हल हो सकती हैं। और उसका जीवन सब प्रकार से सुखी हो सकता है।

गावों और शहरों में अखंड पाठ के आयोजन होते ही रहते हैं और बड़ी बड़ी सभाओं में मानस कथा की अमृत वर्षा होती रहती है, परन्तु यह सत्य तो यह है कि इन ३९० वर्षों के पठन पाठन के बाद भी आज मानस-प्रेमियों (श्रोता और वक्ता दोनों) के जीवन में त्रिताप के नाश का आश्वासन चरितार्थ होता नहीं दीखता।

मेरा विश्वास है कि मानव को त्रिताप से मुक्ति दिलाने का मानस का दावा सच्चा है और मानस में ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित हैं जिन्हें अपना कर मानव रोग, दुख और भय से मुक्त हो सकता है।

रामचरित मानस के वैज्ञानिक अध्ययन एवं मेरे मित्रों के प्रयोगों से मेरी इस मान्यता की पुष्टि हुई है कि इस ग्रन्थ में प्रतिपादित दर्शन कोरी कल्पना की वस्तु नहीं बल्कि पूर्णतया व्यवहारिक है। यह अपने उन पाठकों और श्रोताओं के जीवन में आमूल परिवर्तन लाने में सक्षम है जो इसका सिद्धान्त समझ कर उसका सही प्रयोग करेंगे। मेरे बहुत से मित्रों और सह-साधकों ने रामचरित मानस में निर्दिष्ट पंचसूत्री साधन प्रणाली के अनुसार जो वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं उनसे पता चलता है कि साम्प्रतिक मापदंड के अनुसार इस साधना से उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं जैसे

१ उनके शरीर बिना औषधोपचार के ही सभी प्रकार के रोगों से, यहाँ तक कि असाध्य रोगों से भी, मुक्त हो गये हैं। २ शक्ति प्राप्त करने के लिये उन्हें भोजन की अपेक्षा घटती जा रही है, उनमें से कुछ तो, जिनमें महिलायें भी हैं, अपने सभी कार्य कई दिनों तक केवल हवा के सहारे और कई सप्ताह तक केवल जल पीकर ही, करते रहने में समर्थ हैं। ३ वे लगातार १८ घंटे तक बिना बीच में जलपान की आवश्यकता अनुभव

..

किये ही काम कर सकते है फिर भी उन्हें थकावट नही महसूस होती । ४ उनका मन क्रमश चिन्ता मुक्त और हर प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियो के प्रभाव से स्वतन्त्र होता जा रहा है । ५ व बुद्धि म एक अलौकिक प्रकाश का अनुभव करते हैं जिसस वे अब प्रातीतिक सत्य और यथार्थ सत्य का विवेचन करने मे समर्थ होते जा रहे है अर्थात् व अनुभव करते ह कि क भोजन शरीर निर्माता तत्व है शक्ति दाता नही । ख धन वस्तुओ को खरीदने वा साधन मात्र है आनन्द दायक नहा । ग पुस्तकें सूचना दे सकती हैं, ज्ञान नही ६ वे स्पष्ट अनुभव करते हैं कि एक अलौकिक शक्ति है जो हमारे भाग्य का निर्माण करती है और सभी कुछ प्रभु की इच्छा से ही होता है । ७ वें धीरे धीरे यह अनुभव करने लग हैं कि उनम मानव मात्र के प्रति स्वत सहज प्रेम का जागरण हो रहा है, जिसम जाति, मत मतान्तर, राष्ट्रीयता एव व्यक्तिगत प्रवृत्तियो के प्रभेदो का कोई स्थान नही है । अविश्वासी व्यक्ति इन अनुभवो को कोरी कल्पना कह सकते है परन्तु मैं बलपूर्वक दुहराता हू कि रामचरित मानस अपने सभी गभीर अध्येताओ को समन्वित विकास का विशिष्ट वरदान प्रदान करता है । आवश्यक होने तथा समुचित साधन, सुविधा की व्यवस्था होने पर इन्हे समाज क सामने भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जा सकता है ।

इन प्रयोगो को, जिनके परिणाम रामचरित मानस के त्रिताप नाश के दावो की पुष्टि करते हैं, जो वैदिक सिद्धान्तो की पृष्ठभूमि पर आधारित वैज्ञानिक प्रयोगो की प्रविधि (टेक्नीक) की मोटी मोटी रूपरेखा प्रस्तुत करते है तथा जन साधारण की अनभूतियो के मुकाबले आश्चर्य जनक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, मानस साधना मडल समाज के सामने इस दृष्टि से प्रस्तुत कर रहा है जिससे इस प्रकार के परिणामो की अभिलाषा रखने वाले ग्रहणशील व्यक्ति इस ओर उन्मुख हो, रामचरित मानस के सिद्धान्तो को समझने और उनकी प्रविधि के अनुसार प्रयोग करने के लिये सचेष्ट हो और वाह्य अभाव एव आन्तरिक अशान्ति मिटाकर आनन्दमय जीवन का उपभोग कर सकें ।

सोमवार १४ मार्च १९६६ ई० — हृदयनारायण

नम्र-निवेदन

आज का युग विज्ञान का युग है। इसमे विज्ञान सम्मत सिद्धान्तो को ही मान्यता प्राप्त होती है और यह उचित भी है। मानव अपनी जान की बाजी लगा कर प्रकृति के नियमो (रहस्यो) का उद्घाटन करने मे जुटा हुआ है जिससे उनका उपयोग मानव-कल्याण के लिये किया जा सके। प्रकृति के अन्तराल मे अभी भी अनन्त नियम रहस्यमय स्थिति मे हैं —

"जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करहिं सुनि सोई॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी॥
राम कथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं॥"

इसलिये जब कोई नवीन विचारधारा (सिद्धान्त) सामने आये तो उसे सर्वथा नवीन एव असम्भव कह कर उससे उदासीन हो जाना या किन्ही निहित स्वार्थों के कारण उनका विरोध करना वैज्ञानिक नैतिकता एव समाज-हित के प्रतिकूल होगा। हा, उस विचारधारा को प्रयोग द्वारा कसौटी पर कस कर उसके खरा खोटा होने का निश्चय करने का स्वागत तो किया ही जाना चाहिए। परन्तु वैज्ञानिक प्रयोगो मे सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान एव उसकी प्रविधि (टेक्नीक) का बारीकी से पालन करना आवश्यक होता है।

प्रस्तुत पुस्तिका मे कुछ सिद्धान्त (मान्यताए) प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ साधको ने निश्चित प्रविधि के अनुसार इन सिद्धान्तो को अपने जीवन मे प्रयोग किया है। उनके प्रयोगो से प्राप्त अनुभव इन सिद्धान्तो की पुष्टि करते हैं। अगर वैज्ञानिक वर्ग इन सीमित और छोटे पैमाने के प्रयोगो से सतुष्ट न हो सके तो उनके आह्वान पर 'मानस साधना मडल' के साधक उनकी

. रेल मे प्रयोग कर उन्हे सतुष्ट करने का प्रयत्न कर सकते हैं और तब ानिको का भी यह कर्तव्य हो जायगा कि वे इस प्रयोग के परिणामो को पने विचारो के साथ विश्व के सामने प्रस्तुत कर, जिससे उनका उपयोग अखिल नव के कल्याण के लिये किया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तिका क दोनो भागो मे जिन बातो पर विशष बल दिया गया वे अनेक व्यक्तियों के व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित है। जन साधारण के क्ष इन्हे प्रस्तुत करन का एक मात्र उद्देश्य यह है कि खाद्यान्न के सम्बन्ध लोगो को सही दृष्टिकोण प्राप्त हो सके जिसस स्वर्गीय प्रधान मत्री श्री ल बहादुर शास्त्री की खाद्यान्न कम खाकर दश को खाद्यान मे स्वावलम्बी ाने का स्वप्न कही अधिक बडे पैमाने पर सफल हो सके।

० मार्च १९६६। —कुवर प्रसाद गुप्त,

मेरे उपवास के अनुभव

(लेखक—डा० गुरुहरख सिंह, एम० बी०, बी० एस०, कालिका सदन, बलिया)

गत वर्ष तक नवरात्र के समय मैं केवल फलाहार करता था, किन्तु इस वर्ष नौ दिन तक मैंने केवल फल का रस लेने का निश्चय किया। अत: श्री हृदयनारायण (योगी जी) के निर्देशानुसार नवरात्र से दो दिन पहले ही उपवास रखने के अनुक्रम में मैंने अपने आहार में अन्न का परित्याग कर दिया और उसके अगले दिन दूध भी छोड दिया। केवल फल और हरी तरकारी ही ग्रहण किया। यह नवरात्र मैंने अवध-धाम में बिताया। प्रथम दिन प्रात: काल सरयू में स्नानोपरान्त मैंने इष्ट-पूजा, गीता, रामायण और विनय-पत्रिका का पाठ किया। तत्पश्चात् रात भर किशमिश भिगोये जल का पान किया। दिन मे सन्तरो का और सन्ध्या को बेल का रस लिया। बेल का रस गूदे को कुछ घटे तक जल मे भिगो एव निथार कर तैयार किया गया था। चार दिन तक निम्न कार्य-क्रम चलता रहा—प्रात काल सरयू-स्नान करके एक घडा जल दिन भर के लिए लाता था। दिन मे मन्दिरो मे देव-दर्शन करते हुए मैं प्रतिदिन लगभग ६ या ७ मील पैदल टहल लिया करता था और पूर्णत अपने को सामान्य रूप से स्वस्थ पाता था। व्रत के दूसरे दिन से प्रतिदिन प्रात काल लगभग १२ औंस ठढे पानी का एनिमा लेता था। उपवास के पाचवें दिन पूर्व नियमानुसार मैंने केवल दो-तीन चम्मच शहद तथा उसके साथ आधा नीबू का रस मिलाकर दिन भर मे चार बार जल ग्रहण किया। फल का रस लेने को सोचा था लेकिन चूकि मैंने शहद और जल ग्रहण करने पर किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नही किया अत शेष दिन भी यही कार्य-क्रम चलता रहा। नवें दिन, रामनवमी को, प्रात काल मैंने केवल सरयू का जल पान किया और रामजन्म के पश्चात दोपहर को चरणामृत लिया तथा उसके

एक घंटे बाद एक सन्तरे का रस लिया। सन्ध्या के तीन बजे मैंने एक बड़ा पपीता खाया और छः बजे सेंधा नमक के साथ भर पेट उबाली हुई लौकी और पालक ग्रहण किया। दसवें दिन मैंने एनिमा लेना बन्द कर दिया और पर्याप्त मात्रा में फल लिया। रात में मैंने हरी सब्जी (लौकी और पालक) खाई। ग्यारहवें दिन प्रातःकाल से मुझे पूर्ववत् खुलकर शौच आने लगा। मुझे अपने पुराने अभ्यास के अनुसार सन्ध्या को भी खुलकर संतोषजनक शौच होने लगा। ग्यारहवें दिन दोपहर को मैंने टमाटर का सलाद, रामदाना का लड्डू और मट्ठा लिया और रात में मैंने कुछ फल और एक गिलास दूध ग्रहण किया। बारहवें दिन से मैं अपना आहार पूर्ववत ग्रहण करने लगा जैसे प्रातःकाल पानी में रात भर की भिगोयी हुई किशमिश व उसका जल, दोपहर को चपातियाँ, मसाला-रहित तरकारी, एक तश्तरी सलाद और रात को कुछ फल तथा एक गिलास दूध। किन्तु पिछले दिन मैंने केवल दो चपाती ली और प्रतिदिन एक चपाती बढ़ाते हुए पांच चपाती का आहार करने लगा। अब मेरी यही इच्छा है कि एक वर्ष तक चपाती की यही संख्या रहे। नवरात्र का त प्रारम्भ करने के पूर्व मैं प्रतिदिन ६ चपाती ग्रहण करता रहा जबकि उसके पहले मैं इससे अधिक संख्या में चपातियां खाया करता था। अब मैं यह चाहता हूँ कि प्रति वर्ष एक-एक चपाती कम करते हुए यथासमय इसे शून्य तक पहुँचा दूं और अन्न रहित आहार लेना प्रारम्भ करूं। फिलहाल यही मेरा लक्ष्य है। और मेरा विश्वास है कि इससे शरीर को निरोग एवं अथक परिश्रम करने के लिए सशक्त बनाए रखने में बहुत सहायता मिलेगी और यह मेरे जैसे साधकों के लिये उनकी आध्यात्मिक साधना में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। लेकिन यह कार्य कई वर्षों के निरन्तर और क्रमिक परिवर्तन द्वारा ही होना चाहिए जिससे कि शरीर को नूतन आहार ग्रहण करने में सुविधा हो तथा वह नए आहार से अनिवार्य पौष्टिक तत्व ग्रहण कर सके अन्यथा स्थायी और वाञ्छित परिणाम न मिल सकने की सम्भावना बनी रहेगी।

मुझे अपनी इस योजना के पालन में, जिसका पालन मैं योगी हृदयनारायण

जी के निर्देशानुसार कर रहा हूँ, कोई कठिनाई नही हो रही है, यद्यपि मेरे मोटेपन मे कमी आई है तथा फलस्वरूप वजन मे कमी भी। इससे मेरे मित्रो और सम्बन्धियो को कुछ भ्रम सा होने लगा है परन्तु हमे तो इससे महान संतोष है और मैं अपनी काया को पहले से दुबला पाता हूँ ठीक उस योगी जी की मूर्ति की तरह, जिसका मन सदा सम्मान किया है। मैं अपने को सदैव चगा और सशक्त भी पाता हूँ। न तो कभी थकान प्रतीत होती है और न रुग्णता का लक्षण दृष्टिगत होता है यद्यपि वर्तमान पीढी किसी के वजन को उसके स्वास्थ्य की कसौटी मानती है किन्तु मेरा उस कसौटी मे नितान्त अविश्वास हो गया है। यह भ्रमपूर्ण है। पूर्णत स्वस्थ होने की कसौटी बिना थकान कार्य करने की क्षमता (अखड शक्ति) एव सतत आरोग्य (अखड स्वास्थ्य) है। यह सयमित ~~एव विवेकपूर्ण~~ आहार द्वारा ही सम्भव है। योगी जी का कहना है कि शरीर इतना विशुद्ध बनाया जा सकता है कि हमारे शरीर मे भगवान की अपरिमित शक्ति उद्भासित हो जाय और वह हमे अपरिमित शक्ति प्रदान करे। जब सतुलित आहार और युक्तियुक्त उपवास से शरीर पूर्ण शुद्धता को प्राप्त हो जाता है तब फलो और सब्जियो के आहार से ही शरीर आन्तरिक विषैले तत्वो से पूर्णतया मुक्त रह सकता है।

उपवास सम्बन्धी मेरे अनुभवो का उपरोक्त सस्मरण गत वर्ष (१९६९मे) लिखा गया था। तत्पश्चात् मैंने चैत्र के नवरात्र मे दूसरा उपवास किया। इस बार मैंने केवल गगाजल शहद और नीबू के रस के साथ दिन मे चार बार लिया। यह उपवास बलिया मे किया गया। मैं प्रतिदिन प्रात काल पूर्ववत गगा स्नान के लिए जाया करता था जिसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिदिन ९ मील की पैदल यात्रा। इसके बाद मै अपना व्यावसायिक एव अन्य काय अति क्षमता और शक्ति से करता था। जिससे मेरे इस विश्वास की पुष्टि हुई कि शक्ति का स्रोत भगवान है न कि भोजन। योगी जी ने सत तुलसीदास द्वारा विरचित रामायण के प्रसगो का उल्लेख करके सच्चाई का निरूपण करते हुए हमे यह ज्ञान कराया कि सभी प्रकार के स्वास्थ्य, शक्ति, आनन्द, ज्ञान एव

मैं एकाहारी कैसे बना

(लेखक — रमेश चन्द्र वर्मा, एकाउन्टेंट, पुलिस आफिस, रायबरेली)

मेरा जन्म एक आस्तिक परिवार मे हुआ और मातृ पितृ—भक्त होने के कारण मेरी अभिरुचि ईश्वराधन मे स्वाभाविक हो गयी। पिता जी मानस के अनन्य प्रेमी हैं और नित्य प्रति ग्रामीणो को रात्रि मे रामायण की कथा सुनाते हैं। अत मैं बाल्य-काल से ही मानस का प्रेमी बन गया। विवाह के बाद पूज्य बापू की प्रात साय की प्रार्थना आरम्भ हुई और मगल शनिवार को मानस का पाठ और कुछ कीर्तन का नियम अपनाया और अन्त म आरती प्रसाद के बाद राम दरबार समाप्त होता है। इस पूजा पाठ के साथ-साथ शारीरिक विकास के लिये भी मैं बहुत प्रयत्न शील था नित्य सैकडो दण्ड बैठक करता और खूब डट कर खाता था। तीन तीन चार चार आदमियो का हिस्सा भोजन कर जाना मेरे लिये मामूली बात थी। व्यायाम के समय शरीर को ईटो से ठोकता था। इतना सब करने क बावजूद मुझ जाडे क दिनो म ठड अवश्य लग जाती थी और कमजोरी इतनी बढ जाती कि खडे रहने की भी ताकत नही रहती थी। किसी-वर्ष-जुकाम बिगड जाने से नाक म जख्म हो जाता था और महीनो तबियत खराब रहती थी। बार बार सोचता कि ऐसा क्यो होता है पर कुछ समझ मे नही आता था।

१९५३ मे मेरा स्थानान्तरण जौनपुर से लखनऊ हुआ और राजेन्द्र नगर मुहल्ले मे मैं रहने लगा। वहा अनन्य भगवत प्रेमी श्री कुबेर प्रसाद गुप्त से, जो मेरे नीचे के क्वार्टर मे रहते थे, सम्पर्क हुआ। उन्होंने मुझे परमादरणीय श्री हृदयनारायण (योगी जी) के सत्सग मे, जो प्रति मास होता है, सम्मिलित होने की प्रेरणा दी। सत्सग दिन मे होता था अत पहले मेरी इच्छा जाने की हुई, क्योकि मैं ऐसा समझता हू कि दिन सरकार का और रात अपनी।

न मे सरकारी काम ही करता हूँ , किसी सभा सोसाइटी मे प्राय भाग नही ता। फिर भी गुप्ता जी को मान देने के लिए मे उनके साथ सत्संग मे गया। योगी के मार्मिक सार-गर्भित प्रवचन सुन कर कुछ दिल और दिमाग बदलने ा। दान की महिमा सुन कर दो एक रुपया भगवान के लिए निकालने लगा, खान-पान के सम्बन्ध मे योगी जी की विचार धारा गले व नीचे नही उतरी। से खूब वाद-विवाद होता फिर भी उपवास का महत्व समझ मे नही आया।

सयोग से मेरा परिवार जौनपुर चला गया और मुझे अकेला रहना पड़ा। र्यालय म कार्य अधिक होने के कारण अक्सर भोजन नही कर पाता था। तीजा यह हुआ कि कमजोरी बहुत बढ गयी। जीने स उतर कर खड़ा नही पाता था। तीन ही चार दिन के पश्चात् एक ऐसी घटना घटी जो जीवन कभी नही घटी थी और सम्भव है, ऐसा अवसर आप लोगो मे भी शायद ही सी को मिला हो।

सध्या को दफ्तर से लौट रहा था। कैसरबाग, लखनऊ के समीप नपूर- ला गेट पार करते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी अज्ञात शक्ति ने मुझमे वेश किया। जीवन मे एक आमूल क्रातिकारी परिवर्तन महसूस हुआ। जहा मैं दल चल नही पाता था वहा दौडने लगा। कैसरबाग से गजेन्द्र नगर तक जी से गया पर कोई थकावट नही। बिना प्रयास जीना चढ गया। आश्चर्य- नक घटना के कारण रात भर नीद नही आई।

दूसरे तीसरे दिन पूज्यपाद योगी जी कुबेर जी के घर पधारे। मैंने उनको ारा वृतान्त सुनाया। उन्होने कहा "शरीर का मल निकल जाने पर आन्तरिक क्ति का परिस्फुटन होता है और यदि मिथ्या आहार-विहार द्वारा फिर से ल का सचय न हो तो वह शक्ति सदा बनी रह सकती है।"

तभी से मैं कट्टर एकाहारी बन गया हूँ। शक्ति मे उत्तरोत्तर वृद्धि ही ा अनुभव करता हूँ। मेहनत का काम करने मे भी शिथिलता और कष्ट ही होता है। कभी-कभी रामायण के अखड पाठ मे लगातार १८ घन्टे बैठना

पड गया और घटा सवा घटा से अधिक सोने को नही मिला । फिर भी को तकलीफ नही हुई और दूसरे दिन दफ्तर मे भी आलस्य ने नही सताया । काम करने की शक्ति बहुत बढ गयी है । दूसरा परिवर्तन जीवन मे यह आया है कि जहा मगल शनिवार की पूजा के लियें आध पाव बताशा खरीदन के अलावा सारा धन परिवार मे खर्च करने पर भी अभाव ही बना रहता था, वहा अब आय का १० प्रतिशत या इससे भी अधिक भगवान के लिये निकाल देने पर भी कोई अतर नही प्रतीत होता, बल्कि सारी आवश्यकताओ की पूर्ति होती रहती है और भीतर शान्ति बनी रहती है । इसक अलावा कोई भी वस्त्र जो पहन हुए हैं किसी को उतार कर दे देने मे मन मे कचोट या पीडा नही होती । मन परिस्थिति के प्रभाव से अतीत हो रहा है ऐसा अनुभव होता है । १२-१३ घटे लगातार आफिस का काम करते हुए न भूख लगती है न थकावट, और जब कभी जवाब तलब (explanation call) होता है तो न धैर्य छूटता है न काम करने में शिथिलता आती है । लड़कियों के विवाह बिना दौड़-धूप सहज ही तय हो जाते है । मेरी समझ मे नही आता है कि भगवान मे आस्था विश्वास रखने वाला प्राणी किसी काम मे कठिनाई कैसे महसूस करता है ।

मेरे जीवन मे जो महान परिवर्तन हुआ है उसका कारण, मै समझता हूँ । उस विचार धारा को अपनाना है जिसे मैंने पूज्य योगी जी के सत्सग में सुना और फिर जीवन मे प्रयोग किया है ।

नोट—यह लेख दिसम्बर १९६२ में लिखा गया था जब लेखक के पिता जीवित थे । गत ४–९–६३ को उनका शरीर पूरा हो गया ।

मेरा भ्रम निवारण

(श्रीमती रुक्मिणी देवी, डी–१२१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ)

मेरे पतिदेव (श्री कुबेर प्रसाद गुप्त) सन् १९५४ से पूज्य योगी जी के सत्सग मे जाने लगे थे। लगभग ४ साल तक तो मुझे यही लगता रहा कि यह सत्सग भी अन्य कथा कीर्तनो की तरह का सत्सग है। परन्तु जब उन्होंने एक दिन, दिन के भोजन मे अनाज न खाने की चर्चा की और कहा कि दिन मे अन्न का भोजन न किया जाय तो बीमारी से बचा जा सकता है, तो यह बात मुझे बड़ी बतुकी लगी। किन्तु एक दिन जब इन्होंने उसे क्रियात्मक रूप भी दे दिया और सवेरे बिना भोजन किये ही कार्यालय चले गये तो मुझे बड़ा दुख हुआ। शाम को मैंने स्पष्ट रूप से कह दिया कि अगर आपका दिन को बिना खाये जाने का क्रम चलता रहा तो यह मुझसे सहन न होगा और मैं रेल के नीचे कट कर मर जाऊँगी। परन्तु ये मुझे बहुत धीमे स्वर मे समझाने का ही प्रयत्न करते रहे और कभी कभी मेरे जिद करने पर खाना भी खा लिया करते थे। इनकी क्रमश. बढ़ती हुई कार्यशक्ति को स्पष्ट देखते हुए भी मुझे यह नही मालूम हो सका कि यह एक वक्त अन्न के त्याग का ही परिणाम है।

लगभग तीन साल हुए एक बार मैं बहुत सख्त बीमार पड़ी। शरीर मे, खास कर सिर मे, असहनीय पीड़ा हो रही थी। इन्होंने दवा न खाकर केवल एनिमा लेने की बात कही। परन्तु मेरी सहमति न पाकर इन्होंने एक होशियार डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर ने तीन दिन तक लगातार देख कर दवा बदली और सुइया भी दीं परन्तु तकलीफ मे तनिक भी कमी नहीं आयी। कष्ट इतना था कि मैं चिल्ला चिल्ला कर कहती थी कि अगर मेरा सिर काट दिया जाय तो अच्छा होगा, इस कष्ट से छुटकारा तो मिल जायगा। सौभाग्य से एक वृद्धा पड़ोसिन ने एक युक्ति बतायी और उससे मुझे एक टट्टी हुई बहुत सा काला

काला बदबूदार मल निकला और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मैने देखा कि मेरी सारी बीमारी एक क्षण मे ही दूर हो गयी। न कही दर्द था और न अस्वस्थता की निशानी। शरीर से मल निकलने का यह परिणाम देखकर तो मैं दग रह गयी। मेरे मन मे यह बात बैठ गयी कि दवाओ के विना भी आदमी रोग से छुटकारा पा सकता है और यह विचार भी आया कि शायद एक वक्त अन्न न खाने से कुछ लाभ हो। परन्तु यह मेरा अनुभव था कि जब कभी मैं एक वक्त नही खाती थी तो बडी कमजोरी मालूम होती थी और यह डर बना हुआ था कि अन्न कम खाने से कमजोर हो जाऊँगी और शायद उसके फलस्वरूप बीमार भी पडजाऊँ। मेरे पति देव ने एक बार अपने साथ ही उपवास करने के लिये प्रतापगढ जाने का कार्यक्रम बनाया मै इस इरादे से वहा गयी परन्तु भोजन से शक्ति मिलती है वह भूत इतनी मजबूती से दिल मे बैठा हुआ था कि वहा जाकर भी यह प्रयोग नही कर सकी। परन्तु छुटकारा मिलना शायद इतना सहज नही था। पिछले अक्टूबर मे डा० चन्द्र दीप सिंह जी के यहा रहने का कार्यक्रम बना और चूकि वहा डाक्टर साहब और उनकी पत्नी बहन जी भी दिन को अन्न नहीं खाती हैं इसलिये यह प्रयोग वडी सुविधापूर्वक किया जा सका। और वहा से लौटने के तुरन्त बाद ही मुझे बरेली गोष्ठी मे जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहा सभी साधको का भोजन, रहन सहन, प्रेम और सेवा भाव देखकर तो मैं दग रह गयी। तब से मै दिन में अन्न का भोजन नही करती। यद्यपि शरीर थोडा दुबला हो गया है परन्तु कार्यशक्ति और स्फूर्ति अधिकाधिक होती जा रही है। इस प्रकार पहले तो मुझे अपनी पुरानी मान्यता मे सन्देह पैदा हुआ और प्रयोग काल मे सम्पर्क द्वारा ही इसमें प्रगति हो सकी।

इसके साथ ही साथ मैं देख रही हूँ कि स्वार्थ भावना, और क्रोध की मात्रा कम होती जा रही है तथा बच्चो से सहज प्रेम बढ़ता जा रहा है।

-○-

प्रकाशक —

श्री कुबेर प्रसाद गुप्त

सहायक मंत्री

मानस साधना मण्डल

डी—१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ

मुद्रक--अवध प्रिंटिंग वर्क्स, ९२ गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ।

मानस साधना मण्डल

उद्देश्य :-

१—उन स्वर्ण सिद्धान्तों की खोज तथा उनका प्रचार एवं प्रसार, जो मानव के व्यक्तिगत श्रौर सामूहिक जीवन से अशांति श्रौर अभाव मिटाकर शक्ति, आनन्द श्रौर ज्ञानयुक्त मानव तथा धन-धान्य से सम्पन्न समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकें।

२—उन व्यक्तियों एवं संस्थाओं से परामर्श तथा सहयोग का आदान-प्रदान, जो मानव को सुखी बनाने के उद्देश्य से सचेष्ट हैं।

अध्यक्ष :

परमपूज्य श्री हृदय नारायण (योगी जी)

सहायक मंत्री तथा कोषाध्यक्ष
कुबेर प्रसाद गुप्त

मंत्री
डा० चन्द्र दीप सिंह
एम. बी., बी. एस.

प्रधान कार्यालय :

डी-१२/४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४

यदि आप

अखड स्वास्थ्य, अखड शक्ति, अखड आनन्द, अखड ज्ञान और अखड प्रेम

की उपलब्धि चाहते हैं तो

गोस्वामी तुलसीदास कृत श्रीरामचरित मानस मे वर्णित पौराणिक *कथानकों के आधारभूत वैदिक सिद्धान्तो की साधन-प्रणाली अपनाइये*

इसके लिये पढिये

पुस्तिका का नाम	लेखक	मूल्य
१. मानस के मौलिक सिद्धान्त तथा तदनुकूल साधन प्रणाली	परमपूज्य श्री हृदयनारायण 'योगीजी'	० २५
२. मानस का उद्देश्य तथा रचना शैली	,, ,, ,,	०.२५
३ मानस मे श्रद्धा तथा विश्वास का स्वरूप	,, ,, ,,	० २५
४. मानव के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा (तृतीयावृत्ति)	,, ,, ,,	०.२५
५. अखड स्वास्थ्य का आधार— सतुलित आहार	,, ,, ,,	० २५
६. मानस के आत्यतिक दुख निवारण के आश्वासनो का आधार	श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
७. खाद्य-समस्या एक वैज्ञानिक, व्यावहारिक और अनुभूत समाधान	,, ,, ,,	०.२५
८ पूज्य योगी जी के साथ दो घटे	श्री रवीन्द्र सनातन, एम ए.	० २५
९. मेरी साधना और अनुभव	प० सूरजभान शाकल्य बी. एस-सी.	०.२५
१०. दमा से मुक्ति	सकलनकर्ता- श्री कुबेर प्रसाद गुप्त	०.२५
११. असाध्य रोगो से छुटकारा	,, ,, ,,	० २५
१२. साधन त्रिक् के प्रयोग	,, ,, ,,	०.२५
१३. तीन साधकों से अनुभव	,, ,, ,,	०.३५
१४. अन्न-त्याग के पथ पर	,, ,, ,,	०.२५

और प्रयोग करते समय

मानस साधना केन्द्र, बी-१२/४. राजेन्द्र नगर, लखनऊ से सम्पर्क रखें।